...क्ति से
व्यक्तित्व

व्यक्ति से व्यक्तित्व

(पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय)

लेखक
प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु

मानव सृष्टि एवं वेद काल: १,९६,०८,५३,०८४
दयानन्दाब्द : १५९
विक्रम संम्वत् : २०४०

प्रकाशक
वीरेन्द्र नाथ, अश्विनी कुमार
प्रकाशन मन्दिर
बाजार चौक, मुरादाबाद।

प्राप्ति स्थान—

वीरेन्द्र नाथ, अश्विनी कुमार
प्रकाशन मन्दिर
बाजार चौक, मुरादाबाद

श्री चिरन्जी लाल आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट
बरनाला (पंजाब)

मूल्य १५/-

मुद्रक:—
राजेन्द्र कुमार गुप्त
विद्या वाचस्पति, वैद्य विशारद
शिवा प्रिंटिंग प्रेस
४०, गंज छत्ता, मुरादाबाद

प्रथम संस्करण २०००
अगस्त १९८३

समर्पण

मैं
अपनी इस कृति को
वीतराग तपोधन
श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज
के पूज्य चरणों में
समर्पित करता हूं।

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महापुरुष का कथन

"सत्यनिष्ठ लोग दरिद्र देश को भी श्री सम्पन्न बना देते हैं और असत्यनिष्ठ लोग सम्पन्न देश की सम्पन्नता को भी नष्ट कर देते हैं।"

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

भूमिका

शास्त्रार्थं महारथी आर्य गौरव श्री पं० शान्ति प्रकाश जी द्वारा

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' इतिहास तथा वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ हैं। इन्होंने अपनी आयु के पहिले भाग में ही आर्य समाज को बड़ा साहित्य दिया है। सहस्रों युवकों का मार्ग प्रदर्शन किया है। वह अपनी सर्विस के साथ-२ आर्य समाज की भी महती सेवा कर रहे हैं। इनके घर में ही एक कमरा पुस्तकों व लेखन सामग्री से भरा पडा है। वहाँ बैठकर जब लिखने लगते हैं तो घर के सभी कार्यों को विरत कर देते हैं।

पूज्य स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज का बृहत् जीवन चरित लिखना इनका ही काम था। पं० मनसाराम जी ने आर्य समाज की जो सेवा की वह बहुत शानदार है। कई बृहत्-गन्थों में उन्होंने पौराणिकों के साथ शास्त्रार्थ सामग्री लेखनोबद्ध कर दी है। सैंकड़ों शास्त्रार्थ उन्होंने अपने जीवन में किए। उनका अमूल्य जीवन लिखने का किसे ध्यान आता ? किन्तु राजेन्द्र

'जिज्ञासु' जी के मन में आर्य समाज पर न्यौछावर होने वालों के लिये श्रद्धा कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने पं० जी का जीवन भी लिखा और प्रकाशित कर दिया।

पं० लेखराम शहीद शिरोमणि पर जितना भी लिखा जावे थोड़ा है। प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने रक्त-साक्षी के नाम से उनका जीवन लिखा है। 'रक्त-साक्षी' का नाम ही पं० जी के जीवन को एक शब्द में चित्रित कर देता है। सचमुच उन्होंने अपने रक्त से ही वैदिक धर्म की साक्षी दी। यह सूझबूझ जिज्ञासु जी की ही है।

मैं अपने व्याख्यानों और शास्त्रार्थों में पं०जी के महाबलिदान का दृश्य खींचता और रक्त देकर अपने बलिदान देकर वैदिक धर्म की सच्चाई की साक्षी से अपने सबसे कट्टर विरोधी, उनके लहू के प्यासे श्री मिर्जा कादियानी के विचार परिवर्तन का सतत वर्णन करता था किन्तु 'रक्त-साक्षी' का प्रभावोत्पादक शब्द मुझे भी नहीं सूझा था। मैंने कादियाँ को लेखरामनगर का नाम दे दिया किन्तु मैं मानता हूँ कि 'रक्त साक्षी' शब्द बहुत प्रभावोत्पादक है। एक ही शब्द में प०जी का सारा जीवन आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। अब उन्होंने आर्य समाज के रत्न, अद्भुत विद्वान, कथनी करनी के देवता, सिद्धान्त मर्मज्ञ आर्य जाति के माननीय दार्शनिक श्री पं०गंगा प्रसाद जी उपाध्याय का परिमार्जित जीवन लिखा है। इनकी लौह लेखनी से लिखा यह जीवन सहस्रों मनों में आर्य समाज की सेवा में जीवन लगाने की प्रेरणा करे। इस आशा के साथ मैं श्री जिज्ञासु जी को साधुवाद देता हूँ कि उनका पुरुषार्थ सफल हो।

शान्ति प्रकाश
सुभाष नगर, गुड़गांव
(हरियाणा)

लेखक के दो शब्द

ऐसा लगता है कि अभी कल की ही बात है हमारे साहित्य पिता पूज्यपाद पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की आत्म कथा 'जीवन चक्र' प्रकाशित हुई। उसके आरम्भ में ही उन्होंने अपना प्रसिद्ध स्वरचित मुक्तक दिया।

'याद मेरी तुम्हें रहे न रहे'........

'जीवन चक्र' के प्रत्येक पाठक के हृदय को इस मुक्तक ने छू लिया। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने स्वयं हमसे इसकी चर्चा की। हमने यह मुक्तक पढ़ा। इस गूढ़ सरस रचना का रसास्वादन भी किया और हँसे भी खूब। 'जीवन चक्र' पढ़कर उपाध्याय जी को लिखा और मिलने पर भी कहा क्या आपको हमारे भक्ति भाव पर अविश्वास है जो ये पंक्तियाँ लिखी हैं। हम आपके उपकारों से लदे पड़े हैं। क्या हम आपके पश्चात् आपकी जीवनी नहीं लिखेंगे? उपाध्याय जी ने एतदविषयक पत्र में हमें

कुछ लिखा परन्तु अब स्मरण नहीं रहा कि क्या लिखा।

'जीवन चक्र' पर पं० जी पुरस्कृत भी हुए परन्तु ग्रंथ उत्तम होने पर भी उनके जीवन पर पूरा-पूरा प्रकाश नहीं डालता। कारण ? वह धार्मिक नेता व दार्शनिक विद्वान थे। राजनेता नहीं थे जो अपने बारे सब कुछ स्वयं ही लिख देते। उनके निधन पर और फिर वाद में भी उनका खोजपूर्ण जीवन चरित्र लिखने की धुन हमारे मन में करवटें लेती रही। हम उनके जीवन काल में ही उन पर खोज करते रहे। उनकी जन्म शताब्दी पर साधनों के अभाव में इस ग्रंथ का प्रकाशन न हो सका। पुस्तक वैदिक मन्त्रालय अजमेर में जाकर लौट आई। विवश होकर उस अवसर पर हमने उन पर एक लघु पुस्तिका ३६ पृष्ठ की निकाली।

हम अपने प्रयास में कितने सफल असफल हुए हैं, यह तो गुणीजन, लेखक गवेषक ही बतायेंगे तथापि हमें पूर्ण विश्वास है कि महर्षि के बलिदान शताब्दि वर्ष पर प्रकाशित होने वाली हमारी इस कृति का वैसा ही स्वागत होगा जैसे हमारे द्वारा लिखित इससे पूर्व के ग्रंथों का हुआ है। वैदिक धर्म प्रेमी जनता, आर्य समाज व भारतीय जन जागरण के इतिहास पर शोध करने वाले तथा राष्ट्र भाषा के सब प्रेमी हमारे परिश्रम से लाभान्वित होंगे। ऐसी हमें पूरी आशा है।

नवयुवकों को इस जीवन-चरित्र के स्वाध्याय से प्रबल प्रेरणाएँ प्राप्त होंगी।

अल्पज्ञ जीव की प्रत्येक कृति में न्यूनता का होना सम्भव है। इस पुस्तक के लेखन में व प्रकाशन में जो त्रुटियाँ व अशुद्धियां

रह गयी हैं हम अगले संस्करण में उनका सुधार कर देंगे।

श्री पं० शान्तिप्रकाश जी को किन शब्दों में धन्यवाद दूं ? उनका मार्ग दर्शन, आशीर्वाद व सहयोग इस ग्रंथ की शोभा बढ़ाने का एक मुख्य कारण है। प्रा० राम विचार जी के संस्मरण बहुत विलम्ब से प्राप्त हुए। फिर भी इसमें दे दिये गये हैं। जिस जिसने जो जो सहयोग दिया, सबका हृदय से आभार प्रकट करते हैं।

श्री राजेन्द्र कुमार जी गुप्त ने उत्साह से इस कार्य को अपने शिवा प्रिंटिंग प्रेस में लिया। एक आर्य के नाते वह उपाध्याय जी को पूज्य गुरु व पिता तुल्य मानते हैं। आर्य जगत् के जाने माने मूक सेवक श्रीमान वीरेन्द्र नाथ जी गुप्त को हम क्या धन्यवाद दें।? आर्य जाति का कृतज्ञ हृदय उनके पुरुषार्थ को धन्य धन्य मानता है।

हमने सब जीवन-चरित्र लम्बी-लम्बी यात्राएँ करके लिखे हैं। कहाँ-कहाँ खोज के लिए गये, यह ग्रंथ बतलाता है। ग्रन्थ का प्रकाशन महात्मा नारायण स्वामी जी की नगरी मुरादाबाद में हुआ। हम अबोहर में............इतनी दूरी। प्रूफ़ की चुभने वाली अशुद्धियों का एक कारण यह भी है। कई कारणों से कुछ सामग्री इस संस्करण में नहीं दी जा सकी। उपाध्याय जी का जन्म दिवस निकट आ रहा है। हमने अजमेर में ऋषि उद्यान में ग्रंथ लिखना आरम्भ किया था। तभी आनासागर झील के तट पर दयानन्दाब्द १५५ को भूमिका लिखी थी अब वही परिवर्तित करके दे रहे हैं। अपने निवास पर इसे सम्पन्न कर रहे हैं।

वेद सदन
अबोहर
अगस्त १ सन् १९८३

विनीत
राजेन्द्र जिज्ञासु
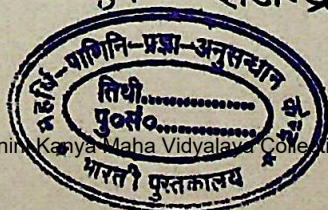
सौभाग्य प्राप्त

आर्य समाज मण्डी बाँस मुरादाबाद के कर्मठ आर्य सेवक श्रद्धेय वैद्य बुद्धा सिंह जी की प्रेरणा से विक्रम सम्वत् २०१४ से मैंने लेखन कार्य का शुभ आरम्भ किया। प्रथम पुस्तक इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति के नाम से प्रकाशित की तभी से निरन्तर लेखन कार्य चल रहा है और आज तक २१ छोटी बड़ी पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं। मन में एक बड़ी अभिलाषा बनी रही, आर्य जगत के किसी मूर्धन्य, तपस्वी, विद्वान मनीषी के जीवन चरित्र को प्रकाशित करने की। प्रभु ने कुछ कृपा की, मुरादाबाद नगरी में प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु जी का आगमन हुआ। श्री जिज्ञासु जी से मेरा पुस्तकों के आदान-प्रदान के द्वारा पूर्व परिचित तो था ही परन्तु साक्षात्कार इस शुभ अवसर पर हुआ, आपके प्रवचनों से नगर के आर्य जनता ने मन्त्र मुग्ध होकर परिव्राजकाचार्य श्री मद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज के कर कमलों द्वारा स्थापित आर्य समाज के ऐतिहासिक भवन में दि० ३०-६-८१ को आपका नागरिक अभिनन्दन भी किया। जिनका मस्तिष्क आर्य समाज के समस्त इतिहास का भन्डार बना हुआ हो। ऐसे अद्वितीय लेखक की लेखनी से लिखा गया ग्रन्थ एक अमूल्य निधि ही है। यह ग्रन्थ आर्य जगत की महान विभूति परम आदरणीय श्रद्धेय पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय का जीवन चरित्र है। इसके पठन से आप स्वयम् अनुमान लगा सकते हैं कि इस ग्रन्थ की रचना में रचनाकार की कितनी कठोर तपस्या और साधना रही होगी।

रचनाकार ने इस ग्रंथ को 'व्यक्ति से व्यक्तित्व' नाम देकर एक अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया।

जब श्री जिज्ञासु जी ने उक्त ग्रन्थ के प्रकाशन का भार मुझे सौंपने का विचार व्यक्त किया तो मेरा मन आनन्दित हो उठा और मैंने सहर्ष इसे स्वीकार किया। इसके प्रकाशन से 'रचनाकार' और 'रचना पात्र' दोनों मनीषियों की सेवा करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में श्री राजेन्द्र कुमार जी गुप्त भू० पू० मन्त्री आर्य समाज मण्डी बाँस मुरादाबाद ने अपने शिवा प्रिंटिंग प्रेस में मुद्रित किया। श्री एम० एल० गुप्ता जी ने सुन्दर एवं कलात्मक शुद्ध कम्पोजिग कर पुस्तक के प्रारूप को टिकाऊ बनाया, मैं दोनों बन्धुओं का हृदय से आभार व्यक्त करता हूं। महर्षि की वलिदान शताब्दि के महापर्व पर यह उपहार आर्यजन स्वीकार करें।

प्रकाशक

वीरेन्द्र गुप्त
महात्मा नारायण स्वामी जी
महाराज की प्यारी नगरी
मुरादाबाद

वीरेन्द्रनाथ अश्विनी कुमार
प्रकाशन मन्दिर
बाजार चौक

उपाध्याय जी के दो उर्दू पद्य

शहवत की ग़ुलामी में शहनशाहों को देखा।
नौबानों की तक़लीद में बीनाओं को देखा॥

माजमूआए–जिद्दैन है दुनिया का तमाशा।
पीरी में जवां होते तमन्नाओं को देखा॥

अर्थ

वासना की दासता में फँसे सम्राटों को देखा है। अंधों के पीछे चलते नयनों वालों को देखा है। यह संसार परस्पर विरोधी बातों का एक जोड़ है, इक खेल तमाशा है। यहाँ बुढ़ापे में आशाओं को इच्छाओं को जवान होते देखा है।
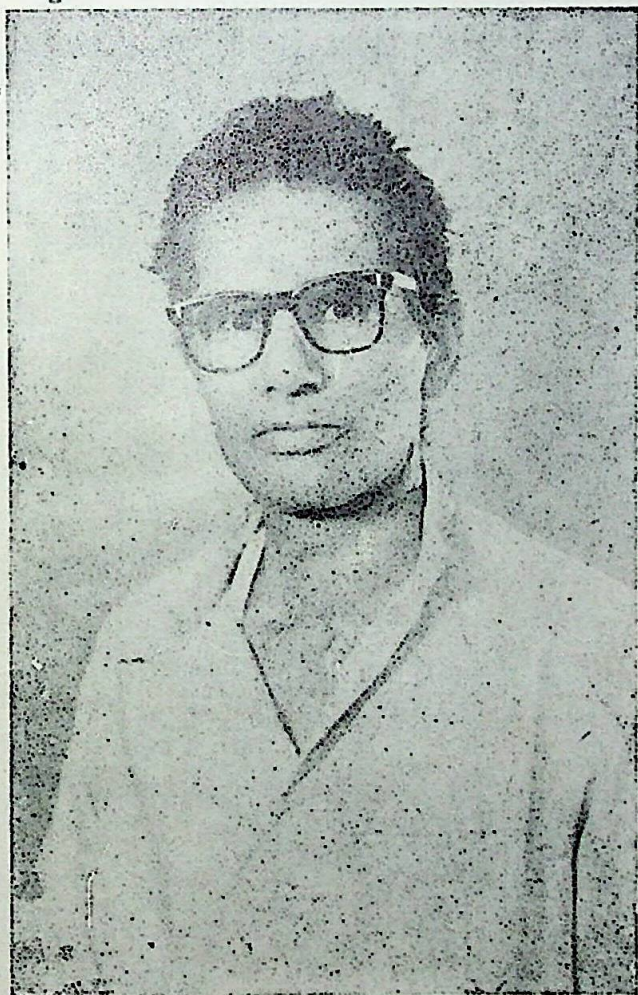
लेखक-प्राध्यापक श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महात्मा श्री नारायण स्वामी
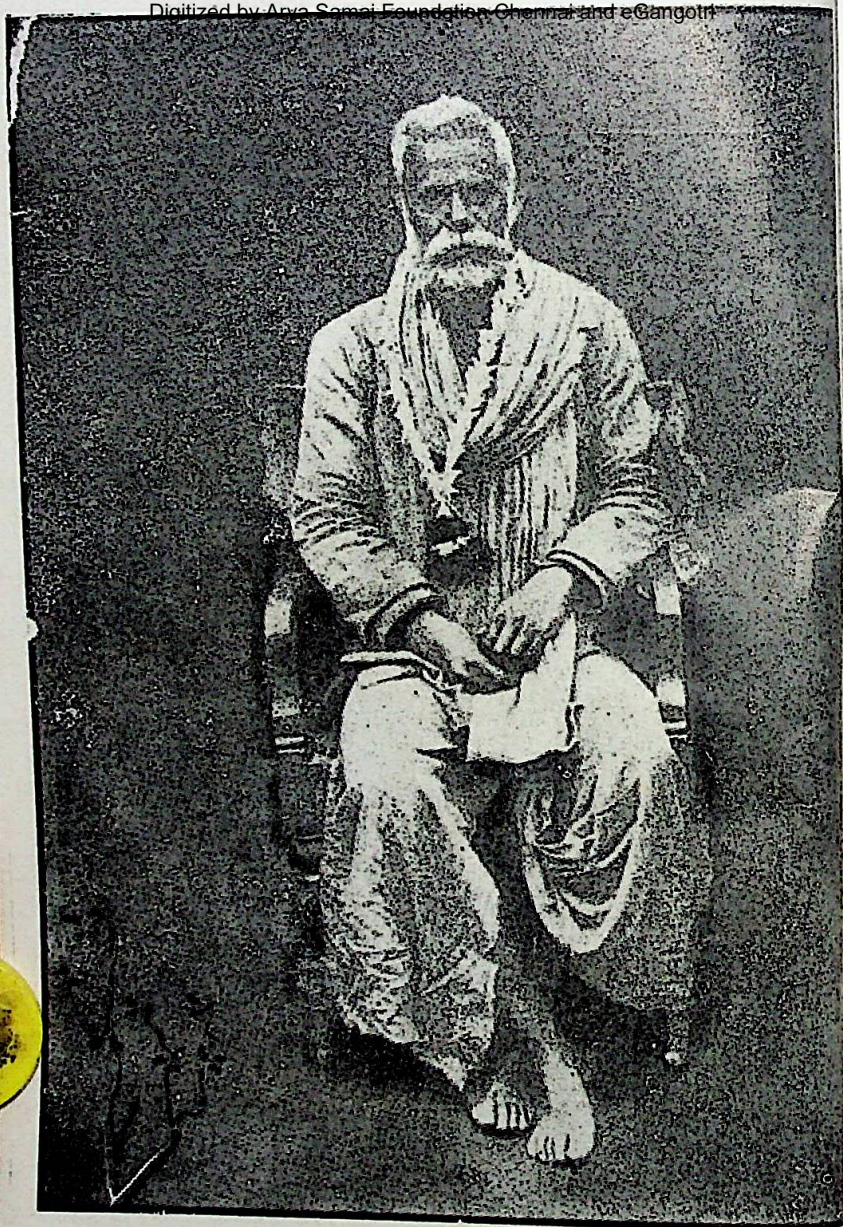
श्री पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय जी
(६ सितम्बर १८८१–२९ अगस्त १९६८ ई०)
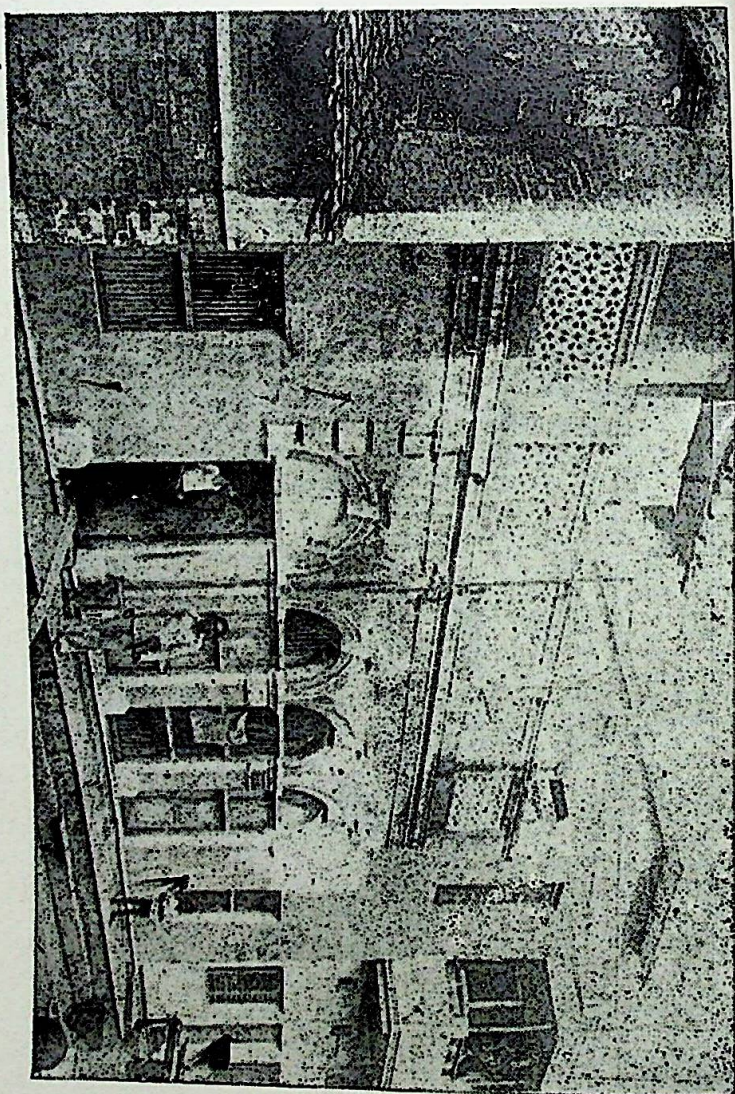
(उपाध्याय जी का निवास)
इलाहाबाद

"जो लोग कहते हैं कि
धर्म का मार्ग कठिन है
वह भूल में है।
धर्म का मार्ग वहुत स्वाभाविक है
कठिन मार्ग अधर्म का है जिसके लिए
षड्यन्त्रों, दुर्भावनाओं, कुचालों, छल छद्म के लिए
तैयारियाँ करनी पड़ती हैं और
उनको निभाना पड़ता है तथा प्रकट हो जाने का भय दुख
दायक होता है। परन्तु धर्म का पालन करने में न उनकी आवश्
यकता, न दुःख न भय अपितु, मन की शान्ति, आत्मा की
प्रसन्नता एवं लोगों का प्यार सदा प्राप्त होता है।"

[लाहौर में डा० परमानन्द जी के निवास पर दिये गये धर्मवी
श्री पं० लेखराम जी के प्रवचन से]

जन्म तथा वंश परिचय

जब महर्षि दयानन्द सरस्वती जी भारत भू पर वैदिक धर्म ध्वजा को फहरा रहे थे। जब इस यति योगी के पुण्य प्रताप और तेजोमय जीवन से देश में एक नया युग आ रहा था। जब महर्षि के वेद-नाद को सुनकर आर्य सन्तान का सुप्त स्वाभिमान जाग रहा था। आर्य सन्तान हीनता दीनता की दलदल से निकलकर कल्याण और बलिदान के पथ के पथिक बन रही थी। जब आजन्म ब्रह्मचारी वेदवेत्ता, तत्ववेत्ता और काशी के जेता स्वामी दयानन्द के नाम नामी के भय से दम्भ दर्प के दुर्ग ढह रहे थे। जब प्रभु की कल्याणी वेद वाणी की तिमिर नाशक रश्मियों से संसार आलोकित हो रहा था। जब प्यारा ऋषि अघ अज्ञान की रात को चीरकर सत्य का प्रकाश फैला रहा था। नवजागरण के उस प्रभात काल में काली नदी के किनारे नदरयी ग्राम जिला एटा में भाद्र शुल्क १३, सम्वत् १९३८ वि० मंगलवार को दिन के १२ बजे एक बालक ने जन्म लिया। पंडित जी ने बालक का नामकरण किया और गंगाप्रसाद नाम दिया।

तव कौन जानता था कि उ० प्र० के एक छोटे से ग्राम में जन्मा यह शिशु आगे चलकर वड़ा यशस्वी, तपस्वी, ज्ञानी व नामी व्यक्ति वनेगा। कौन जानता था कि इस वालक के कारण नदरयी को वड़ी प्रसिद्धि प्राप्त होगा। नदरयी ग्राम कासगंज से थोड़ी दूर पर है। नदरयी में नदी पर वना हुआ पुल आज के वैज्ञानिकों का एक चमत्कार ही तो है। नदी के ऊपर नहर भी है और आने जाने का मार्ग भी। इस पुल को देखने के लिये भी लोग यहाँ आते हैं।

इस ग्राम में एक पटवारी थे। उनका शुभ नाम ला० डम्वर लाल था। लाला डम्वरलाल जी के पुत्र थे लाला कुंजविहारी लाल। लाला डम्वर लाल जी ने लाला कुंजविहारी लाल को गोद लिया हुआ था। लाला कुंजविहारी लाल के पिता श्री ला० फूलचन्द जी मरभरा में रहते थे। कुंजविहारी जी को उनके चाचा श्री डम्वरलाल ने गोद में लिया तो यह नदरयी आ गये। लाला डम्वर लाल व ला० कुंजविहारी लाल वड़े सज्जन, धर्मात्मा व मान सम्मान वाले व्यक्ति थे। उनके निधन के वर्षों पश्चात भी ग्राम में उनको आदर से स्मरण किया जाता था।

ला० कुंजविहारी लाल का विवाह रेजुआ निवासी श्रीमान लाला छेदालाल पटवारी की पुत्री श्रीमती गोविन्दी देवी से हुआ रेजुआ ग्राम जलेसर से कोई ४ किलो मीटर दूरी पर है। इस देवी की कोख से वालक गंगाप्रसाद का जन्म हुआ। यही वालक आगे चलकर पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के नाम से विख्यात हुआ। भाव विभोर होकर गंगाप्रसाद अपनी माता के वारे में लिखते हैं "मेरी माता न केवल मेरी माता ही थी अपितु निर्माता भी।" माता गोविन्दी यद्यपि निरक्षर थी परन्तु सूझवूझ वाली परिश्रमी धर्मात्मा देवी थीं। माता गोविन्दी छोटी आयु में ही पितृहीन हो गई थीं।

उनकी माता ने ही उन्हें पाला था। यह भी क्या दैवी दुर्घटना थी कि गंगाप्रसाद जी भी दस वर्ष की आयु में ही पितृहीन हो गये। वह अपनी आत्मकथा में तथा अपने साहित्य में अन्यत्र भी बार-बार अपनी माता के उपकारों का स्मरण करके अपने निर्माण का श्रेय पूज्या माता गोविन्दी को देते हैं।

'हमारे कृष्ण मुरारी लाल !'

हमारे चरित नायक श्री गंगाप्रसाद की माता का नाम था गोविन्दो और पिता थे श्री कुंज विहारी लाल। इस संयोग से बालकाल में इन्हें कृष्ण मुरारी लाल भी कहा जाता था परन्तु पंडित जी ने राशियों के विचार से नाम गंगाप्रसाद रखा। लोगों ने नाम बिगाड़ कर 'मुरारी' 'मुरारी' पुकारना आरम्भ किया तो स्वाभिमानी बालक ने पं० जी का दिया हुआ नाम ही अपना लिया।

गंगाप्रसाद जी का वंश पौराणिक जातिभेद की दृष्टि से कुल श्रेष्ठ कायस्थ कहलाता था। 'कुलश्रेष्ठ' शब्द का जातिभेद की दृष्टि से क्या अर्थ है और क्या महत्व है या क्या इतिहास है, इस का विवेचन हमें यहां नहीं करना परन्तु यह निश्चित है कि माता गोविन्दी जैसी तपस्विनी देवी के कारण एवं ला० कुंजविहारी जैसे सज्जन सदाचारी पुरुष के कारण यह कुलश्रेष्ठ ही था। यदि कोई कमी थी तो जगत पिता परमेश्वर ने इस कुल में नर रत्न गंगाप्रसाद का जन्म देकर 'कुलश्रेष्ठ' शब्द को सार्थक कर दिया जिसके मन वचन व कर्म में अनुकूलता हो, उसकी श्रेष्ठता में सन्देह ही क्या रह जाता है। विद्वानों में मूर्धन्य, समाज सेवियों में शिरोमणि, धार्मिक जगत् का पूज्य बनकर गंगाप्रसाद ने कुल को गौरान्वित कर दिया। उनकी कीर्ति से कुल की प्रतिष्ठा का बढ़ना स्वाभाविक ही था।

उनके माता पिता के विषय में यहां कुछ अधिक लिखने का लोभ सँवरण नहीं किया जा सकता। इसमें इन पंक्तियों के लेखक की कोई दुर्वलता मत समझिए। गंगाप्रसाद जी का नाम और काम, उनका व्यक्तित्व व कर्तव्य तो हमारी दुर्बलता है। इस को हम लुका छुपा नहीं सकते। इस दुर्बलता के प्रकट होने में ही एक अद्भुत रस की प्राप्ति है परन्तु चरितनायक के माता पिता पर कुछ और लिखें तो यह वर्तमान पीढ़ी से अन्याय तथा भावी पीढ़ियों से बहुत वड़ा घात होगा।

श्री पं० गगाप्रसाद जी के पिता पत्नी व्रत धर्म का पालन करने वाले भद्र पुरुष थे। यह तथ्य पं० जी ने विशेष रूप से लिखा है। पं० जी को इसका क्या पता ? पं० जी इसके बारे में एक घटना लिखते हैं। वह आठ या नो वर्ष के थे कि अपने पिता के संग एक समीपवर्ती ग्राम में मेला देखने गये। लाला कुंज विहारी लाल के साथ कई युवक थे। ये युवक परस्पर वातें करते आ रहे थे। प्रसङ्ग क्या था यह वालक के समझ में नहीं आया किंवा नहीं ——यह पता नहीं। पं० जी ने घटना लिखते समय लिखा है कि प्रसङ्ग ज्ञात नहीं। ला० कुंज विहारीलाल ने साथियों से कहा, "देखो भाई मैं कह सकता हूँ कि मैंने अभी तक पर स्त्री का मुँह नहीं देखा।" ये शब्द पं० जी को आजीवन याद रहे।

वाल्यावस्था में गंगाप्रसाद जी इस वाक्य का अर्थ नहीं समझते थे। जव समझ आई तो मनः पटल पर अंङ्कित इस वाक्य की स्मृति पंडित जी के आत्म गौरव को बढ़ाती रही।

पंडित गंगाप्रसाद उपाध्याय के गुणों का वर्णन व स्मरण करते हुए हमें यह अभिमान होता है कि हम चरित्र के धनी इस महापुरुष के शिष्य हैं। चरित्र की यह भी तो विशेषता है कि किसी के उपकारों को जानना, मानना व उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना। पंडित जी अपनी माता को 'जिया' कहकर पुकारा करते थे। वह लिखते हैं कि मेरी माता एक साहसी देवी थीं। अपने तीनों बच्चों (पं० जी के एक बहिन व एक भाई भी था) को लेकर अपने बड़े मकान में पड़ी रहती। चोर भी कई बार आये परन्तु मां जाग जाती, चोर भाग जाते। चोरों के लिए वहां था भी क्या? हाँ! चोरों के कारण इनकी चिन्ता बढ़ जाती। बच्चे भयभीत हो जाते। पुरुषार्थी माता स्वयं मिट्टी ढोकर मकान की लीपापोती कर लेती।

पं० जी के पिता के निधन के पश्चात् पं० जी के मामा लोग व नानी जी इनसे अधिक स्नेह करने लगे। पं० जी की बहिन के विवाह का समय आया तो वे उन्हें ले जाना चाहते थे और वहीं विवाह करना चाहते थे। इस स्वाभिमानी देवी ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

न जाने क्या आर्थिक विपत्तियाँ आयीं। ये सीधी सादी ग्रामीण वीराङ्गना डोल गई। आत्महत्या की ठानी। घर से बाहर कुँए में गिर कर जीवन समाप्त करने का विचार बनाया। उठी और चल पड़ीं परन्तु सहसा मन में यह विचार आया कि मैं विधवा हूं। आयु कम है। मेरे मरने पर गाँव भर में मेरी चर्चा होगी। कोई कुछ कहेगा और कोई कुछ। विपरीत टिप्पणियों से मेरी सन्तान का मुँह काला होगा। ईश्वर ने यदि विपत्ति दी है

तो इसको सहन करने का वल भी वही देगा यह विचार आया तो माता के पांव रुक गये। इस घटना का पता किसी को न होने पाया। आगे चलकर कभी पुत्र को वताया होगा। पं० जी ने 'जीवन चक्र' में उल्लेख करके प्रथम बार इस घटना का ज्ञान औरों को कराया। कितनी समझदार थी वह माता !

पं० जी के तीन चाचा थें सव अलग २ रहते थे जव पं० जी पितृहीन हो गये तो वार वार परिवार को पुनः संयुक्त करने का प्रस्ताव सामने आया। एक दिन पं० जी की माता ने यह प्रस्ताव मान लिया। दोपहर का खाना सवका एक स्थान पर वना परन्तु तीन चार घन्टे वाद माता गोविन्दी ने अपना मन वदल लिया। वच्चों को लेकर अपने घर आ गई न जाने कुटम्वियों ने तव क्या कहा और क्या नहीं। इस देवी के मन में दो विचार उठे (१) अपने को परतन्त्र क्यों वनाऊं। स्वयं सव कुछ झेलूँगी। (२) अपने वच्चों का भविष्य दूसरों के हाथों में देकर इन्हें क्यों विगाड़ूं ?

पं० जी लिखते हैं "मेरी माता का निश्चय अत्यन्त बुद्धिमता त्याग भाव और साहस से परिपूरित था।"

जीवन संघर्ष में समस्याओं व संकटों से घिरा हुआ मनुष्य इस देवी के जीवन से वहुत प्रेरणा ले सकता है।

पं० जी ने एक मार्मिक प्रश्न उठाया है जव वह जीवन चक्र में अपनी माता की चर्चा कर रहे थे तो कानों में सिनेमा के विज्ञापन की आवाज पड़ी। कई कलाकारों के नाम लिये गये। वह लिखते हैं, "मैं सोच रहा हूं कि यह देवियां अधिक कलाकार हैं या मेरी मां जिसकी कला का नमूना मैं स्वयं हूं।"

पं० जी के इस भाव पूर्ण वाक्य को समझने के लिये हृदय चाहिए, हृदय में भाव चाहिए।

पं० जी की माता अपने पोतों व पोती की भी बहुत प्यारी थी। दादी पोती की कहानियां पाठकों ने पढ़ी सुनी होंगी। पं० जी ने 'वारी ताला' उर्दु पुस्तक में एक प्रसङ्ग में एक अच्छी घटना दी है। पं० जी की माता एक दिन अपनी माता की चर्चा कर रहीं थीं। यह सुनकर पं० जी की पुत्री सुदक्षिणा को आश्चर्य हुआ। नन्हीं पोती ने दादी से पूछा, दादी माँ क्या बूढ़ी माओं के भी माताएं होती हैं ? भोली बच्ची यह तो जानती थी कि बच्चों के माता पिता होते हैं उसे यह पता नहीं था कि माता पिता या दादी दादा भी कभी बच्चे थे हमने अन्यतर बालक सत्यप्रकाश की एक कहानी दी है जिससे पता चलता है कि पोते पोतियां अपनी दादी से कितने घुले मिले थे।

पं० जी के माता पिता की चर्चा उन्हीं के एक सरस प्रेरक विचार के साथ समाप्त करते हैं। पं० जी के दार्शनिक चिन्तन की छाप उनकी समस्त चाल ढाल पर थी। वह लिखते हैं, "मेरी माता जी में चातुर्य और स्वातन्त्र्य बहुत था। अतः उन्होंने अनेक कठिनाइयां होते हुये भी हमें इस प्रकार से पाला कि हम परिवार में अन्य लोगों के ऋणी बनकर नहीं रहे और मुझमें अपने पैरों पर खड़ा होने का एक व्यसन सा हो गया, जो आज भी मेरे आत्म गौरव की आधार शिला बना हुआ है। "शायद मुझे पितृविहीन करने में ईश्वर का यह भी एक प्रयोजन रहा हो।" दुख सुख अकारण नहीं। विपदायें निष्प्रयोजन नहीं। पं० जी कहा करते

थे सुख गजा (भोजन) है तो दुःख दवा (औषधि) है। शरीर की रक्षा के लिये भोजन व औषधि दोनों आवश्यक हैं इसी प्रकार जीव के विकास के लिए सुख व दुख दोनों का प्रयोजन है। पितृ-विहीन होने में भी ईश्वर का प्रयोजन गंगाप्रसाद का कल्याण ही था। ऐसा सोचने, समझने, कहने, लिखने, जानने व मानने वाला भी तो कोई विरला मनुष्य ही हो सकता है।

भंवर में नाव, प्रबल धारा है।
न कोई बन्धु मीत प्यारा है।।
कृपा का हस्त यदि तुम्हारा है।
हरेक लहर पर किनारा है।।

कविरत्न 'प्रकाश'

बाल्यकाल एवं आरम्भिक शिक्षा

पूज्य उपाध्याय जी ने अपनी आत्म कथा में अपने बाबा जी के सम्बन्ध में अपने बाल काल की दो कहानियां लिखी हैं। इनमें से टोपी वाली कहानी तो लेखक ने उनके मुख से भी सुनी थी। पं० जी प्राय: यह कहानी पितृ ऋण पर व्याख्यान देते हुये सुनाया करते थे परन्तु लेखराम नगर (कादियां) में ईश्वर विषय पर बोलते हुये यह घटना सुनाई थी। यह रोचक कहानी इस प्रकार से है।

बालक गंगाप्रसाद कोई छः वर्ष का था। अपने पिता के संग गंगा स्नान के लिये सोरों के मेले पर गया। यात्रियों की भीड़ तब भी हुआ करती थी और अब भी होती है। बालक गंगाप्रसाद ने अपने पिताजी से कहा कि मेरे बाबा जी मेरे लिए लाल गोटे वाली टोपी लेकर जाया करते हैं, मैं भी उनके लिए लाल टोपी और वह भी गोटे वाली लेकर जाऊँगा। पिता जी ने बहुत समझाया कि दादा तो बच्चों के लिये वस्तु लेकर जाया करते हैं, बच्चे ऐसा

नहीं करते। जितना अधिक पिता जी ने समझाने का यत्न किया उतना प्रबल गंगाप्रसाद का आग्रह होता गया कि मैं तो लाल गोटे वाली टोपी लेकर ही जाऊंगा। इस घटना से जहां बाल हठ का पता चलता है वहां गंगाप्रसाद की बाल बुद्धि से यह भी तो परिचय मिलता है कि महापुरुष में बालकाल में ही अपने बड़ों के प्रति पूज्य भावना थी और किये हुये उपकारों के लिये कृतज्ञता का भाव था।

पिता की हार हुई। बेटा जीत गया। एक दुकान पर टोपियां पूछीं। दुकानदार दिखाता गया। बच्चा डट गया कि टोपी मेरे सिर के नाप की नहीं चाहिए। बाबा का सिर बड़ा है और बड़ी टोपी चाहिए। बड़ी टोपी दिखाई गई तो बालक अड़ गया कि यह टोपी न लाल है न गोटे वाली। दर्शक हँसते थे। बालक न समझा कि क्यों हँस रहे हैं। अन्त में एक बड़ी टोपी क्रय की गई। यह लाल भी थी और गोटे वाली भी।

घर में घुसते ही पोते ने दादा को टोपी लाने का शुभ समाचार सुनाना। दादा कुछ लोगों से बातें कर रहे थे। पोते ने बड़ी शान से दादा जी के सिर पर गोटे वाली लाल टोपी पहना दी। मेले में पिता को पराजित किया था घर पहुंचते ही दादा को हरा दिया। दादा ने टोपी पहनने से बहुत टाल मटोल की परन्तु पोते के 'सत्याग्रह' के सामने एक न चली। बच्चे की प्रसन्नता का ध्यान कर दादा ने टोपी पहन ली। बच्चा अब आनन्द विभोर है कि मैंने दादा जी का ऋण उतारा है। वह मेरे लिये टोपी लाया करते थे, आज मैं उनके लिये टोपी लाया हूँ।

हमें अब भी स्मरण है कि पं० जी ने लेखराम नगर में यह घटना सुनाते हुए कहा था कि हम लोग ईश्वर के स्वरुप को समझने का यत्न करते। अपनी अज्ञानता के कारण ईश्वर को भी अपनी कल्पना के अनुसार घड़ने का यत्न करते हैं। बच्चे को लाल टोपी गोटे वाली अच्छी लगती हैं तो दादा को भी वैसी ही चाहिए। जो दुर्बलताएं मनुष्य में हैं, वह ईश्वर में मानकर अज्ञानी मनुष्यों ने ईश्वर को क्या से क्या बना दिया।

पं० जी बालकाल में अपने दादा जी को यह भी आश्वासन दिया करते थे कि जब मेरी सेठानी आएगीं तो आपको अच्छे-अच्छे खाने खिलाया करेगीं परन्तु, ईश्वरेच्छा कुछ और ही थी। प्रभु के विधि विधान को वही जानता है। गंगाप्रसाद पितृहीन हो गये। न पिता को और न दादा को इस बालक की 'सेठानी' के हाथ के बनाए पकाए पदार्थ खाने का सौभाग्य प्राप्त हो सका। कुछ भी हो इस पुण्यात्मा में बाल्यावस्था में ही बड़ों की सेवा का सद्भाव था यह तो इन घटनाओं से पता चलता है।

गंगाप्रसाद को सम्भवत: १८८७ ई० में एक मौलवी साहेब के पास मदरसे में पढ़ने के लिए बिठाया गया। तब शिक्षा का ऐसा ही प्रबंध था। आज कल की भांति स्थान-स्थान पर स्कूल नहीं होते थे। मौहलवी साहेब उर्दू फ़ारसी पढ़ाते थे। पंडित जी कायस्थ घराने में जन्मे थे। कायस्थ लोग शिक्षा प्रेमी रहे हैं। जब मुसलमानों का शासन था तो अपनी राज भक्ति वा शिक्षा प्रेम के कारण कायस्थ लोगों को सरकारी नौकरियों में लिया जाता था। सरकार की नौकरी ही इनका मुख्य धन्धा बन गया। अंग्रेजी शासन के आने पर या १८८७ ई० के आस पास कायस्थ चाहे

ऊंची शिक्षा नहीं पाते थे तो भी शिक्षा का इनमें अच्छा रिवाज था। यह लोग उर्दू फारसी पर अधिकार रखते थे। गंगाप्रसाद कुटम्ब में हिन्दी का कोई पत्र आए तो उसे अपमान सूचक ढंग 'चिट्ठी' कहा जाता था और उर्दू का पत्र आए तो उसे आदर पूर्व 'खत' की संज्ञा दीं जाती थी। उर्दू का पत्र प्राप्त होना शान व बात समझी जाती थी।

मौलवी के पास भेजने के लिए एक पंडित जी बुलाए गये उन्होंने एक पट्टी पर कुछ लिखा। यह शुभ रस्म पूरी हो गई इसे तब 'पट्टी पुजाई' कहा जाता था। दो तीन वर्ष तक गंगा प्रसाद मदरसी में फारसी पढ़ता रहा। शेख सादी बच्चों आदि बिख्यात फारसी कवियों के कई ग्रंथ पढ़ लिए। कुछ विनत अथ के, कुछ अर्थ सहित पढ़ाए गये।

गंगाप्रसाद जी ने अपनी आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करते हु जो पुस्तक पढ़ीं उनमें से एक नाम खालिक बारी' था यह पुस्तक अब अप्राप्य है। एक दुर्लभ प्रति हम उ० प्र० से खो कर लाए हैं। पुस्तक का आरम्भ खालिक बारी' इन दो शब्दों होता है। इस लिए इसका नाम खालिक बारी' रखा गया। ई कन उपनिषिदों के नाम भी तो ऐसे ही रखे गये हैं। खालिकबारी हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी शब्द कोश है। अर्थ पदों में दिये गये हैं बच्चों के लिए रोचक पुस्तक है इनमें से कुछ एक के पद पं० जी को आजीवन कण्ठस्थ रहे। ये पद उसी काल में कण्ठ हो गये पं० जी यदा कदा इनका प्रयोग अपने लेखों में किया करते थे 'बारी ताला' में निम्न पद एक से अधिक बार प्रयुक्त हुआ है;—

कि बचश्माने दिल मुनीं जुज़ दोस्त।
हरचे बीनी बदां कि मज़हरे ओस्त॥

इसका अर्थ मायावादियों की मान्यता से मिलता जुलता है। हृद

की आंखों से सबके मित्र परमेश्वर के सिवाय और कुछ मत देख। जो कुछ तुझे दिखाई देता है, यह जानले कि यह सब कुछ उसी प्रभु का प्रकाश है। फारसी उर्दू के सिवा कोई और विषय नहीं पढ़या जाता था।

बाबा चल बसे तो बालक को मरभरा की प्राथमिक पाठ-शाला में प्रविष्ट कराया गया। कहाँ गंगाप्रसाद ही एक मात्र उर्दू पढ़ने वाले थे शेष सभी छात्र हिन्दी पढ़ते थे। बालक गंगाप्रसाद यहां भी एक मौलवी के पास फारसीं पढ़ता रहा। यह मौलवी इनके एक ताऊ की जमींदारी के कारिन्दा थे। थोड़े समय में बालक ने अच्छी प्रकार से उर्दू पत्रों का पढ़ना सीख लिया। यह तब योग्ता का एक मापदण्ड था। दो वर्ष मरभरा में पढ़ाई की पिता का निधन हो गया। परिस्थितियाँ बदल गईं।

एक सगे सम्बंधी श्री ज्योति प्रसाद आए। उनके कहने सुनने से इस बालक को एटा के तहसीली स्कूल में प्रवेश दिला दिया गया वहीं छात्रावास में रहने लगे। यहाँ हिन्दी उर्दू की मिडिल तक पढ़ाई होती थी। स्कूलों की दशा तब ऐसी वैसी ही होती थी छात्रावास का तो कहना क्या। प्रातः से रात तक पढ़ाई चला करती थी। दोपहर व सायंकाल दो २ घण्टे की छुट्टी हुआ करती थी। रहने पर बल दिया जाता था। गंगाप्रसाद को माता साढ़े तीन रु० मासिक देतीं थीं। इसी में फीस और इसी में भोजन व्यय। जब कभी आर्थिक कठिनाई अनुभव हुई तो माता कोई भूषण गिर्वी रखकर भी अपने सुत लाडले की पढ़ाई को निर्विघ्न बना देती। "शनैः शनैः हमारा समस्त जेवर एक पंडित जी के घर पहुंच गया जो लेन-देन भी करते थे और पंडिताई भी।" ※ बालक को विद्या

※ द्रष्टव्य 'जीवन चक्र' पृ० ३७

प्राप्त की धुन थी। कठिनाइयों को हँस हँस के झेला। प० जी लिखते हैं मुझे कोई कष्ट अनुभव न हुआ। "पढ़ते और मौज करते थे।"

बालक मोहमयी माता को मिलने के लिए आठवें दिन घर आता शनि को आता और सोमवार सूर्योदय से पूर्व सिर पर सामान रखकर वापिस स्कूल को चल देता। छः मील आना और छः मील जाना।

एक बार माता के रूग्ण होने की सूचना मिली तो घर आए फिर औषधि लेने एटा पैदल गये। औषधि लाए माता को दी। खेल कूद में लग गये। ताऊ जी ने पूछा "अरे तुम यहीं खेल रहे हो औषधि नहीं लाए ?" आज्ञाकारी गंगाप्रसाद का उत्तर सुनकर वह चकित हुए। पाठकबृन्द अनुमान तो लगाए कि गंगाप्रसाद के संस्कार, विचार, व्यवहार व आचार कीं जड़ें कितनी गहरी थी। इस महान विभूति की इस जन्म को साधना तो महान थी ही। आर्य समाज का यह तपः पूत कोई साधारण व्यक्ति न था निश्चय ही यह कोई संस्कारी जीव था: सत्संग व सदुपदेश पाकर जिसके सुप्त संस्कार जाग उठे।

सन् १८८२ ई० से सन् १८८५ ई० तक बालक गंगाप्रसाद ने एटे के तहसीली स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। १४ वर्ष की आयु में मिडिल परीक्षा में प्रान्त भर में चोथा स्थान पाकर माँ के तप व अपने श्रम को सार्थक किया। इस काल में हमारे चरित्र नायक को उर्दू कवियों के काव्य में विशेष रूचि थी उर्दू के नामी कवियों के बहुत से पद उन्हें कण्ट हो गये। हिन्दी का अक्षराभ्यास तो हो गया

परन्तु साहित्य में रूचि न थी। पत्र व्यवहार में मिर्जा गालिव की नकल करते थे।

पटवारी बनते बनते बच गये

मिडिल परीक्षा देकर गंगाप्रसाद घर आए तो इनके मामा जी इनके घर आए। वह पटवारी थे। वह चाहते थे कि इस बालक को भी पटवारी बनवा दें। कायस्थ लोग परम्परागत दृष्टि से भी इस विभाग को प्रमुखता देते थे। इनके हाँ साधनों का भी अभाव था। पढ़ाई का आगे चलना कठिन था। पटवारी की परीक्षा के लिए प्रार्थना पत्र भिजवा दिया गया। स्वीकृति देर से आई गंगा-प्रसाद परीक्षा में न बैठे। वहाँ भी तीन रु० फीस लगती थी। ईश्वर की कृपा दृष्टि वृष्टि का वर्णन करना अति कठिन है। विश्व नियन्ता का गुणगान कैसे किया जावे जो गंगाप्रसाद को पटवारी न बनने दिया।

पं० जी के एक ताऊ के पुत्र थे श्री राधा दामोदर जी। वह बुलन्दशहर में राजकीय सेवा में थे। मैट्रिक पास थे। वह अकस्मात् मिलने आ गये। उन्हें लाला कुंज विहारी के निधन का पता था। उन्होंने गंगाप्रसाद से मिलने की इच्छा प्रकट की। स्कूल जाकर बालक से मिले प्यार दुलार दिया जब जनवरी १८९६ ई० में मिडिल परीक्षा देकर यह घर लौटे तो उनका पत्र आया कि 'मेरी उत्कट इच्छा है कि तुम्हें पढ़ाऊं तुम मेरे पास चले आओ।" पं० जीने लिखा है कि बाबू राधा दमोदर के पत्र का यह अंश कि 'मेरी बड़ी ख्वाहिश है" मुझे अब तक याद है।

माता जी ने यह प्रस्ताव मान लिया। बालक सत्तू बांधकर कुछ पैसे लेकर बुलन्दशहर को अकेला ही चल पड़ा। इस महा-

नुभाव ने बहुत स्नेह से गंगाप्रसाद को पढ़ाया व पास रखा। अंग्रेजी की पढ़ाई होती रही। परीक्षा परिणाम निकला। पं० जी को छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। अब अलीगढ़ के हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। यहां आरम्भ के दो वर्षों में अलीगढ़ के दो कुलश्रेष्ट वकीलों ने भी इस मेधावी छात्र की सहायता की इनके नाम थे श्री तोताराम और श्री मुन्नी लाल। १९०१ में पं० जी ने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। इसके साथ ही उनके जीवन का एक युग समाप्त होता है। अलीगढ़ में गंगाप्रसाद ने स्कूल की शिक्षा तो ग्रहण की, सो की। यहाँ इस युवक के जीवन में एक क्रान्ति आई। अब तक यह युवक अपने लिए व अपने परिवार के लिए ही सोचता था। अब वह परिवार का न रहकर संसार का बन गया।

जन्म होता है भलों का, देश के उद्धार को।
प्रेम की पूजा, भलाई, भूल जाने को नहीं॥
द्रव्य दाता ने दिया है, दान, भोगों के लिये।
गाढ़ने को दीन–हीनों, के सताने को नहीं॥

(कविता कामिन कान्तः पं० नाथूराम जी शंकर शर्मा)

अंधेरे से उजाले में

साधु-भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे।
सभ्यता की सीढ़ियों पै सूरमा चढ़ने लगे॥
वेद-मन्त्रों को विवेकी, प्रेम से पढ़ने लगे।
वंचकों की छातियों में, शूल से गढ़ने लगे॥

(महाकवि शंकर

१८९७ ई० में पं० लेखराम जी का बलिदान हुआ। लाय लाइब्रेरी में किसी उर्दू पत्र में गंगाप्रसाद युवक ने पढ़ा

"पं० लेखराम का कातिल पकड़ा गया" उपाध्याय जी स्वयं लिखते हैं, यह एक साधारण घटना थी। मुझे उस समय भी आर्यसमाज अथवा पं० लेखराम के विषय में कुछ ज्ञात न था।"

पं० जी के बलिदान के एक वर्ष पश्चात् गंगाप्रसाद जी के मन में सामाजिक विचारों का अंकुर उगजा। तब वह अलीगढ़ के छात्रावास में रहते थे वहाँ बेलून के पण्डों के कुछ बालक पढ़ने आए ये सब आर्य थे। ये विद्यार्थी अपने साथ आर्य विचारधारा ले आए। इनके कारण छात्रावास का वातावरण ही बदल गया गंगाप्रसाद व उनके मित्र बाबू रोशन लाल आर्य बने। इससे पूर्व इनको हुक्का पीने का व्यसन था। यद्यपि आयु तो १७ वर्ष के लगभग थी परन्तु यदि कोई लड़का हुक्का न पीता "तो हम आग्रह पूर्वक उसको हुक्का पीना सिखा देते।

परन्तु जब आर्य बने

आर्य समाज में इन भावनाशील सज्जन हृदय बुद्धिमान छात्रों ने प्रवेश किया तो आर्य समाज इनके हृदय में प्रविष्ट हुआ आर्यसमाज का जीवन पर प्रभाव पड़ा। हुक्के तोड़ दिये गये। चिलम फोड़ दी गई। हुक्का पीने का व्यसन छोड़ने के लिए भांति २ के उपाय सोचे गये। पहिले पहिले पान खाना आरम्भ किया परन्तु एक दुर्व्यसन दूसरे दुर्व्यसन से कहाँ छूटता है। कई मास तक संघर्ष रहा।

व्यसन कैसे छूटा ?

एक दिन गंगाप्रसाद जी बाजार से तम्बाकु लाए। तम्बाकु का गोला हाथ में था। छात्रावास की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे

सामने एक और छात्र था। वह आयु में इनसे वड़ा था। उसने प्रश्न किया "क्या लाए हो ? हमको दे दो।"

हमारे चरित्र नायक के शब्दों में पढ़िए, "मैंने उस दिन तम्बाकु का गोला उसको सौंप दिया। वह घड़ी मुझको भूलती नहीं तम्बाकु के व्यसन से छुटने की वह शुभ घड़ी थी। मेरा विचार है कि दुर्व्यसन को त्यागने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति चाहिए। मुझे तम्बाकु से घोर घृणा है और मुझे देखकर सम्भवतः कोई न कह सकेगा कि किसी समय मैं तम्बाकु पीता था।"❀

आंख खुल गई

उपाध्याय जी की अपनी लेखनी से लिखा एक लम्बा उद्धारण यहाँ देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। आर्यसमाज में आने पर मेरी सदाचार सम्बंधी आंख इकदम खुल गई। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं पहिले दुराचारी था और इसके पश्चात् शत प्रतिशत सदाचारी हो गया। मैं पहिले भी कह चुका हूं कि मैं एक साधारण छात्र था और अब भी साधारण मनुष्य हूं। विचित्रता तब थी न अब है परन्तु आर्य होने से पूर्व मुझे ज्ञान न था कि सदाचार भी कोई वस्तु है और उसका ध्यान में रखना आवश्यक है। लोकलाज उस समय भी थी और अब भी है परन्तु पहिले कोई आन्तरिक शक्ति ऐसी न थी जो मुझे पाप से बचाती किंवा पुण्य की ओर प्रेरित करती। आर्यसमाज में आने से मुझे यह ज्ञान होने लगा कि मैं अंधेरे से उजाले में आ गया। अब किसी काम को करने से पूर्व यह दृष्टिगत रहता है कि यह धर्म है अथवा नहीं और यदि कोई भूल हो जाती है तो उसके लिए पश्चाताप होता है। पहिले इसकी कतई कोई अनुभूति न थी।" ◇

❀ द्रष्टव्य "मैं कैसे आर्य समाजी बना ? पृ० ४१
◇ वही पृ० ४१-४२

धर्म धुन में लगन कुछ ऐसी लगी

चरित्र नायक ने अपने हृदय परिवर्तन की चर्चा करते हुए आगे लिखा है "हम लोग जब आर्य समाज में प्रविष्ट हुए तो अदम्य उत्साह से दोनों समय सन्ध्या हवन करना आरम्भ किया हवन कुण्ड क्रय किये गये। मैं तथा बाबू रोशन सिंह दोनों निर्धन थे। पैसा पास न था परन्तु यह आवश्यक समझा गया कि किसी प्रकार से बचाकर हवन की सामग्री और घृत तो क्रय करना ही चाहिए। यह नित्य कर्म है। हम लोगों की बगल में सत्यार्थ प्रकाश रहा करता था। इन पंक्तियों पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। हम आर्य कहलाने वाले सब गृहस्थियों के लिए अपने पूज्य नेता व विचारक के विद्यार्थी जीवन का यह आचरण एक उदाहरण है। परमेश्वर हमें उनका अनुकरण करने का सामर्थ्य दें।

वैदिक धर्म की रक्षा में तत्पर

आर्य समाज में प्रविष्ट होने पर उपाध्याय जी व उनके आर्य बंधुओं को दिनरैन बैदिक धर्म की रक्षा की चिन्ता रहने लगी। तब आबाल बृद्ध सब आर्य धर्म प्रचार करना परम धर्म समझते थे। उपाध्याय जी जब अलीगढ़ के राजकीय बिद्यालय में पढ़ते थे उन्हीं दिनों पौराणिकों ने स्वामी हंस स्वरूप जी के व्याख्यानों की व्यवस्था की। इससे पूर्व उपाध्याय जी की मित्र मण्डली ने ऐसे धारा प्रवाह बोलने वाले बक्ता को कभी नहीं सुना था। सहस्त्रों व्यक्ति पौराणिक बक्ता को सुनने आते थे। वक्ता महोदय ने आर्य समाज का भर पेट खण्डन किया। इससे विरोधियों की शक्ति बढ़ गई।

आर्य समाज ने शास्त्रार्थ को चुनौती दी। तार्किक शिरोमणि पं० कृपाराम शर्मा व पूज्य पं० गणपति शर्मा जी के व्याख्यान करवाए। क्वेटा आर्य समाज ने स्वामी हंस स्वरूप के प्रश्नों के उत्तर मे "काग हंस परीक्षा" पुस्तिका छपवाई थी। गंगा प्रसाद जी की मित्र मण्डली ने इकदम यह पुस्तिका मंगवाई। पुस्तिका मँगवा कर इन लोगों की जान में जान आई। चरित्र नायक ने स्वयं लिखा है कि—"उस समय यह स्थिति थी कि यदि आर्य-समाज के विरुद्ध एक भी युक्ति दी जाती थी तो जब तक उसका उत्तर न मिल जाता, हमें नींद न आती थी। न खाना अच्छा लगता था।" ◊

निर्माण काल

आर्यों का धर्मानुराग एवं वैदिक धर्म की स्थापना

गगा प्रसाद के विद्यार्थी जीवन की एक और उल्लेखनीय है घटना स्वामी हंसस्वरूप जी के व्याख्यानों के उत्तर में आर्य समाज ने चम्पा बाग में व्याख्यानों की आयोजना की थी। अब तक आर्य छात्र बिना पूछे ही व्याख्यान सुनने जाया करते थे। स्कूल के मुख्याध्यापक एक ईसाई सज्जन श्री कैसविन थे। वह भले पुरुष थे। उनको छात्रों के दो दलों का ज्ञान था।

एक दिन रोशन सिंह जी व गंगा प्रसाद जी ने सोचा कि चोर की भांति छिपकर व्याख्यानों में नहीं जाना चाहिए। "क्यों न हैड-

◊ द्रष्टव्य "मैं कैसे आर्य समाजी बना ?" पृ० ४२-४३

मास्टर से आज्ञा लेकर जाए। ※ "परन्तु जब हम जोश में आकर भाषण सुनने की आज्ञा के लिए गये तो स्वभावतः मुख्याध्यापक ने आज्ञा देने से इनकार कर दिया" ◇

उस दिन ये लोग भाषण सुनने तो न जा सके परन्तु आर्य समाज के प्रमुख नेताओं के सम्मुख यह प्रश्न रख दिया गया आर्य समाज के उद्योगी लगनशील पुरुषों ने आर्य छात्रों के लिए वैदिक आश्रम स्थापित करने का निश्चय किया। इस पवित्र कार्य में श्री बाबू छोटे लाल जी व मुन्शी केवल कृष्ण जी का उत्साह व परिश्रम विशेष उल्लेखनीय था। श्री केवल कृष्ण जी ही छात्रावास के अधीक्षक निरीक्षक नियुक्त हुए। बाबू छोटे लाल भार्गव ने घर छोड़ कर केवल शिक्षार्थ आश्रम में रहना आरम्भ कर दिया ये आर्य छात्र बिना आज्ञा लिए राजकीय छात्रावास को तजकर वैदिक आश्रम में आ गये। इसे अनुशासन-भंग करने का अपराध समझा गया और राजकीय संस्था के विरोध में नवीन संस्था की स्थापना भी कोई अच्छीं बात न समझी गई। दोनों युवक नेता निर्धन थे। दोनों को चार रु० छात्रवृत्ति मिला करती थी। फीस से मुक्त थे। अब फीस भीं लग गई। परन्तु जोश में, धर्म धुन में कष्ट सहन करने में भी इक स्वाद था।

इन धर्मानुरागी युवकों के उर के अरमानों की तान यही रही :-

'जिज्ञासु' ऋण नहीं ऋषि का कभी चुकेगा।
मग पर पग जो धरा, नहीं वह कभी रुकेगा॥

※ द्रष्टव्य जीवन चक्र पृ० ५३ तथा मैं कैसे आर्यसमाजी बना ? पृ० ४३ ◇ मैं कैसे आर्य समाजी बना ? पृ० ४३

आश्रम जीवन की एक झांकी

आश्रम-जीवन गुरुकुलीय था। "प्रातःकाल चार बजे ही हम को उठाया जाता था। निकटवर्ती बाग के कुएं पर स्वयं जल खींच कर स्नान कराते। छोटे-छोटे विद्यार्थियों को बड़े विद्यार्थी स्नान करते। तत्पश्चात् सन्ध्या और हवन होता वास्तविक तपस्या का जीवन था। आश्रम के पास न धन था न घर। अतः नौकर भी दो थे एक पाचक और दूसरा कहार। यह भी कभी कभी धोखा दे जाते। सरकारी होस्टल और इस छात्रा वास में आकाश पाताल का भेद था। परन्तु संरक्षक और संरक्षित दोनों में पूर्ण सहयोग था।" ◇

स्मरण रहे कि वैदिकाश्रम की स्थापना किराए के भवन में की गई थी। आर्यों के पास साधन भले ही न थे परन्तु साधना के बलबूते पर आर्यसमाज प्रगति पथ पर आरुढ था। भवन भले ही कच्चे थे परन्तु समाजी वहुत पक्के थे।

जीवन पर अमिट छाप

वैदिकाश्रम का हमारे चरित्र नायक के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा। यह उन्हीं की लौह लेखनी से लिखे शब्दों में पढ़िए, "वैदिक-आश्रम का मेरे जीवन से विशेष सम्बंध है। साँसारिक जीवन में प्रविष्ट होने से पहिले मुझे जो लड़ाइयां लड़नी पड़ीं वह वैदिकाश्रम की छत्र-छाया में ही (लड़ी गई)। मैंने आध्यात्म की जो शिक्षा प्राप्त की वह वैदिकाश्रम में ही। (प्राप्त की गई) मुझे अधर्मिक शक्तियों से लड़ने की शिक्षा यहीं दी दी गई। मेरे जीवन

◇ द्रष्टव्य जीवन चक्र पृ० ५४-५५ कोष्टों में दिये शब्द मेरे हैं जीवन चक्र में कुछ शब्द छूटे लगते हैं।

चक्र का मुख्य आरम्भ यहां से होता है। मैं उन दो विद्यार्थियों में से एक था जो सबसे पहिले आश्रम में प्रविष्ट हुए और जिनके कारण ही आश्रम खोला गया।" ×

असह्य सह्य हो गया

आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने के लिए उपाध्याय जी व उनके मित्रों को घर में जाकर ट्यूशन पढ़ाया करते थे। धर्मनिष्ठा के कारण ही ये विपत्तियां आई थीं। श्रद्धा का चमत्कार था कि असह्य सह्य हो गया। "हमने जानबूझकर कठिनाई को नियन्त्रण दिया था। इससे शारीरिक कठिनाइयाँ तो हुई परन्तु मन में आत्म गौरव का ही राज रहा।"

तब और अब

विघटन और पतन की अंधी आंधियां हमारे देश और विश्व में चल रही है। स्वार्थी, पोटार्थी और सुखार्थी बनते हुए आज-शिक्षित अशिक्षित को तनिक भी लाज नहीं। जीवन निर्माण के लिए तब एक दौड़ और होड़ सी थी। श्री पं० गंगाप्रासद जी उपाध्याय ने जीवन चक्र में वैदिकाश्रम पर लिखते हुए उस युग का चित्र इन शब्दों में खींचा है "जीवन में स्वातन्त्र्य भी था और कठोर भी। यदि कभी झूठ मुँह से निकल जाता तो प्रायश्चित करते थे। एक समय खाना न खाते या गायत्री का जाप करते कुछ विद्यार्थी शिथिल भी थे परन्तु उनको भी अधिक जोशीले छात्रों से सहारा मिलता था। हम लोग एक दूसरे के निरीक्षक थे अपने भी और गुरुजनों के भी।" ❀

× जीवन चक्र पृ० ५२ ❀ वही पृ० ५५-५६

तब जीवन में प्रवृत्तियों का प्रवाह ऐसा था कि तरुण क्या और बृद्ध क्या सब बिना सोचे शुभ कर्मों के करने में तत्पर रहते थे। मन वचन व कर्म में तालमेल था। एक रूपता थी। कर्त्तव्यों व मन्तव्यों में परस्पर विरोध न था। मान्यताओं का होना ही आवश्यक न था, उन्हें जीवन में अनुदित करना अपने व्यक्तित्व की प्रामाणिकता की एक मात्र कसौटी थी। वर्तमान पीढ़ी व भावी पीढ़ी के लिए यह एक बहुत बड़ा उदाहरण है। यदि कोई चाहे तो सीखे।

हृदय-परिवर्तन की दो घटनाएँ

अभिमान-अधम का भाव, न जिनको भाया।
जिनका व्यवहार-विलास, प्रशस्त कहाया॥
जिनके आचरण विलोक, लोक ललचाया।
शंकर ने जिन पर धर्म, मेघ बरसाया॥
उन अनथों ने अखिलेश, एक अपनाया.....

पण्डित जी के पिताजी ने अपने भाईयों से बातचीत करके एक बाग क्रय किया। यह बाग पण्डित जी के नाम पर क्रय किया गया। पण्डित जी तब अवयस्क थे। बाग वैसे पण्डित जी के दादा की सम्पत्ति थी। दादा जी ने किसी का कुछ ऋण चुकाना था। उस व्यक्ति ने ही इसे नीलाम कराया था। अपने पिताजी की मृत्यु के पश्चात् पण्डित जी का परिवार दस वर्ष तक इस बाग की आय को प्राप्त करता रहा।

१९०१ ई० में भूमि की नई प्रबन्ध व्यवस्था में पटवारी से मिलकर पण्डित जी के चाचाओं ने पण्डित जी पर अभियोग चला दिया। यह कहा गया कि यह संयुक्त परिवार की सम्पत्ति है। पण्डित जी गांव में पहुंचे। चाचाओं से कहा कि आप बड़े हैं वह धर्म को भाषा को समझने वाले न थे। पड़ोसियों ने मुकद्दमाबाज़ी के लिये उकसाया।

पण्डित जी न्यायालय में पहुँचे तो आर्य समाज की पवित्र वेदी से दिये गये अपने ही व्याख्यान स्मरण आ गये। पण्डित जी ने स्वयं लिखा है, "व्याख्यानों की स्मृति ने मुझे लज्जित कर दिया। समस्त कानूनी बल बेकार हो गया।" पण्डित जी मुकद्दमे से पीछे हट गये। माता जी को भी दुःख हुआ। उकसाने वालों को भी बुरा लगा। बाग का बहुत सा भाग पण्डित जी के हाथ से निकल गया परन्तु पारिवारिक वैमनस्य समाप्त हो गया। आर्य समाज की शिक्षा से पण्डित जी के जीवन में कितना परिवर्तन आया, यह उसका एक उदाहरण है। यह उनके आर्य समाजिक जीवन के आरम्भिक दिनों की घटना है। आत्म सुधार का तब लोगों में कितना उच्च भाव था।

ऐसी ही एक और घटना घटी। पण्डित जी के दादा जी पर अवागढ़ के राजा का कुछ ऋण था। उसने भी बहुत समय के पश्चात् पण्डित जी के दादा का एक बाग राजा साहेब के स्वत्व में आ गया। राजा के कर्मचारियों की असावधानी से पटवारी के कागज़ों में कुछ त्रुटि रह गई। पण्डित जी के चाचाओं को इस बात का पता लगा। उन्होंने बाग़ पर अधिकार कर लिया। पण्डित जी की माताजी को भी मुकद्दमें बाजी में भागीदार बनने के लिए

प्रेरित कर लिया। पंडितजी ने बाबू छोटेलालजी से परामर्श मांगा। "बाग तो आ ही गया है। प्रश्न केवल इतना है कि मैं लूँ या न लूँ।" आर्य पुरुष धर्म विरुद्ध परामर्श कैसे दे सकता है ?

पं० जी घर आये। आँगन में उस बाग के आमों की ढेरी लगी देखी। ये चाचाओं ने भिजवाये थे। पं० जी ने ये आम उनको लौटाते हुए कहा कि मैं किसी प्रकार भी अधर्म के सौदे में साझीदार नहीं बन सकता। माताजी को कुछ दुःख तो हुआ परन्तु पुत्र ने अपनी चला ली।

राजा अवागढ़ कब चुप बैठने वाले थे। उनके हाथ लम्बे थे। पं० जी के चाचाओं को उन्होंने मुकद्दमे में खूब घसीटा। राजा जीत गया। पं० जी के चाचे मुकद्दमाबाज़ी की उलझन में बुरी तरह उलझे। राजा की जीत हुई। पं० जी की बुद्धिमता, नीतिमत्ता धार्मिकता का अच्छा प्रभाव पड़ा।

पण्डित जी ने लिखा है कि अब मेरी माता हर बात में मुझ पर अधिक विश्वास करने लगीं। उपाध्याय जी के जीवन की इन दो घटनाओं का हम छोटी छोटी घटनायें कहें या बड़ी घटनायें समझें ? उनके सार्वजनिक जीवन के शैशव काल की ये घटनायें इस बात का प्रमाण हैं कि उनके महान व्यक्तित्व की आधार शिला कितनी दृढ़ थी। हमें इन दो घटनाओं का स्मरण करके किसी विद्वान का यह वाक्य स्मरण आ जाता है:-

"Little things are great for the greatmen Greatmen things are little for the littlemen." अर्थात

महापुरुषों के लिये साधारण बातें भी बहुत बड़ी होती हैं और बड़ी बातें छोटे लोगों के लिए छोटी हुआ करती हैं।

गंगा प्रसाद जी ने पग पग पर अपनी वैदिक मान्यताओं का मूल्य चुकाया। आज के युग में पैसे की, भौतिक साधनों की, भोग और ऐश्वर्य की प्रधानता है। गंगाप्रसाद आर्य समाजी बने तो आर्य समाज का हित उनका हित बन गया और आर्य समाज के विरोधी को उन्होंने अपना विरोधी जाना व माना। फारसी में कहा गया है, "मन ने तो ज़िन्दगई-ए खुद रा नमे पसन्दम।" अर्थात् तुम्हारे बिना मुझे जीना भी नहीं जंचता। ऐसा था गंगा प्रसाद का समाज प्रेम। अलीगढ़ के एक सज्जन गंगा प्रसाद को पढ़ने के लिए आर्थिक सहायता देते थे। उन्हीं के सहयोग से वह अंग्रेजी स्कूल में प्रविष्ट हो पाये थे। इस सज्जन के गुरु का ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ हुआ था। जब गंगा प्रसाद को पता चला कि वह सज्जन आर्य समाज के विरोधी हैं तो युवक गंगाप्रसाद ने उस सज्जन से सम्पर्क करना ही छोड़ दिया, आर्थिक सहयोग तो बन्द होना ही था। धर्म प्रेम इतना था कि यह सहयोग लेना अब अनुचित लगता था, इतना त्याग था पण्डितजी में।

गृहस्थ-जीवन

उस युग में बाल विवाह की कुरीति थी। ग्यारह-बारह वर्ष की आयु तक के लड़कों के विवाह हो जाते थे। कई बार तो गर्भस्थ बालक बालिकाओं के विवाह सट्टा की भाँति निश्चित हो जाते थे। जिस लड़के का विवाह पन्द्रह वर्ष की आयु तक न होता उसका विवाह तो फिर होना कठिन समस्या बन जाती। गंगा प्रसाद पितृ-

हीन बालक था, इसलिये इनका विवाह युग की कुप्रथा के अनुसार शीघ्र न हो पाया। जब कभी कोई नाई लड़के को देखने आता तो गाँव के ईर्ष्यालु उसे कह देते, "अपने जिजमान की लड़की को क्यों कुयें में डालते हो ?" कई नाई आये और गये। गंगाप्रसाद जी की माताजी की चिंता भी प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। माता का अधीर व निराश होना एक स्वाभाविक सी बात थी।

एक दिन अलीगढ़ के बोर्डिंग हाऊस में एक सज्जन आए। गंगा प्रसाद को देखा और अपनी पुत्री का सम्बन्ध करने का पक्का निश्चय कर दिया। यह कन्या एक खाते पीते परिवार की थीं। परन्तु मंगली थी। हिंदू सितारों का गुलाम है। मंगली होने के कारण इसके लिए वर का खोजना कठिन हो रहा था। गंगा-प्रसाद भी मंगली वर था। बात बन गई। इस कन्या के पिता को कोई बहका भी न सकता था। यह गंगा प्रसाद जी के मामा के मित्र थे।

लड़का भी प्रसन्न था कि सगाई हो गई। माता की प्रसन्नता का कोई पारावार ही न था। दुष्ट प्रवृत्ति के लोग कई वार चिढ़ाने के लिए ही पूछ लेते थे, "लड़के का विवाह अभी तक क्यों नहीं हुआ ?"

टीका हो गया। टीके में सात रुपये आये। उस समय प्रथा यह थी कि नाई को दो और पुरोहित को चार रुपये दिये जाते थे। परन्तु देने की विधि यह थी कि लड़के वाले को एक थाल में बहुत से रुपये धर कर कन्या पक्ष के नाई व पुरोहित के सामने रखते। पुरोहित व नाई उसमें से क्रमशः चार व दो रुपये उठा लेते। लड़के

का पिता या अभिभावक कहता "नाऊ ठाकुर और लीजिए। पण्डित जी और लीजिए।" परन्तु वे शिष्टाचार निभाते हुए हाथ हटा लेते और कहते "बस लालाजी इतना ही बहुत है।"

यहाँ समस्या यह थी कि रुपयों का थाल कहां से लाये? या ऐसे कहिए कि थाल को भरने के लिए रुपये कहाँ से लाएँ? निकट के एक गाव के भूमिपति के कर्मचारी वहां उपस्थित थे। उन्होंने अपना व्यक्ति भेजकर अपने भूमिपति से रुपये मँगवाये। रुपयों से भरा थाली पुरोहित व नाईं के सामने पेश कर दी गई। रीति रिवाज पूरा हो गया। रुपये लौटा दिये गये।

उन्हीं दिनों गंगा प्रसाद आर्य समाजी बन गये। लोगों ने इन के श्वसुर को भी जाकर भांति-भांति की वातें कहनी आरम्भ कर दीं और इनकी माताजी को भी कई प्रकार को वातें सुनाते। अमुक आर्य हो गया, उसका सर्बनाश हो गया। कई प्रकार की भ्रांतियां फैलायी गई। जिस कन्या के साथ सगाई की गई वह बेचारी ऐसी वातें सुन-सुनकर एकान्त में रोया करती थी। न जाने उसके मस्तिष्क में आर्यों का कैसा चित्र बन गया। कन्या के पिता अधिक बुद्धिमान व व्यवहारिक निकले। ऐसी निरमूल बेतुकी बातें सुन-सुनकर कह दिया करते थे, अच्छा जो होना है सो होके रहेगा।

इधर गंगाप्रसाद पर आर्य समाज का रंग गहरा चढ़ रहा था। जो गंगा प्रसाद अपने शैशव में वावा को आश्वासन देता था कि "मेरी सेठानी आयेंगी तो वह अच्छी अच्छी रोटी बनाकर खिलाया करेंगी।" अब उसी गगा प्रसाद के समाने प्रश्न यह था ऋषि दयानन्द का आदेश यह है कि २५ वर्ष से पूर्व विवाह नहीं होना चाहिये। अब विवाह करने और सेठानी जी को बुलाने का

सब स्वप्न धूलि धुसरित होता दीख रहा था।

कोई अनुभवी पुरुष था नहीं जो मार्ग दर्शन करे। विवाह की पक्की न होती तो न जाने हमारे चरित्र नायक के जीवन ने क्या मोड़ लिया होता। हाँ ! अब इतना तो निश्चित था कि गंगाप्रसाद जी के मन में अब विवाह के लिए पहिले वाली उत्सुकता या जोश नहीं था।

विवाह के लिए दबाव बढ़ने लगा। गंगाप्रसाद अब वैदिकाश्रम में रहते थे। उस समय वहाँ २० के लगभग विद्यार्थी रहते थे। इन युवकों में वैदिक धर्म के लिए अदम्य उत्साह था। जीवन में कोई भी निर्णय लेने के लिए सत्यार्थ प्रकाश को सामने रखा जाता था। ऋषि का आदेश उपदेश क्या है ? गंगा प्रसाद जी के विवाह के प्रश्न पर भी वैदिकाश्रम में विचार विनमय किया गया।

समस्या स्पष्ट थी कि विवाह में मूर्त्ति का पूजन भी होगा, बेश्याओं को भी अनिवार्य रुप में बुलाना होगा। विवाह क्या पौराणिक रीति से होगा ?

एक आर्य वीर के विवाह में बेश्याओं का नाच हो; यह हो नहीं सकता। एक ईश के मानने वाले पाषाण पूजा का पाप नहीं कर सकते। सोच विचार के पश्चात् निश्चय हुआ कि गंगाप्रसाद अपने श्वसुर श्री जमुना प्रसाद जी को एक पत्र लिखें। लाला जमुना प्रसाद पटवारी थे। बड़े बुद्धिमान व उदार एवं प्रतिष्ठित सज्जन थे। वैदिकाश्रम के अधिकारियों ने दो आर्य पुरुषों को दौत्य कर्म सौंपा। वह गंगाप्रसाद जी का पत्र लेकर लाला जमुना

प्रसाद जी के पास पहुंचे। पत्र में यह कहा गया था कि विवाह संस्कार वैदिक रीति से होगा। महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि ग्रंथ भी भेजा गया।

दूत पहुंचे। पत्र दिया। पुस्तक भी दी गई। ग्राम में हलचल सी मच गई। उस अन्धकारी रजनी में एक लड़के द्वारा स्वयं अपनी शादी की कोई बात करने की कोई प्रथा ही न थी। गंगा-प्रसाद का यह व्यवहार एक उद्दण्डता व अशिष्टता की पराकाष्ठा समझा गया। आर्य समाज के विरुद्ध विष वमन करने वालों को एक स्वर्ण अवसर हाथ आया। अभी से यह सब कुछ तो आगे न जाने क्या होगा। 'सम्बंध तोड़ देना ही अच्छा है,' यह ध्वनि भी गूञ्जने लगी परन्तु यह भी उस युग में कोई सरल बात न थी।

लाला जमुना प्रसाद ने बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए पत्र के उत्तर में कहा कि वर की इच्छा के अनुकूल ही कार्य होगा। गंगा-प्रसाद प्रसन्न थे। वैदिकाश्रम के व्यय पर एक सुयोग्य पण्डित ने संस्कार कराने जाने था। सामग्री की व्यवस्था भी कर दी गई।

विवाह से पन्द्रह दिन पूर्व लगुन (तिलक) की रस्म के लिए जब गंगाप्रसाद अपने घर पहुंचे तो वहाँ वातावरण ही कुछ और था। चाचाओं का दबाव पड़ा। मामा ने धमकियां दीं। कोई कहता कि हम विवाह में न जाएंगे तो कोई कहता कि ऐसे विवाह नहीं हो सकता। धर्म धुन के धनी गंगा प्रसाद ने दृढ़ता पूर्वक कहा विवाह में सम्मिलित नहीं होना चाहते तो आपकी इच्छा। बारात में नहीं चलना तो न चलो। विवाह नहीं होता तो भी ठीक। मुझे विवाह करना स्वीकार नहीं है। तिलक क्या था एक दुःखद प्रसंग था। सुसराल में भी रोना पीटना चल रहा था। किसी के रुष्ट

होने का गंगाप्रसाद पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपने निश्चय पर दृढ़ थे कि मैं विवाह नहीं करता।

इधर इनके चाचा व मामा ने कुछ गुप्त बातें की। एक चाल चली जो सफल रही। गंगा प्रसाद जी के मामा ने कहा कि लाला जमुनाप्रसाद रुष्ट व दुखी थे और कहते हैं कि यदि सम्बंध टूट गया तो ऐसी लड़की का अन्यतर विवाह हो नहीं सकता। बिना विवाह के लड़की को घर में कौन रखे ? हमें तो विष आदि देकर कन्या को मारना होगा इसी प्रकार इससे पिण्ड छूटेगा।

करुणा सिंधु दयानन्द का शिष्य कन्या की हत्या की बात सुनकर तड़प उठा। आर्य समाजी ऐसे घोर पाप को कैसे सहन करे ? इस पाप का हेतु बनना भी तो एक पाप ही है। अब गंगाप्रसाद झुक गये सब हथियार डाल दिये। छोटी बड़ी सब पौराणिक रस्में उन्हें करनी पड़ीं घर की स्त्रियों, पुरोहित व नाई आदि सबके हाथों का खिलौना बनना पड़ा। अब विवाह की प्रसन्नता किसे थी ? गंगाप्रसाद की अन्तः वेदना को अनुभव करने वाला केवल एक ही प्राणी था और वह थीं उनकी पूज्या माता जिनके लिए पुत्र की वेदना असह्य थी।

चरित्र नायक ने लिखा है, कि "वह पुत्र वधू चाहती थीं। उनको किसी विशेष रीति की चिन्ता न थीं" माता जी विवश थीं १८६६ ई० में विवाह हो गया। विवाह में वेश्या का नाच हुआ वर ने उस में भाग नहीं लिया। मूर्ति पूजा भी हुई। सब होने और अनहोने कार्य हुये। वर इन पन्द्रह दिनों में शोक में डूबा रहा। पुरोहित ने निष्ठावान आर्य वर की आखें पोंछने के लिए संस्कार विधि से भी कुछ मन्त्रों का पाठ किया परन्तु वर कोई

अनजान व्यक्ति न था। सब कुछ समझ रहा था। उसने इसे एक उपहास से अधिक महत्त्व न दिया।

चरित्र नायक के हृदय का चित्र खींचने में यह लेखनी अक्षम है। उन्हीं की लौह लेखनी से पढ़िए "मैं यह समझता रहा कि मुझ भेड़ को बलात् पकड़ लिया गया है और मेरे वश में नहीं कि कसाई की छुरी से छुटकारा पा सकूं।"

आर्य समाज की इस महान विभूति के विवाह के अवसर पर आर्य पण्डित भी आए। उनके साथ बड़ा लज्जाजनक व्यवहार किया गया। वे तो वर के चेहरे की उदासी देखकर ही लौट गये। बारात वालों ने उन्हें अपना शत्रु जाना। जो सामग्री वे लाए थे उसका मेवा गांव वालों ने चुराकर खा लिया।

इसमें दो मत नहीं कि गंगाप्रसाद पराजित हुए इस संघर्ष में आर्य समाज से द्वेष करने वाले उनके सगे सम्बंधी विजय रहे परन्तु इस घटना से उन्होंने बहुत कुछ सीखा और भविष्य के लिए सतर्क हो गये। उन्होंने स्वयं इस विषय में लिखा है कि

"मैं हारा भी जीता,
वे जीते भी हारे।"

उनका भावी जीवन विशेष रूप से उनका गृहस्थ जीवन इस बात का साक्षी है कि अन्तिम जीत उन्हीं की हुई। उन्होंने अपनी पराजय से बहुत शिक्षा ली। यह शिक्षा उनके बड़े काम आई।

पांच वर्ष की जुदाई

गंगाप्रसाद विवाहित तो हो गये परन्तु अभी गृहस्थी नहीं बने। दुलहिन इनके घर आई। सास ने जैसे तैसे बचा बचा कर

कुछ आभूषण अपनी बहु के लिए रख छोड़े थे। दुलहिन को अलङ्कृत करके सास ने अपनी चिरकाल से तड़प रही कामना को शान्त किया। वर ने दुलिहन को अभी नहीं देखा। उस युग में ऐसा प्रश्न ही नहीं उठता था। घूँघट की प्रथा का बड़ी कठोरता से पालन किया जाता था। गंगाप्रसाद विवाह से कुछ समय पूर्व उर्दू फ़ारसी के कवियों के काव्य का रसिक थे। स्वयं भी उर्दू में पद्य रचना करता था परन्तु आर्य समाज की विचार धारा ने जीवन का रंग-ढंग ही बदल दिया। रोमांस वाली बात ही यहां न थी। अतः विवाह के दो चार दिन बाद गंगा प्रसाद अलीगढ़ पढ़ने चले गये। रीति रिवाज के अनुसार बहु दस दिन इनके घर में रही। दस दिन के पश्चात् वह अपने पितृ-घर वापिस चली गई।

एक दिन श्री गंगाप्रसाद बाहर चौके में भोजन कर रहे थे। माता जी कोठरी के भीतर खाना परोस रही थीं। बहु भी उनके पास ही बैठी थी। सास ने बहु से कहा कि तुम इन दो पेड़ों को परोस दो।" मैंने देखा कि वस्त्रों के बण्डल में से दो गोरे गोरे हाथ निकले और मेरी थाली में दो पेड़ आ पड़े। मैं इतना ही देख सका। लज्जावश मैंने आंख न उठाई और खाना खाने में लगा रहा। मुझे याद तो नहीं परन्तु अनुमान कहता है कि इसका मेरे मन पर अवश्य ही प्रभाव पड़ा होगा। सम्भव है कि माताजी ने यह विधि मेरे चित्त को आकर्षित करने के लिए ही की हो। वह पढ़ी लिखी तो थी नहीं। परन्तु मैंने पीछे से अनुभव किया कि वह व्यवहारिक मनोविज्ञान इतना ही जानती थीं जितना बड़े बड़े मनोविज्ञान के पण्डितों को प्राप्त है।" ❀

❀ द्रष्टव्य कला देवी एक सच्ची कहानी पृ० २४

हमारे चरित्र नायक की इस मानसिक चित्रावली से एक बार फिर यह स्पष्ट हो जाता है कि १८-१९ वर्ष की आयु में भी उनके स्वभाव में गाम्भीर्य था।

विवाह तो हो गया परन्तु पति पत्नी की एक दूसरे से जान पहिचान न हो पाई। एक दूसरे के मनोभावों को समझना तो बहुत दूर की बात थी। गंगा प्रसाद सामान्य युवकों से न्यारे थे। इनकी प्रवृत्ति मौज मेले व भोग विलास वाली न थी। आर्य-समाज की विचार धारा ने इनके मन में स्त्री जाति के लिये सम्मान का भावना पैदा कर दी। पत्नी की उपेक्षा करने का तो फिर प्रश्न ही न उठता था। अपने जीवन निर्माण की धुन थी। अपने परिवार के भरन-पोषण की चिंता थी और इससे भी बढ़कर वह अब आर्य समाज के लिये सोचने लग गये थे। भले ही गंगाप्रसाद साधन हीन युवक थे परन्तु उनके सामने एक स्पष्ट ध्येय था उस ध्येय की पूर्ति के लिए उनकी साधना में कोई कमी न थी। पहले वकील बनने की धुन थी आर्य समाजी बने तो महात्मा मुन्शी राम आदि के पवित्र चरित्र का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वकालत का विचार छोड़ दिया। मैट्रिक पास किया। आजीविका के लिए अंग्रेजी ब्रान्च स्कूल में अध्यापक लग गये और साथ-साथ पढ़ाई जारी रखी।

"पुस्तकें ही मेरी सहधर्मिणी थीं, उन्हीं की मुझे चिंता थी।" यह भी स्थिति उन दिनों उपाध्याय जी की अनुभव हीनता के कारण यह न सोचा कि पत्नी का भी कुछ पता करें। आर्यों के बारे में उन दिनों विचित्र किंवदन्तियां फैली थीं। ग्रामों में तो

विशेष रूप से आर्यों के बारे में बहुत भ्रामक प्रचार था। यह विषैला प्रचार गंगाप्रसाद जी की पत्नी के कानों तक भी पहुंचा था। अमुक आर्य ने पत्नी को छोड़ दिया और अमुक आर्य ने अपनी पत्नी से बड़ा दुर्व्यवहार किया। पाठक वृन्द ! तनिक सोचिए ऐसी बातें सुन-सुनकर उस कोमल हृदय अबोध युवती के हृदय पर क्या बीतती होगी। वह अपने हृदय का दुःख किस-से बांटे ?

पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने अपनी पत्नी की उस अवस्था का बड़े मार्मिक शब्दों में चित्र खींचा है:—"मेरी पत्नी की छोटी बहन का विवाह भी हो गया था और गौना भी। गांव की लड़कियाँ अपनी सुसराल आती जाती थीं। यहां ऐसा लगता था मानो विवाह हो जाय और सुसराल हो भी नहीं। भविष्य अन्धकारमय था।"[1] ❋ रो धोकर अपने आंचल को तर करने के लिए सिवाए यह देवी कर ही क्या सकती थी।

गंगा प्रसाद जी अनुभव शून्य न होते तो किसी सगे सम्बन्धी के द्वारा या आते-जाते पत्नी को ये निर्मूल शंकाए मिटा सकते थे परन्तु इनके सामने तो अपने भावी जीवन की एक पंचवर्षीय योजना थी। यदि दोनों मिलकर बनाते तो कहा नहीं जा सकता कि योजना अधिक सुन्दर बनती किंवा ठुस होती। सम्भावना दोनों प्रकार की है।

गंगा प्रसाद अपनी अनुपस्थिति में पत्नी को अपने घर नहीं

❋ द्रष्टव्य कला देवी एक सच्ची कहानी पृ० २९

लाना चाहते थे। वह नहीं चाहते थे कि उनकी अनुपस्थिति में वह रूढ़ियों कुरीतियों व अन्ध विश्वासों की जकड़ पकड़ में कसी जावे। वह अपने सहवास में रखकर पत्नी को वेद निष्ठ सच्ची आस्तिक बनाना चाहते थे। वह चाहते थे कि पच्चीस वर्ष की आयु होने तक पत्नी को अपने घर न बुलाया जावे। यह बड़ी कठिन तपस्या थी और बड़ी विकट समस्या थी।

उस समय इनके कुल की यह रीति थी कि विवाह के एक वर्ष के, या तीसरे वर्ष के या पाँचवें वर्ष के भीतर गौना। ये दम्पत्ति बाल तो थे नहीं। अतः एक वर्ष के भीतर गौना हो सकता था। सास भी बहू को लाने और घर बसाने के लिए बहुत उत्सुक थीं। गंगा प्रसाद जी की माताजी ने गौने का प्रस्ताव रख दिया। पंडित जी अभी गौने के पक्ष में न थे। आपकी सास अलीगढ़ स्टेशन से गुजर रही थीं। सूचना पाकर आप मिलने गये। पण्डित जी की पत्नी भी अपनी माता जी के साथ थीं। वह तो गाड़ी के डिब्बे में सीट के नीचे लुक छुप गईं। पण्डित जी ने सास से कह दिया कि मेरी माताजी द्वारा गौना का प्रस्ताव हो तो आप अभी स्वीकार न करें।

जब पंडित जी के घर से नाई गौने का प्रस्ताव लेकर पहुँचा तो लाला जमुनाप्रसाद जी ने कहा जब लड़का नहीं चाहता तो हमको अपनी पुत्री भार अनुभव नहीं होती। इस बीच पन्डित जी दो तीन बार सुसराल गये भी। परन्तु पत्नी को विशङ्क न बना सके। दो वर्ष के पश्चात् आपको टीचर्स ट्रेनिंग कालेज प्रयाग में प्रवेश मिल गया। यह दो वर्ष का प्रशिक्षण था। इस प्रकार

पण्डित जी का अलग रहने का और समय मिल गया। पाँचवां वर्ष समाप्ति पर था। आप प्रयाग से परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अलीगढ़ में अपनी पुरानी पोस्ट पर आ गये। जुलाई १९०४ ई० में आपकी नियुक्ति बिजनौर के राजकीय स्कूल में हो गई। टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में सर्व प्रथम रहने के कारण आप को बिजनौर में तृतीय अध्यापक नियुक्त किया गया। आप अपनी माता जी को बिजनौर ले आए। आप अपनी माता जी को अंध विश्वासों से मुक्त करने के लिए कई प्रकार के यत्न किया करते थे। माता जी को भले ही कुछ पुराने संस्कारों से मुक्त करना कठिन था तथापि पं० जी के व्यवहार व दिन चर्चा यथा संध्या हवन का माता जी पर सुखद प्रभाव पड़ता रहा। पाँचवां वर्ष समाप्त होने को था पं० जी ने पत्नी को लाने का विचार बना लिया। ज्योषियों के चक्र में पड़ने का तो यहाँ प्रश्न ही न था। सुसराल को तार से सूचना दे दी। स्वयं पहुंचे और पत्नी को घर ले आए। अब वह बिधिवत गृहस्थी बन गये। श्री पं० गंगाप्रसाद जी अपने घर में अंध विश्वास का दुर्ग ध्वस्त करने पर तुले हुये थे।

उपाध्याय जी के कुल में बड़ियाँ बनाना वर्जित रहा है अपनी माताजी से बड़ियां बनाने की प्रार्थना की। माता जी ने कहा कि किसी मित्र से मंगवा लो हमारे परिवार की तो यह रीति नहीं अमुक ने बड़ियां बनाने के लिए दाल पीस कर रखी तो उसमें रुधिर हो गया। उपाध्याय जी ने माता जी को बहुत कहा सुना कांपते हुए हाथों से उन्होंने दाल भिगो दी। उनके मन में भय का का भूत बैठा हुआ था श्री पं० जी इस भय को भगाने में लगे बड़ियाँ बनाने की प्रक्रिया ठीक २ चलती रही रुधिर क्या होना माता जी का भय भी दूर होता गया। एक वर्ष तक माता

अंकित रही। भ्रमोच्छन में गंगा प्रसाद जी को भारी सफलता मिली। ऐसे ही चन्द्र ग्रहण के अवसर पर पण्डित जी ने भोजन करके एक और भ्रम जाल तार तार कर दिया।

अन्ध विश्वासों को जड़ से उखाड़ने में पण्डित जी को अपनी पत्नी श्रीमती कला देवी जी का पूरा सहयोग मिलता रहा। बिजनौर में नियुक्त होने के थोड़ा समय बाद पण्डित जी का गौना हो गया। करवा चौथ का त्यौहार आया। इस अवसर पर पत्नी उपवास रखती है और इसके फलस्वरूप पति की आयु बढ़ती है। ऐसा माना जाता है। पंडित जी ने अपनी पत्नी को समझा दिया कि पत्नी के उपवास का पति की आयु से कोई सम्बन्ध ही नहीं वह समझ गई। आरम्भ अच्छा हो गया। पण्डित जी ने प्रतिपदा, चतुर्दशी, बुध आदि वारों को यात्रा करके, पत्नी के मन से शकुन अपशकुन के भ्रामक विचार भगा दिये।

पण्डित जी ने अपनी माताजी व अपनी पत्नी को शिक्षित करने के लिए बड़ा उत्साह दिखाया। स्वयं भी पढ़ाते रहे और एक विद्यार्थी को भी इस कार्य के लिए नियुक्त किया। पण्डित जी की माता ने अपने पौत्र सत्य प्रकाश (वर्तमान श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी) के जन्म पर पुस्तक फेंक दी और कहा मेरी पुस्तक तो अब यही है। श्रीमती कला देवी का पठन पाठन चलता रहा। उन्होंने हिन्दी, गणित और थोड़ी अंग्रेजी सीख ली। सन्ध्या हवन तो सीख ही लिया था। घर गृहस्थी के धन्धों व आंखों की कमज़ोरी के कारण कला देवी की पढ़ाई लिखाई आगे न चल सकी।

पंडित जी के गृहस्थ की विशेषता यह भी थी कि सारा बहु

के सम्बन्ध बड़े मधुर थे। सास ने बहु के साथ सदा पुत्री जैसा मृदुल व्यवहार किया और बहु ने भी सास की सेवा करने में सदा तत्परता दिखायी। पूज्य पण्डित जी व पण्डित जी की पत्नी माता जी के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे।

१६०५ ई० में सत्य प्रकाश और १६०७ ई० में विश्व प्रकाश बिजनौर आर्य समाज की एक कोठरी में पैदा हुए। वह कोठरी अब भी है, जिसमें यशस्वी पिता के ये दोनों यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुये थे। श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी ने स्वयं कुछ वर्ष पूर्व बिजनौर जाकर यह कोठरी देखी। अच्छा हो कि आर्य समाज बिजनौर तथा आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० इस कोठरी को उपाध्याय जी के स्मारक का रूप दे कर सुरक्षित बना दे। आर्य समाज के तीन मूर्धन्य विद्वान लेखकों व पूज्या माता कला देवी जी के जीवन से सम्बन्धित यह कोठरी ऐतिहासिक स्थल होने के कारण आने वाली पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहेगी।

बिजनौर से ही उपाध्याय जी की लेखनी की निर्मल धारा तीव्र गति से प्रवाहित होने लगी। ❋ पण्डित जी नाम के साथ जन्म की जात पात नहीं जोड़ते थे। उनके लेखों में उनका नाम 'गंगा प्रसाद' थर्ड मास्टर छपता था। कुछ समय बाद 'गंगा प्रसाद' वर्मा भी छपता रहा। 卐

गंगा प्रसाद उपाध्याय के नाम से तो वह कई वर्ष पश्चात् जाने जाने लगे। पण्डित जी ने उपाध्याय शब्द अपने नाम के साथ कैसे जोड़ा? इसकी भी एक रोचक कहानी है। श्री

❋ द्रष्टव्य 'आर्य मुसाफिर' उर्दू मासिक

卐 वही अगस्त १६०८ ई० पृ० ३२

पन्डित गंगा प्रसाद जी एम० ए० "धर्म का आदि स्रोत" आदि ग्रन्थों व सामाजिक सेवाओं के कारण बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे। वह आयु में उपाध्याय जी से बड़े थे।

एक बार उपाध्याय जी लखनऊ या किसी और आर्य-समाज के उत्सव पर गये। विज्ञापन में पण्डित गंगा प्रसाद नाम पढ़कर एक श्रद्धालु आर्य पुरुष बाहर से वहां पहुँचे। वह बड़े आदर भाव से पन्डित जी से मिले। बातचीत से पन्डित जी को आभास हुआ कि यह सज्जन वास्तव में पण्डित गंगा प्रसाद जी न्यायाधीश के दर्शन करने की लालसा से यहां पहुंचा है। उसे नाम के कारण भ्रम हुआ है। उसने दोनों गंगा प्रसादों को कभी नहीं देखा था। तब उपाध्याय जी के मन में आया कि ऐसी भ्राँति किसी और न हो जावे, इसके लिये दोनों नामों में कुछ भेद होना चाहिए। सोच विचार कर उन्होंने उपाध्याय शब्द अपनाया और यह उनके पन्डित्य व स्वभाव के भी अनुरूप था। पण्डित जी नहीं चाहते थे कि दूसरे की कीर्ति का अना-वश्यक लाभ उनको पहुँचे। इसीलिये अब नाम भेद से यह समस्या सुलझाली। यह कहानी पण्डित जी ने श्री पण्डित गंगा-प्रसाद जी न्यायाधीश के निधन पर अपने संस्मरणों में लिखी थी।

इतना होने पर भी कभी कभी साधारण जन और कभी-२ बहु पठित महाशय भी गंगा प्रसाद न्यायाधीश व गंगा प्रसाद उपाध्याय को एक ही व्यक्ति समझ लेते थे। दोनों कुशल लेखक व गवेषक थे। दोनों उत्तर प्रदेश के थे। दोनों आर्य जगत् के शीर्षस्थ नेता थे। अतः ऐसी भ्रांति हो जाना सम्भव ही था।

विचरो सब देश विदेश, विचार प्रचारो ।
भ्रम, भेद, भूल, भय, शोक लुकें ललकारो ।।

(महाकवि शंकर)

शिक्षा में प्रगति

श्री पं० गंगाप्रसाद १९०१ ई० में मैट्रिक करके आर्य समाज की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने लगे। कठिनाइयों को झेलते हुए आगे बढ़ते गये। पढ़ते भी रहे और पढ़ाते भी रहे। १९०८ ई. में बी. ए. कर लिया। १९१२ ई. में आंग्ल साहित्य में एम०ए० कर लिया १९२३ई. में प्रयाग में रहते हुए दर्शन शास्त्र में एम.ए. कर लिया जब प्रयाग में टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में प्रशिक्षण पा रहे थे तब मुन्शी प्रेम चन्द्र जी* आप के सहपाठी थे। श्री प्रेमचन्द्र जी तब भी कहानियां लिखा करते थे वह चाहते थे कि उनके सहपाठी गंगाप्रसाद भी कहानियाँ लिखा करें परन्तु इनकी तो रुचियाँ ही बदल चुकी थीं। उठते बैठते सोते जागते खाते पीते वैदिक धर्म प्रचार व देश जाति की सेवा की धुन चैन न लेने देती थीं। दोनों सहपाठी नामी सहित्यकार बने। एक ने पत्रकार, कहानीकार व उपन्यासकार के रूप में राष्ट्र-भाषा के साहित्य भन्डार को भर दिया तो दूसरे ने धर्म व दर्शन विषय पर लिखे अपने ग्रंथों से हिंदी साहित्य में अभिवृद्धि की। पत्रकार के रूप में भी आपने बड़ी ख्यति प्राप्त की। उर्दू पत्रकारिता के पितामह श्री महाशय कृष्ण भी आपकी लेखनी पर मुग्ध थे। दोनों सहपाठी पहिले उर्दू में ही लिखा करते थे। मुन्शी प्रेम चन्द्र बाद में हिन्दी के ही हो गये। परन्तु गंगा प्रसाद जी ने संस्कृत अंग्रेजी व उर्दू में भी उच्च कोटि का साहित्य दिया।

---

* तब धनपतराय नाम था। पत्रों में रणपत राय कल्पित नाम से लिखते थे।

पिता पुत्र एक साथ परीक्षार्थी बने

पूज्य पण्डित जी के क्षणिक विकास की एक रोचक घटना यह है कि १६२३ ई० में जब प्रयाग विश्व विद्यालय के सीनेट हाल में उपाध्याय जी एम० ए० दर्शन की परीक्षा दे रहे थे तो उसी हाल में उनके ज्येष्ठ पुत्र सत्य प्रकाश इन्टर मीडियेट कक्षा की परीक्षा दे रहे थे।

बिगड़ी गति वैदिक–धर्म बिना ।
सुख–हीन हुआ शुभ कर्म बिना ।।

बुराइयों से टक्कर

उपाध्याय जी की प्रकृति शान्त थी। उनकी प्रकृति में उफान और तूफान कभी आता ही नहीं था। गति स्वाभाविक रूप से धीमी थी। परन्तु पग उठाकर फिर पीछे हटना नहीं जानते थे। एक बार मैंने उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछा तो पत्रोत्तर देते हुए एक स्वरचित पद लिखा:—

तूल उमरी का मिरे बस राज है इतना सा ।
सुस्त रफतार हूँ लग जाती है हर काम में देर ।।

अर्थात् मेरे दीर्घ जीवन का रहस्य यही है कि मैं मन्द गति से चलने वाला हूं। प्रत्येक कार्य में विलम्ब हो जाता हैं। गति भले

ही धीमी थी, परन्तु अपने विचारों के लिए जमकर लड़ते थे। बुराई से लोहा लेते हुए बलाओं को बुला बुला कर अंगीकार किया। विपत्तियों से जूझते हुए चिल्लाए नहीं घबराए नहीं। लक्ष्य सिद्धि की ओर निरन्तर बढ़ते रहे। उनके जीवन में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

जब आर्य समाज के संस्थापक ने लोकोपकार के लिये, वेद प्रचार के लिए देश का भ्रमण किया तो दार्शनिक, धार्मिक विषयों के साथ-२ सामाजिक बुराइयों व राष्ट्रीय रोगों पर भी व्याख्यान देते रहे। वेश्या गमन किंवा वेश्यावृत्ति भी एक सामाजिक रोग था। राजा, रंक, धनी, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित सब प्रकार के लोगों में यह बुराई पाई जाती थी। महर्षि दयानन्द ने बड़ी निर्भीकता से इस पाप का उन्मूलन करने के लिए सिंहनाद किया। दारुण दुःख सहे। प्राणों को भी न्यौछावर कर दिया।

आर्य समाज के सेवकों ने ऋषि की राह पर चलते हुये यह संघर्ष छेड़े रखा। तब बारातों पर वेश्याओं का बुलाना प्रतिष्ठा का चिन्ह समझा जाता था उपाध्याय जी के विवाह के समय भी मुख्य झगड़ा इसी कुरीति के लिये हुआ था। तब लोग यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि वेश्याओं के नृत्य के बिना कोई विवाह हो भी सकता है या नहीं उपाध्याय जी के विवाह पर वेश्या नृत्य हुआ। उपाध्याय जी ने नृत्य नहीं देखा। परिवार के बड़े उन पर टूट पड़े। पिता तो जीवित न थे। तब निष्ठावान समाज सेवी ने अपनी पराजय पर बड़ा दुःख अनुभव किया। भविष्य के लिए अधिक सावधान रहने का निश्चय किया। आठ वर्ष तक दृ-

प्रतिज्ञ गंगाप्रसाद अपने सगे सम्बन्धियों के किसी भी विवाह में सम्मिलित नहीं हुए। अन्तिम जीत सिद्धान्त निष्ठ गंगाप्रसाद की हुई। मामा ने अपने पुत्र के विवाह पर इन्हें बुलाने के लिए वेश्या-नृत्य बन्द कर दिया। "उस बारात में मैंने विधवा विवाह के औचित्य पर एक ओजस्विनी वक्तृता दी। उन्हीं दिनों मैंने एक ट्रैक्ट निकाला "विवाह और रंडियाँ" इसका प्रभाव अच्छा पड़ा,"◇

पाठक वृन्द ! आज यह बात साधारण सी लगती है। उस युग में इस कुप्रथा के विरुद्ध बोलना बड़े साहस की बात थी महर्षि दयानन्द जी को शाहपुराधीश नाहर सिंह जी ने चेतावनी दी थी कि जोधपुर जा रहे हो तो वहाँ वेश्यागमन के विरुद्ध कुछ मत कहना। राजा महाराजा लोग तो ऐसे ही हैं परन्तु ऋषि ने किसी भी सयाने की एक न सुनी ।

"Dayanand is intolerant of what he regards as superstition and hypocrisy. He can not barter conviction for convenience." ×

महर्षि दयानन्द तात्कालिक लाभ के सिद्धान्तों का सौदा बट्टा सट्टा न कर सकते थे। अन्ध विश्वास व पाखन्ड उनके लिये असह्य था। महर्षि के दिव्य जीवन का प्रभाव था कि दिल जले आर्यवीर बुराईयों से भिड़ने का कोई अवसर हाथ से निकलने न देते थे। मामा के पुत्र के विवाह पर विधवा विवाह के औचित्य का क्या अवसर था ? परन्तु यहाँ तो पराई पीर से विह्वल आर्य-वीर वेद प्रचार और समाज सुधार के लिये हर घड़ी कटिबद्ध थे।

× द्रष्टव्य Vioce of the Arya Varta Page 88
◇ 'द्रष्टव्य गंगा-ज्ञान धारा' पृ० ३६

कहीं भी क्यों न हों, वे अपनी बात कहे बिना न रहते थे। उनकी खिल्ली भी उड़ाई गई। उन्हें उन्मत्त और पागल, मूर्ख आदि सब उपाधियाँ दो गईं। पंजाव में किसी पुराने आर्य भजनीक की हँसी उड़ाने के लिए आज तक यह कहानी सुनाई जाती है कि उसने किसी कन्या के विवाह पर यह गीत सुनाया था:—"रोती है विधवा बेचारी।" भजनीक की कहानी कल्पित है या एक तथ्य हैं, यह तो मेरे लिये कहना कठिन है परन्तु श्री पन्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय सरीखे मूर्धन्य आर्य नेता व विद्वान की उपरोक्त घटना तो अतथ्य नहीं है। आर्यों के मन में एक अन्तर्ज्वाला जलती थी जो उन्हें बेचैन बनाये हुए थी।

एक दुर्घटना शान्त स्वभाव के गंगाप्रसाद अपने सिद्धांतों के कितने सच्चे व पक्के थे। इसका एक और उदाहरण मिलता है। १६०७ ई० में उनके चाचा के ११ वर्षीय पुत्र का विवाह हुआ। यह अधर्म था। ऋषि दयानन्द की आज्ञा के विरुद्ध था। गंगा प्रसाद इसमें सम्मिलित न हुये।

उसी वर्ष उस लड़के की मृत्यु हो गयी। उन्हीं दिनों उनके चाचा की १२-१३ वर्षीय एक पुत्री विधवा हो गई। "मेरे हृदय पर बड़ी चोट लगी।" ❖ उपाध्याय जी ने पुर्नविवाह का प्रश्न उठाकर छः सात वर्ष तक आन्दोलन किया। चाचा जी को लोक लाज की बात सुझायी। शास्त्र की दुहाई दी। सम्बन्धियों को भी कहा सुना पर वह टस से मस न हुये।

१६१४ ई० में उपाध्याय जी ने अपनी पूज्या माता व अपनी

❖ द्रष्टव्य 'गंगा ज्ञान धारा' पृ० ३६

पत्नी कलादेवी जी के सहयोग से अपने अनुज का विवाह एक बाल विधवा से करने में सफलता प्राप्त की। कड़ा विरोध हुआ। विवाह की बात गुप्त रखी गई। केवल बीस युवक इसमें सम्मिलित हुये। विचित्र बात तो यह है कि लड़की के माता पिता को तैयार करने के लिए भी घोर परिश्रम करना पडा। उपाध्याय जी को बिरादरी से बहिष्कृत करने का प्रस्ताव पारित हुआ।

वे भी क्या दिन थे! पौराणिकों ने बहुत बड़ी सभा बुलाई इतनी बड़ी सभा गंगा प्रसाद की बिरादरी ने देखी न सुनी। मुरादाबाद के पन्डित ज्वाला प्रसाद तथा अन्य पौराणिक पण्डित आर्य समाज के विरोध के लिये लाये गये। इधर आर्य समाज एटा ने कवि रत्न श्री पण्डित अखिलानन्द (तब वैदिक धर्मी थे) तथा श्री इन्द्र वर्मा जी को बुलाया। शास्त्रार्थ की खुली चुनौती दी गई।

यहां एटा की इस सभा का वृतान्त कुछ विस्तार से देना आवश्यक है। इतिहास के विद्यार्थियों को आर्य समाज की उपलब्धियों का मूल्याङ्कन करने के लिए ऐसी छोटी बड़ी अनेक घटनाओं का संग्रह करना चाहिये।

उपाध्याय जी तथा कला देवी जी तो एटा की सभा में उपस्थित नहीं थे। पन्डित जी के हितैषी सोत्साह दल बल सहित पहुंचे। सत्यव्रत जी के नाम की बहुत धूम थी। सभा के प्रधान एक राजा साहेब राव महाराज सिंह जी थे। राजा साहेब नियत समय पर न पहुंच पाए। आर्य वीरों ने एक अचूक निशाना लगाया। एक युवक उठा और कहा, "जब तक राजा

महोदय नहीं आते श्री अमूल्य रत्न जी प्रभाकर उस समय तक सभा के प्रधान बनाए जाएं" तुरन्त ही एक अन्य युवक ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया। इकदम अमूल्य रत्न जी ने सभापति का आसन ग्रहण कर लिया।

अब झट से एक और आर्य वीर ने प्रस्ताव रख दिया कि कुल श्रेष्ठ कायस्थों की यह सभा सब सम्मति निश्चय करती है कि श्री सत्यव्रत जी ने विधवा पुनर्विवाह करके एक वीरता पूर्ण का कार्य किया है। उनको बधाई दी जाती है यह सारा कार्य केवल आठ दस मिण्टों में सम्पन्न हो गया। सभा के संच्चालकों में खलबली सी मच गई। भीड़ घरों को चल पड़ी। लोग राजा साहब के पास गये। कुछ एक ने पुलिस से भी सहायता माँगी। पुलिस इसमें करती भी तो क्या ?

राजा महोदय पधारे। सभा पुनः आरम्भ हुई। तीन दिन तक यह सभा चलती रही। इस विवाह में जो युबक सम्मिलित हुए थे उनके सगे सम्बंधी दूर-दूर तक फैले हुए थे सब अपने अपने सम्बंधियों को बचाना चाहते थे। दूसरों को फंसाने की भी प्रवृत्ति थी। आर्य समाज शास्त्रार्थ के लिए ललकार रहा था। आर्य सुसंगठित व पक्के थे। ओजस्वी व्याख्यान होते रहे। अन्त में सभा ने यह निश्चय किया कि छः मास के भीतर जो क्षमा माँग ले और सत्यव्रत से सम्बंध तोड़ ले उसे क्षमा कर दिया जाये। आर्यों की दृढ़ता पर बलिहारी ! केवल एक युवक फिसला। उसने क्षमा मांगी। वह कौन थे ? श्री पं० गंगाप्रसाद जी ने लिखा है "वह थे मेरे खास बहनोई मीसा कलां के रहने वाले श्री ला

नारायण जी।" इस दिग्विजय से आर्यों में नये जोश का संचार हुआ। पं० जी के एक उत्साही आर्य बंधु लाला बाबू निर्भय थे। उनके विषय में पं० जी ने स्वयं लिखा है कि उन्होंने विरोधियों का नाक में दम कर दिया। विवाहों में बिना बुलाएजाते और सब में घुस कर प्रचार करते। आज की पीढ़ी नहीं जानती कि समाज का नाश करने वाली अमानवीय क्रूर कुरीतियों को उखाड़ने के लिए कितने आर्य वीरों के सिर फूटे कितनों को समाजिक बहिष्कार वा अन्य अन्य यातनाओं का सामना करना पड़ा। इतिहास बनाने के लिए मूल्य चुकाना पड़ता है।

जो बड़ भागी साहसी, करते हैं शुभ काम ।
रहते हैं संसार में, जीवित उनके नाम ॥

कविता कामिनी कान्त : नाथूराम 'शंकर'

पत्नी का उपनयन-एक साहसिक पग

उपाध्याय जी बिजनौर के राजकीय विद्यालय में तृतीय अध्यापक थे। उनके मन में सहसा यह विचार आया कि मैं तो यज्ञोपवीत धारी द्विज हूं परन्तु मेरी पत्नी का उपनयन संस्कार नहीं हुआ पौराणिक तो स्त्रियों के विरुद्ध थे। व्रत सूत्र, विद्या का चिह्न हैं अतः स्त्रियों को यज्ञोपवीत का भी अधिकार न था। आर्य समाज ने इसके लिए भी भीषण संघर्ष किया है। शास्त्रार्थ भी हुए, विरोध, बहिष्कार और यातनाएं सब सहनी पड़ीं।

सम्वत् १९६१ वि० तदनुसार १९०४ ई० में उपाध्याय जी ने अपनी पत्नी के उपनयन संस्कार का सोत्साह आयोजन किया आर्य नर नारी बड़े धर्मभाव से उनके निवास पर आए। "सबके

मुखों पर उल्लास, उत्साह, मनों में आनन्द और एक नये प्रका का औत्सुक्य था।" बिजनौर के सभी प्रमुख आर्य समाजी आ परन्तु बिजनौर आर्य समाजी के प्रधान बाबू धरणीधर दास इन्जी-नियर नहीं आये न आने का कारण वही था, जिस कारण से अन्य लोग आये थे। वह आर्य समाज के एक निष्ठावान सदस्य थे। बंगाली कायस्थ थे। वह स्त्रियों के यज्ञोपवीत को अनुचित समझते थे।

बिजनौर क्षेत्र में इससे पूर्व किसी देवी का उपनयन संस्कार नहीं हुआ था। पण्डित चतुर्भुज नाम के एक आर्य पुरुष ने संस्कार में आचार्य का काम किया। संस्कार को देखने के लिए भारी भीड़ एकत्रित हो गई। इस समारोह की अच्छी चर्चा हुई।

संस्कार सम्पन्न हो गया। इसके पश्चात् बाबू धरणीधर ने Arya Patrika आर्य पत्रिका साप्ताहिक में इस घटना को लेकर स्त्रियों के यज्ञोपवीत को अनुचित ठहराते हुये एक लेख दिया। मित्रों ने उपाध्याय जी को यह लेख दिखाया। आपने भी अंग्रेजी में स्त्रियों के यज्ञोपवीत को वेद विहित व आर्ष मर्यादा सिद्ध करते हुये उक्त पत्रिका में एक लेख दिया। लेख छप गया। इस लेख से उपाध्याय जी की प्रतिष्ठा को चार चांद लग गये। वह समाज के मन्त्री बना दिये गये।

विचित्र बात तो यह है कि १९०४ ई० से लेकर १९१७ ई० के बीच किसी और देवी का विजनौर क्षेत्र में यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ। १९१७ ई० में पन्डित जयनारायण जी की पुत्री चन्द्रावती का उपनयन संस्कार उपाध्याय जी से करवाया गया।

यह कन्या आगे चलकर लेखिका के रूप में बड़ी विख्यात हुई। चन्द्रावती जो यशस्वी विद्वान लेखक पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार की पत्नी थीं।

१९१८ ई० में प्रयाग में उपाध्याय जी ने अपनी सुपुत्री कु० सुदक्षिणा का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। प्रयाग में इससे पूर्व किसी कन्या का उपनयन संस्कार नहीं हुआ था। इस अवसर पर भारी भीड़ थी। उस युग में स्त्रियों के यज्ञोपवीत के लिए आगे आकर संघर्ष करना बड़े साहस की बात थी। संघर्ष भी मौखिक नहीं अपितु आचरण से किया गया। उपनयन के विषय में उपाध्याय जी के उद्बोधक विचार आज की पीढ़ी के लिये विचारणीय हैं। "आज उच्च और नीच, शिक्षित और अशिक्षित में भेद करने के लिये अनेक प्रकार के वाह्य लिङ्ग स्थापित किये जाते हैं जो आडम्बर पूर्ण हैं। यज्ञोपवीत जैसी सरल, सुगम, आडम्वर शून्य आवश्यक लिङ्ग की प्रथा चलाना प्राचीन ऋषियों के उच्च विचार और सरल जीवन (Plain living and high thinking) की सूचना देता है।"※

श्री पन्डित गंगा प्रसाद जी की पत्नी व पुत्री का उपनयन संस्कार ऐतिहासिक दृष्टि से कितना महत्वपूर्ण है। इसको जानने के लिये हमें उस काल की सामाजिक अवस्था का गम्भीर अध्ययन करना चाहिये। इसी उद्देश्य से हम यहाँ एक घटना देते हैं। जुलाई ३१, १९०४ ई० के दिन प्रयाग राज में पण्डितों की एक सभा आरम्भ हुई। इसमें यह सिद्ध हुआ कि 'नुनिया वंश' चौहान क्षत्रियों से उत्पन्न हुआ है। इसकी साक्षी कई पण्डितों ने दी।

※ द्रष्टव्य जीवन चक्र पृ० ७४

उनकी वंशावली बनाने वाले कथकों का भी यही मत था।

इस सभा ने यह व्यवस्था दी कि लुनिया लोग क्षत्रिय तो अवश्य हैं, परन्तु कई पीढ़ियों से व्रात्य नहीं। इसीलिये वेद मन्त्र व यज्ञोपवीत के अधिकारी नहीं हो सकते। एक पौराणिक पत्रिका 'नाईटा' नाम से प्रयाग से निकलता था। उसके सितम्बर के अङ्क में इस घटना का वृत्तान्त छपा था। उसी में यह भी छपा था दो एक पण्डितों ने इस व्यवस्था का विरोध करते हुए कहा था कि जब लुनिया क्षत्रिय वंश से हैं तो व्रात्य संस्कार कराके यज्ञोपवीत धारण करने व वेदाध्ययन से कौन रोक सकता है ? परन्तु इन पन्डितों के विचार को नाईटा पत्र ने 'झमेला' की संज्ञा दी। एक पन्डित ने किसी पोथी का प्रमाण दिखा कर वाह-वाह प्राप्त की महाव्रात्य को अर्थात् जिसका अनेक पीढ़ी से संस्कार बन्द हो... उपनयन व श्रुति श्रवण पठन का कतई कोई अधिकार नहीं है। इस पोथी का प्रमाण देकर उक्त पन्डित जी ने मैदान मार लिया बस फिर क्या था सबकी एक सम्मति हुई और सब पन्डितों को एक-एक मुद्रा दी गई। एक एक मुद्रा पाकर पन्डित वर्ग पूजित हुआ।

नाईटा पत्रिका के सम्पादक ने तब समस्त सनातन धर्मी विद्वानों को सावधान करते हुये लिखा था कि वे ऐसी ही निष्पक्ष व्यवस्था दिया करें अन्यथा आर्य समाजी लोग अपनी ओर खींच-कर सबको जैसे भी होगा वेदाधिकारी बना देंगे। ✻

प्रयाग में यह घटना ३१ जुलाई को घटी और नवम्बर

✻ द्रष्टव्य 'आर्य मुसाफिर' मासिक नवम्बर १९०४ ई० पृ० ७–८

१९०४ ई० को किसी दिन माता कला देवी जी का उपनयन हुआ। प्रकाश ने अन्धकार को चीरकर ललकारा या हम यह कह सकते हैं कि उजाले ने अन्धेरे को चुनौती को स्वीकार कर उसका समुचित उत्तर दिया।

आज अधम-आलस्य, असुर से डरना छोड़ो।
उद्यम को अपनाय, उपाय न करना छोड़ो॥
मन में भय संकोच, अमङ्गल भरना छोड़ो।
अन्न मिला भरपेट, क्षुधातुर मरना छोड़ो॥
(महाकवि नाथूराम 'शङ्कर' शर्मा)

शास्त्रार्थ और उपाध्याय जी

पण्डितजी जुलाई १९०४ ई० में बिजनौर आये। उनके आने से दो मास पूर्व नगीना का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था। इसमें इस्लाम के अनेक मौलवी आये। आर्य समाज की ओर से श्री मास्टर आत्माराम जी थे। इस्लाम के मुख्य वक्ता मौलाना सनाउल्ला थे। दोनों ही अमृतसरी थे। इस शास्त्रार्थ की बड़ी धूम रही। अच्छा प्रभाव पड़ा। कुछ समय बाद स्वामी योगेन्द्र पाल बिजनौर पधारे। उनका मुसलमानों से शास्त्रार्थ हुआ। उपाध्याय जी ने इसमें सोत्साह सहयोग दिया।

पण्डित जी ने अपनी आत्म कथा जीवन-चक्र में लिखा है कि जालन्धर के 'वैदिक मैगजीन' मासिक में श्री वजीर चन्द जी

की प्रेरणा से प्रयाग से निकलने वाले 'नूर अफशां' की एक लेख माला का उत्तर देते रहे। पन्डित जी ने लिखा है कि 'नूर अफशां' की यह लेखमाला सत्यार्थ प्रकाश के त्र्योदश समुल्लास के खण्डन में थी। इसका नाम सत्यार्थ प्रकाश दर्पण था।

उपाध्याय जी जीवन चक्र में यह संस्मरण देते हुये कुछ भूल कर गये। सत्यार्थ प्रकाश दर्पण' पादरी जे० एल० ठाकुरदास की पुस्तक थी। यह लाहौर से छपा थी। उपाध्याय जी ने 'खिलते आर्य' पुस्तक का उत्तार दिया था। यह पादरी डी० विलसन (D. Wilson) ने लिखी थी। पादरी डी० विलसन की पुस्तक 'नूर अफशां' में क्रमशः छपी या नहीं इसका हमें अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला। इसके उत्तर में लिखे गये उपाध्याय जी के लेख हमारे पास सुरक्षित हैं। तब पन्डित जी विजनौर आर्य समाज के मन्त्री थे। लेखों पर गंगा प्रसाद मन्त्री आर्य समाज विजनौर छपता था। यह १९०६–७ की बात है। पन्डित जी के ये लेख 'आर्य मुसाफिर' मासिक में छपते थे। वैदिक मैगजीन में नहीं। श्री वजीर चन्द इसके सम्पादक थे।

पादरी डी० बिलसन की पुस्तक का उत्तर देने के लिये श्री वजीर चन्द विद्यार्थी जी ने उपाध्याय जी को प्रेरित किया था। यह इस बात का प्रमाण है कि पण्डितजी के आर्य समाज में प्रविष्ट होते ही उनकी योग्यता, स्वाध्याय, लेखन शक्ति व शैली का आर्य समाज में प्रभाव फैलता गया।

धीरे-धीरे गंगा प्रसाद जी की रुचि बदल गई। अब वह शास्त्रार्थ करने की बजाये संस्कृत का गम्भीर अध्ययन करके

वैदिक सिद्धान्तों के मण्डन में ऊँचा साहित्य देने के लिये जुट गये। संस्कृत से प्रेम तो पहले भी था। अब दिन प्रतिदिन यह प्रेम बढ़ने लगा। ट्रेनिंग कालेज में अरबी भी आपका विषय था। आपने जीवन की संध्या वेला में प्रयोग में शास्त्रार्थों में रुचि ली परन्तु स्वयं शास्त्रार्थ नहीं किया। आप समझते थे कि अब विधर्मी आर्य समाज से शास्त्रार्थ करने से कतराते हैं। शास्त्रार्थों के नियन्त्रण देने से कोई विशेष लाभ नहीं, अब तो वहाँ पहुंचना चाहिए जहाँ पादरी व मौलवी घात लगाकर अपना प्रचार कर रहे हैं।

बिजनौर में तो गंगा प्रसाद आर्य समाज के मन्त्री पद पर आसीन हुये परन्तु बाराबंकी व प्रतापगढ़ में कोई पद ग्रहण न किया। सेवा करने में कोई कसर न छोड़ी। बाराबंकी में ही पादरी ज्वाला सिंह से गिरजाघर में आपका शास्त्रार्थ हुआ था। इस शास्त्रार्थ को सुनने के लिये सारा बाजार उमड़ पड़ा। श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी बाराबंकी के अपने संस्मरणों में सुनाते हैं कि पन्डित भोजदत्त जी का भी पादरी ज्वाला सिंह से शास्त्रार्थ हुआ था। आर्य समाज के उत्सवों पर आमान्त्रित विद्वानों के भोजन आदि की व्यवस्था उपाध्याय जी ही करते थे। अब सब सामाजिक कार्यों में उनके दोनों बड़े पुत्र सत्य प्रकाश व विश्व प्रकाश उनके सहायक होते थे। चाहे शास्त्रार्थ का आयोजन हो और चाहे वार्षिकोत्सव, पन्डित जी का परिवार आर्य समाज की सेवा में सदैव तत्पर रहता था। स्वामी सत्य प्रकाश जी बताते हैं कि प्रयाग आने पर पन्डित जी का एक बहुत बड़े मौलवी से शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थ का निमन्त्रण मुसलमानों ने दिया।

शास्त्रार्थों का लाभ तो बहुत था। इससे विभिन्न विचारों के लोग एक दूसरे को समझने का यत्न करते थे। परन्तु राजनैतिक दलों ने वोट-नोट के लिये ऐसा विषैला वातावरण बना दिया है कि अब शास्त्रार्थों का युग ही समाप्त हो गया। तथापि आर्य समाज को अच्छे शास्त्रार्थ महारथियों का निर्माण करना चाहिये।

इलाहाबाद का शास्त्रार्थ और उपाध्यायजी:-

जनवरी १६५५ ई० में प्रयाग में आर्य समाज का ईसाइयों से एक महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ पादरी अब्दुल हक से होना प्रस्तावित था। किंतु बाहर जाने के कारण वह न आ सके। उत्तर भारत के पादरियों के प्रमुख श्री रूलिया राम किसी अन्य पादरी को भेजना चाहते थे। आर्य समाज का आग्रह था कि वह स्वयं शास्त्रार्थ करें। पादरी महोदय को आशंका थी कि आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी उनके प्रति कोई अशोभनीय शब्द न कह दें। आर्य समाज ने आश्वासन दिया कि वह ऐसी आशंका मन से निकाल कर आयें। शास्त्रार्थ में शिष्टाचार का पूरा ध्यान रखा जावेगा।

आर्य कन्या विद्यालय के मैदान में शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ के प्रधान थे, तार्किक शिरोमणि श्री पन्डित रामचन्द्र जी देहलवी। आर्य समाज के मूर्धन्य विद्वान संन्यासी श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ, श्री पण्डित बिहारीलाल जो शास्त्री, विश्व प्रकाश प्रधान, चौक समाज शास्त्रार्थ में उपस्थित होते थे। आर्य गौरव पन्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय शास्त्रार्थ में विराजमान होकर एक-एक शब्द को ध्यान से सुनते थे।

शास्त्रार्थ का विषय था ईशवरीय ज्ञान। आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित शान्ति प्रकाश जी ने हर वार पादरी जी को माननीय कहकर सम्बोधित किया। पन्डित जी की शिष्टता से पादरी जी बड़े प्रसन्न हुये। पन्डित जी ने प्रमाणों

की झड़ी लगाकर सिद्ध किया कि बाईबिल ईश्वर ज्ञान नहीं हो सकता।

एक बार पादरी जी ने आर्य समाज के लिए कठोर शब्दों का अनुचित प्रयोग किया। पन्डित शान्ति प्रकाश जी ने विनय की, कि पादरी जी के लिये शोभा की बात यह है कि वह इन शब्दों पर खेद प्रकट करें। पादरी जी पर इस विनीत विनती का अच्छा प्रभाव पड़ा। आपने चारों ओर घूमते हुये आर्य भाईयों से क्षमा कर देने की प्रार्थना की। पादरी जी ने कहा कि मेरे अन्दर शैतान समा गया था जो ऐसी गाली मैंने दी। आर्य भाई बहिन मुझे क्षमा करें।

शास्त्रार्थ की सामाप्ति पर पादरी जी ने पन्डित शांतिप्रकाश जी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। उन्होंने सभ्यता पूर्वक शास्त्रार्थ किया है। प्रमाणों की अच्छी खोज की है। श्री पन्डित गगा प्रसाद जी ने तब पंडित शान्ति प्रकाश जी से कहा कि मैं ऐसे शास्त्रार्थों के विरुद्ध नहीं हूं। ऐसे शास्त्रार्थों से जनता का कल्याण होता है।

अगले ही वर्ष प्रयाग के स्वरूप रानी पार्क में पादरी अब्दुल हक से छः शास्त्रार्थों का आयोजन किया गया। इसकी प्रेरणा श्री पन्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय से मिली थी। दो तीन दिन में ही पादरी जी ने हथियार डाल दिये। पुनः जनवरी १९६१, फरवरी १९६३ ई० फरवरी १९६५ ई०, मार्च १९६७ ई० में आर्य समाज चौक के उत्सवों पर पादरी वाशिगटन से शास्त्रार्थ होते रहे। पादरी वाशिगटन भी बृद्धावस्था के कारण शास्त्रार्थ के क्षेत्र से पीछे हट गये। इस प्रकार अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उपाध्याय जी ने शास्त्रार्थों में फिर सुरुचि दिखाई। यह भी ध्यान रहे कि पादरी अब्दुल हक का निवास श्री डा० सत्य प्रकाश जी की कोठी के पास ही था। उपाध्याय जी व पादरी जी का परस्पर अच्छा मेल जोल था।

श्रद्धा सुमन

--श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय

को समर्पित

ज्ञान गंगा वह हरदम बहाते रहे।
वेद वाणी प्रभु की सुनाते रहे।
दीन बालक तपोबल से आगे बढ़े।
वह सदा दूसरों को उठाते रहे।

बेद आदेश जीवन में धारण किये, धीरे-धीरे कदम वह बढ़ाते रहे।
सत्य की खोज में वह समर्पित हुए, सत्य क्या है यह सबको बताते रहे।
जो कहा सो किया आचरण उच्च था, उच्च शिक्षा वह देते दिलाते रहे।
प्रेम आगार उनका हिया शुद्ध था, वह सभी को गले से लगाते रहे।
ध्यान आया न उनको कभो मान का, वह पदों को भी ठोकर लगाते रहे।
वह विनयशील सज्जन थे धर्मात्मा, वह पदों की प्रतिष्ठा बढ़ाते रहे।
भव्य भावों से उनका विभूषित हिया, लोकहित में वह जीवन बिताते रहे।
रूढ़ियां रौंदकर के उजाला किया, वह अंधेरों की बस्ती जलाते रहे।
मुस्कराते हुये कष्ट सहते रहे, शान शोभा हमारी बढ़ाते रहे।
बीसियों ग्रन्थ लिखकर अमर हो गये, ज्ञान अमृत सभी को पिलाते रहे।

दर्शनानन्द सम ज्ञान आगार थे।
सारा जीवन ऋषि ऋण चुकाते रहे।

ऐसा 'जिज्ञासु' मिलना है जग में कठिन।
वह पिपासा सभी को बुझाते रहे।

रचयिता : राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

स्वातन्त्र प्रेम–धर्मानुराग

आर्य समाज की विचार–धारा से अनुप्राणित प्रत्येक व्यक्ति पराधीनता से घृणा करने लगता था । आर्यों में स्वाधीनता की चाह एक स्वाभाविक-सी बात थी । ऋषि दयानन्द ने अपने शिष्यों को ऐसी घुट्टी घोट पिलाई कि वे विदेशी सत्ता की सेवा को एक पाप समझते थे । इसका यह अर्थ नहीं कि आर्य समाजी विदेशी शासकों के शासन-काल में राजकीय सेवा में नहीं थे । जो थे वे विवशता के कारण थे, न चाहते हुये उन्हें सरकारी सेवा में आना पड़ता था । आर्य लोग तो प्रभु-प्रार्थना करते हुये गाया करते थे:–

स्वाधीनता के मन्त्र का जय हम सदा करें ।
सेवा में मातृ-भूमि के तन-मन निसार हो ।

लाला साईं दास अपने समीप आने वाले युवकों में ऐसा ही भाव भरा करते थे। मुनिवर गुरुदत्त जी विद्यार्थी ने धर्म-प्रचार के लिए ही राजकीय सेवा से छुटकारा पाया । पण्डित लेखराम जी भी इसे मानवीय दासता समझते थे। महात्मा मुन्शी राम ने गुरुकुल-आँदोलन चलाया तो घूम-२ कर ऐसी भावनायें जन-जन में उभारीं । भला फिर हमारे चरित्र नायक पन्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय सरीखा मननशील युवक विदेशी सरकार की सेवा में कैसे रह सकता था ? जिस युवक ने श्रद्धा-पूर्वक आर्य साहित्य का गहन अध्ययन किया हो, जिसका हृदय ऋषि मिशन के लिए समर्पित हो चुका हो, वह कब तक राजकीय सेवा में रह सकता था ? उपाध्याय जी सरकारी सेवा में छटपटाते

थे। वह मन ही मन में कुढ़ते थे। यद्यपि सरकारी सेवा में बीसियों सुविधायें थीं तथापि वह अपने मन में ग्लानि अनुभव करते थे। उन्होंने अपने मन की व्यथा अपनी सहधर्मिणी श्रीमती कलादेवी जी के सामने व्यक्त की। उनके मनोभावों की तीव्रता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि 'जीवन चक्र' में एतद विषयक चर्चा का शीर्षक दासत्व विमोचन है।

प्रतापगढ़ में रहते हुये एक रात्रि घर गृहस्थी की बातें करते हुये पन्डित जी ने अपनी पत्नी जी से कहा,—"क्या मृत्यु गवर्मेंट की नौकरी में ही होगी ?"

पत्नी को ऐसी बात भला कब अच्छी लग सकती थी। एक आर्य देवी पति की मृत्यु की बात सुनना भी सहन नहीं कर सकती। श्रीमती कलादेवी जी ने इस पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहा,—"यदि सरकारी नौकरी ऐसी ही बुरी लगती है तो छोड़ क्यों नहीं देते ?"

पन्डित जी ने कहा—छोड़ तो दूँ, परन्तु गृहस्थ के दायित्व हैं। यह चिन्ता राजकीय सेवा से मुक्त नहीं होने देती। तुम्हीं को विपत्ति आने पर शिकायत होगी। सरल हृदय देवी ने कहा मेरी चिंता न कीजिये। मैंने तो आज तक आपसे किसी ऐसी वस्तु की माँग नहीं की जिससे आपके लिये कोई कठिनाई पैदा हो। मुझे तुम्हारी प्रसन्नता चाहिये। आप बिना सोचे समझे सरकारी नौकरी के बन्धन को तोड़ दें। अपनी पत्नी से सान्त्वना किंवा प्रोत्साहन पाकर उपाध्याय जी ने डी० ए० वी० स्कूल प्रयाग के प्रधानाचार्य का पद ग्रहण करने का मन बना लिया।

राजकीय सेवा की सुविधायें व अधिकार एवं सौ प्रकार को सुरक्षा तजने पर गंगा प्रसाद जो की प्रशंसा को गई, की जाती है और की जावेगी। धर्म के लिए, देश के लिये यह कोई साधारण त्याग न था परन्तु इतिहास एवं मनोविज्ञान के विद्यार्थी को यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि पूज्या माता कला देवी जी के सहयोग व आश्वासन के बिना पण्डित जी कभी भी अपनी मनोकामना पूर्ण न कर पाते। सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने वाले वे लोग बड़े भाग्यशाली हैं, जिनको अनुकूल विचार वाली सहधर्मिणी मिल जावे।

विद्यार्थी जीवन का सपना साकार हो गया। कभी समय था जब पन्डित जी वकील बनने की सोचा करते थे। महर्षि को जीवन दायिनी शिक्षा ने वकालत से उनका मुँह फेर दिया। लिखने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज) के सुपावन चरित्र की गहरी छाप ने भी उनके जीवन को नई दिशा दी।

सार्वजनिक जीवन का नया मोड़ आया। श्रद्धेय पन्डित जो ने प्रयाग वालों को लिख दिया कि मैं राजकीय सेवा का मोह त्याग तजकर डी० ए० वी० स्कूल को सेवा के लिए तैयार हूं। कण्टिकाकीर्ण मार्ग स्वेच्छा से चुन लिया। स्कूल घाटे पर चल रहा था। वेतन देने के लिये पैसे न थे। उस युग में स्कूल पर १०६०० रु० का ऋण था। अति कोमल भावनाओं वाले उपाध्याय जी सुकठोर व्रत लेकर मैदान में उतर आये। २१ जुलाई १९१८ ई० से लेकर २१ जुलाई १९३९ ई० तक वह इस पद को सुशोभित करते रहे।

५८ वर्ष की आयु में आर्य नेताओं की सत्प्रेरणा से आपने यह पद त्याग दिया। मिस्टर काज़मी शिक्षा विभाग के इन्सपैक्टर थे। उन्होंने पण्डित जी को कहा भी कि स्वस्थ हो, कार्य कर की क्षमता है। फिर अभी से क्यों छोड़ रहे हो परन्तु धर्म सेवा के लिये वह तो भरा मेला छोड़कर जाना चाहते थे। उनका यह कार्यकाल कैसा था ? उन्हीं के शब्दों में पढ़िये:—

"मुझे सन्तोष है कि इन २१ वर्षों में एक घटना भी ऐसी नहीं हुई जिसमें जनता, विद्यार्थियों, प्रबन्धकर्ताओं या शिक्षा विभाग के अध्यक्षों की ओर से मुझे कोई शिकायत हो सके।

पूज्य पण्डित जी का बड़प्पन

उनके इस कार्यकाल की बीसियों घटनायें अत्यन्त शिक्षाप्रद व प्रेरणाप्रद हैं। उनके शिष्यों के संस्मरण लिये जाएँ और उनके सहकारियों के संस्मरणों के संग्रहीत किया जावे तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जावे, परन्तु हम यहां गागर में सागर की लोकक्ति के अनुसार केवल एक घटना देकर अपने सुविज्ञ पाठकों को उनके बड़प्पन का दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

उपाध्याय जी ने देखा कि स्कूल बहुत घाटे में जा रहा है परन्तु प्रबन्धक लोग वैयक्तिक उत्तरदायित्व पर एक संस्था के लिए ऋण लेकर काम चला रहे थे। इससे उनका भी साहस बढ़ा। वह तनिक नहीं घबराये। पश्चाताप करने का तो प्रश्न ही न था। जब वेतन वितरित किया जाता तो उपाध्याय जी सर्व-प्रथम न्यूनतम वेतन पाने वाले कर्मचारियों को वेतन देते। सबसे पीछे उनकी अपनी बारी आती थी। इस कारण जनता को स्कूल के विकट आर्थिक संकट का आभास न होता था। प्रयोग की

अन्य संस्थाओं में ठीक इसके विपरीत अवस्था थी । आर्य समाज के कीर्ति भवन की नींव इसी पवित्र भावना पर रखी गई । आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओं के संचालकों की मनोवृत्ति ऐसी रही। अपवाद रूप में पद लोलुप, कुटिल व अधार्मिक व्यक्ति भी कहीं कहीं थे परन्तु उनको घुस पैठिये ही जानना मानना चाहिये। वे लोग धार्मिक प्रवृत्ति के तो थे नहीं। पद लालसा व आर्य समाज की साख उनको खींच लाई। वे अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये समाज में घुस गये। उपाध्याय जी का यह त्याग और यह साधना असाधारण है। कहना सरल है परन्तु करके दिखाना कठिन, अति कठिन है। कहा जाता है कि आर्य समाज की चक्की चलती तो धीरे है, परन्तु पीसती बारीक है। उपाध्याय जी इसका साक्षात उदाहरण थे। स्कूल के भवन तब भले ही कच्चे थे। परन्तु प्रधानाचार्य उपाध्याय जी की भावनाएँ बहुत पक्की थीं। आज प्रयाग में आर्य समाज की संस्थाओं के विशालकाय भवन उसी तपःपूत की सतत् साधना का स्मरण कराते हैं।

यहाँ यह उल्लेख कर देना अति आवश्यक है कि प्रयाग के दयानन्द स्कूल की आधार शिला रविवार वैशाख शुक्ला १२ सम्वत् १९७२ वि० तदनुसार १४ मई १९१६ ई० को प्रसिद्ध वैदिक विद्वान श्रीमान पण्डित क्षेमकरण जी त्रिवेदी से रखवाई गई थी। प्रशंसित त्रिवेदी जी को इस बात पर बड़ा गर्व व सन्तोष था कि जिस विद्यालय की आधार शिला उनके कर कमलों से रखवाई गई थी, उस संस्था के आचार्य पद पर पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय आसीन हैं। त्रिवेदी जी ने लिखा है:—

"संस्कृत फ़ारसी, अंग्रेजी आदि के बड़े विद्वान, आर्य-समाज

के मुख्य स्तम्भ महाशय गंगा प्रसाद जी एम० ए० हैड मास्टर है । ※

प्रयाग का सार्वजनिक जीवन

पण्डित जी को सार्वजनिक जीवन में व्यर्थ की उछल कूद पसन्द न थी । आर्य समाज की चक्की चलती तो धीरे है। परन्तु पीसती बारीक है।' यह उक्ति उन पर पूरी चरितार्थ होती थी। उनके गुणों व उनके स्वभाव के कारण प्रयाग की अन्य-२ संस्थाओं का ध्यान भी इस शाँत गम्भीर व्यक्तित्व की ओर खिचता चला गया। देश हित करने वाली सभी संस्थायें उनका सहयोग व मार्ग दर्शन चाहती थी। वह १९१८ ई० में प्रयाग आये। उनके आने से कुछ समय पूर्व ही श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय ने सेवा समिति की स्थापना की थी। इस संस्था के द्वारा बड़ा उपयोगी कार्य होता रहा है। पन्डित जी भी इसके सहायक व सदस्य रहे। वह आजीवन इसके सदस्य रहकर इसे सहयोग देते रहे।

एक सच्चा आर्य पुरुषार्थ व परमार्थ का पुतला होता है। उसमें कार्य करने की विलक्षण शक्ति होती है। वह संस्थाओं को चलाने व संस्थाओं के निर्माण की कला में प्रवीण होता है। पन्डित जी की कर्मठता का लाभ हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी उठाया। वह इस सम्मेलन के उप सभापति भी रहे। विश्व को सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक लिपि देवनागरी के प्रचार व राष्ट्रीय एकता

※ द्रष्टव्य त्रिवेदी जी का आत्म चरित्र अथर्व वेद भाष्यम् प्रथमो भागः।

की कड़ी हिंदी की सेवा करने के लिये वह आजीवन यत्नशील रहे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका ही नहीं उनके परिवार का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। पन्डित जी ३० दिसम्बर १९३१ को हिन्दी साहित्य सम्मेलन के झाँसी अधिवेशन के दर्शन सम्मेलन के सभापति चुने गये थे।

पन्डित जी प्रयाग के महिला विद्यापीठ के भी सदस्य रहे। आर्य समाज चौक के प्रधान होने के नाते से वह आर्य कन्या पाठशाला (वर्तमान आर्य कन्या इन्टर कालेज) के प्रबन्धक भी रहे। हिन्दू अनाथालय मुट्ठी गंज के भी पन्डित जी सदस्य रहे। प्रधान भी रहे और उप प्रधान भी रहे और भी कई संस्थायें उनके मार्ग दर्शन से लाभान्वित होती रही।

एक ऐतिहासिक कार्यः—पण्डित जी उ० प्र० के इंटरमीडियेट वोर्ड के सदस्य बने तो आपने इस आशय का प्रस्ताव रखा कि शिक्षा और परीक्षा का माध्यम हिन्दी उर्दू को बनाया जावे। अंग्रेजी माध्यम अस्वाभाविक व बोझिल है। तीन वर्ष के निरन्तर संघर्ष का परिणाम यह निकला कि कुछ विषयों में ऐच्छिक रूप से हिन्दी को माध्यम चुनने की छूट मिल सकी। अब १९४७ ई० के पश्चात् तो देशवासियों का उन्माद सा हो गया है। पहले अंग्रेजों का राज था अब अंग्रेजी का राज है। महापुरुषों का देश भक्तों का समाज सेवकों का सारा तप मिट्टी में मिलाया जा रहा है।

हैदराबाद सत्याग्रह

बूढ़ों ने बढ़के धर्म पै कुर्बां बुढ़ापा कर दिया।
आयेंगी काम कब कहो, चढ़ती हुई जवानियां

(अमर स्वामी जी)

हैदराबाद का निज़ाम भारत में सबसे सम्पन्न शासक माना जाता था। कृपणता में भी बेजोड़ था। मतान्धता में औरङ्गजेब से कम न था। वैसे तो उन्नीसवीं शताब्दी की अन्तिम दशाब्दी में ही हैदराबाद राज्य में आर्यों पर अत्याचार होने आरम्भ हो गये थे। रक्त साक्षी श्री पन्डित लेखराम की दिव्य दृष्टि की इतिहासकार प्रशंसा करेंगे। जिन्होंने वर्षों पूर्व भांप लिया था कि आर्य समाज को हैदराबाद राज्य से एक दिन लोहा लेना होगा।

पानी सिर से निकल गया। आर्यों पर अकथनीय अत्याचार होने लगे। निज़ाम उस्मान अली हिन्दुओं को मिटाने पर तुल गया। देवियों का अपहरण, लोगों को बलात् मुसलमान बनाने की घटनाएं, मन्दिरों को तोड़ना, आर्य समाज के प्रचार पर प्रतिबन्ध, आर्यों पर आक्रमण—ये सब कुछ आये दिन होता रहता था। हैदराबाद के आर्यों ने बलिदान का पथ चुन लिया। एक के बाद दूसरे आर्य वीर ने वैदिक धर्म की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति दी। वेद प्रकाश की निर्मम हत्या से आर्य समाजियों का उत्साह न बन्द हुआ न मन्द हुआ। हैदराबाद राज्य के वाम आर्य नेता दीन बन्धु भाई श्याम लाल जी वकील को बीदर जेल में विष देकर मारा गया। इस प्राणवीर के बलिदान से आर्य समाज में नवीन चेतना का संचार हुआ।

जो सत्याग्रह राज्य के आर्यों ने आरम्भ किया था, अब उसे सार्वदेशिक सभा ने हाथ में ले लिया। तब आर्य समाज का नेतृत्व जोड़ तोड़ करने वाले पद लोलुप व मन्दगति नेताओं के हाथ में न था। पूजनीय महात्मा नारायण स्वामी जी व लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी जैसे बलिदानी सेनानी आर्य समाजी के सर्वमान्य नेता थे। रणभेरी बज गई। शोलापुर में एक ऐतिहासिक आर्य महा सम्मेलन हुआ। श्री पन्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय जी भी उसमें सम्मिलित हुए। सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी कर्मयोगी नारायण स्वामी जी नियत हुए। श्री महाराज ने लिखित रूप से आज्ञा दे दी कि मेरे बाद सत्याग्रह का संचालन स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज करेंगे। वह किसी भी स्थिति में जेल न जा सकेंगे।

उपाध्याय जी शोलापुर से घर लौटने लगे तो महात्मा नारायण स्वामी जी से कहा कि यदि मेरी किसी सेवा की आवश्यकता हो तो मुझे आप आदेश भेज दें।

श्री महाराज ने कहा,—"क्या तुमको अवकाश है?" पण्डित जी ने कहा, अवकाश तो नहीं है। परन्तु यदि ऐसे काम के लिए श्रीमुख से आदेश होगा तो अवकाश निकाला ही जायेगा।" पन्डित जी शोलापुर से नागपुर होते हुये घर पहुंचे तो महात्मा जी का तार प्राप्त हुआ कि अविलम्ब चले आओ। तुम्हारी आवश्यकता है। पन्डित जी अवकाश लेकर शोलापुर पहुँच गये। दोनों स्वामियों के साथ और भी कई संन्यासी वहाँ डेरा डाले हुये थे।

हैदराबाद सत्याग्रह के रक्त रन्जित इतिहास को पढ़ने के लिये पाठक "लौह-पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द" पुस्तक देखें। आर्यों में तब कितना उत्साह था। इसका परिचायक इस अध्याय का शीर्षक है। यह महात्मा अमर स्वामी रचित एक कविता का पद है। वयोवृद्ध महात्मा नारायण स्वामी जी जब निज़ाम के बन्दी बने तो ६२ वर्षीय आजन्म ब्रह्मचारी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने धर्म युद्ध की कमान संभाली।

बूढ़ों ने बढ़कर धर्म पै कुर्बां बुढ़ापा कर दिया।
आएंगी काम कब कहो चढ़ती हुई जवानियां॥

इस गीत व ऐसी रचनाओं को पढ़ सुनकर आर्य युवकों में बलिदान के लिए होड़ लगी। आबाल वृद्ध हैदराबाद जाने के लिए तड़पने लगे। पन्डित बुद्धदेव मीरपुरी गुलबर्गा जेल में महाशय खुशहाल चन्द जी को मिलने गये तो महाशय जी (श्री आनन्द स्वामी जी महाराज) ने आर्य युवकों के नाम सन्देश दिया।

खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौजवानों उठती जवानियां हैं॥

जब धरती भर के आर्यों ने धर्म के लिए सिर धड़ की बाज़ी लगा दी हो, तो फिर पन्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय कैसे पीछे रहें। उनको सत्याग्रह के पक्ष में लेख पुस्तिकाएँ तैयार करने व पत्र पत्रिकाओं में विरोधियों के लेखों का उत्तर देने का कार्य

सौंपा गया। सौभाग्य से वह अंग्रेजी हिंदी उर्दू के पत्रों में लिखने के लिए एक कुशल लेखक थे।

उपाध्याय जी के एक कविता पद ने इस धर्म युद्ध के इतिहास में अमर ख्याति प्राप्त कर ली है। निज़ाम उस्मान उर्दू में कविताएँ लिखा करता था। २५ फरवरी के 'राहबरे दक्किन' उर्दू पत्र में निज़ाम की एक गज़ल छपी जिसका एक पद यह था,

बन्द नाकूस हुआ सुनके नदाए तक्बीर।
जलज़ला आ ही गया सिलसिले जुन्नार पै भी १

अर्थात् मस्जिदों में मुसलमानों की अल्लाह अकबर की आवाज़ सुनकर हिंदु लोगों के दिल दहल गये। मन्दिरों के शंख बन्द हो गये और उनके जनेऊ शरीर की कम्पन के कारण हिल उठे। कुछ स्रोत जुन्नार से पहले सिसिले शब्द की बजाय रिशाता शब्द लिखा है और यह ठीक लगता है। २

पण्डित जी ने एक कविता में इस गज़ल का उत्तर देकर एक भविष्यवाणी की, जो अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। पण्डित जी की कविता का पद आर्यों की गौरव पूर्ण विजय की याद दिलाता हैः—

---

१ द्रष्टव्य 'जीवन चक्र' तथा लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द पृ० १३६
२ द्रष्टव्य Hyderabad And Arya Samaj Page 14-15

तीन धागे थे फ़क़त सूत के कच्चे लेकिन
बाज़ी जुन्नार ने ली हैदरी तलवार पैं भी।

यज्ञोपवीत के तीन तार कच्चे सूत के ही सही परन्तु अन्यायी निज़ाम के अत्याचारों का प्रतिकार करते हुये इन तागों ने हैदरी तलवार पर विजय पाई है।

गाँधीजी को निज़ाम की दुष्प्रवृत्ति के बारे में बताया गया तो वह माने ही नहीं। 'राहबरे दक्कन' की वह प्रति न मिली। तब उपाध्याय जी के रिकार्ड से इलाहाबाद से वह अङ्क मिला। गाँधीजी को वह अङ्क दिखाया गया। उपाध्याय जी की उपरोक्त कविता कई आर्य पत्रों में छपी।

पण्डित जी जनवरी से मार्च तक शोलापुर में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज फील्ड मार्शल आर्य सत्याग्रह के साथ रहे। फिर प्रयाग लौटे। मार्च के अन्त में प्रयाग लौटे। मई में पुनः दिल्ली मुख्य कार्यालय में आकर सत्याग्रह के कार्य में जुट गये। जून १९३९ में उन्हें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया। वहाँ से निज़ाम के फ़रमानों व सरकार के पत्रों को देखना व उनकी प्रतिलिपियाँ प्राप्त करनी थीं। इसके अति कठिन कार्य को पूज्य उपाध्याय जी ने बड़ी योग्यता व दक्षता से कर दिखाया। आर्य समाज का पक्ष लन्दन में ब्रिटिश सरकार व संसद के सामने रखने के लिये यह सामग्री आवश्यक थी। ग्रीष्म काल के बाद स्कूल खुला। पण्डित जी का लौटना आवश्यक था। सत्याग्रह अभी चल रहा था। पण्डित जी त्याग पत्र देकर धर्म

रक्षा के लिये पुनः दिल्ली आ गये ।

पन्डित जी जब हैदराबाद में अपने पक्ष के लिये प्रमाण व Documents (लेखपत्र) इकट्ठे करने गये थे तो उन्होंने वहाँ एक पत्र के सम्वाददाता के रूप में राज्य के पब्लिसिटी विभाग के अध्यक्ष से भेंट करके परिस्थिति के विषय में वार्ता की। एक रोचक घटना उसी समय की है। पन्डित जी ने उक्त अधिकारी से पूछा, "यह तो बताइये कि आपकी जेलों में जो लोग मर जाते हैं उनकी लाशों पर घावों के निशान क्यों मिलते हैं ?"

उसका हास्यास्पद उत्तर था, "अजी हम तो रोगियों की भरसक चिकित्सा करते हैं। अच्छे से अच्छे डाक्टर उनको देखते हैं। परन्तु जब आर्य लोगों को मृतकों की लाशें वापिस दी जाती हैं तो वह चाकू से घाव करके फोटो ले लेते हैं।"❀

पन्डित जी जब शोलापुर में सत्याग्रह शिविर में कार्य कर रहे थे, तब जब कभी समय मिलता था तो श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी से गम्भीर धार्मिक व दार्शनिक विषयों पर चर्चा किया करते थे। युद्ध के मोर्चे पर भी दर्शनों के सूत्रों पर चिन्तन करना इन्हीं का काम था।

विजय का उन्माद बहुत हानिकारक होता है। आर्य समाज को चेतावनी देते हुये पण्डित जी ने सत्याग्रह के पश्चात एक लेख में लिखा था:—

❀द्रष्टव्य जीवन चक्र' पृ० १४६

युद्धों के इतिहास पर दृष्टि डालिये। विजय प्राप्त होते ही नई समस्यायें उपस्थित हो जाती हैं। ये समस्यायें किसी प्रकार युद्ध से कम जटिल नहीं होतीं। जब वीर युद्ध से छूटते हैं तो उन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण भी कठिन हो जाता है।...नेतृत्व किसके हाथ में हो ? ये सब प्रश्न जब भयानक रूप से खड़े होते हैं तो विजय पराजय से भी भीषण हो जाती है।"※

इस सत्याग्रह में पण्डित जी कारागार में नहीं गये परन्तु सत्याग्रह की सफलता के लिये उनकी सेवाओं का महत्व किसी प्रकार से भी कम नहीं। उनका योगदान भी उतना ही महत्व रखता है जितना जेल की यातनाएँ सहन करने वालों का। उन्होंने किस योग्यता से निजाम सरकार के भ्रामक प्रचार की धज्जियाँ उड़ाईं, इसके लिये पाठक उनके लेख "Hyderabad Reforms and Arya Samaj" को देखें। एक एक पंक्ति पण्डित जी की सूझ बूझ का परिचय देती है।※※ आर्य समाज की संकट की घड़ी में संक्षिप्त सा परिच्छेद कर देना कोई साधारण सी बात तो है नहीं।

सत्याग्रह संग्राम में पण्डित जी ने इस धर्म युद्ध के पक्ष में और विरोधियों के विषैले प्रचार के प्रतिवाद में बहुत कुछ लिखा। उस साहित्य पर लेखक का नाम नहीं छपता था। प्रकाशक के रूप में सार्वदेशिक सभा का ही नाम छपता था। उदाहरण के लिये

※ देखिये 'सार्वदेशिक' मासिक सितम्बर १६३६ ई० पृ० ३७१

※※ द्रष्टव्य 'सार्वदेशिक' मासिक अगस्त १६३६ ई० पृ० ३३६—३४४ तक।

"Hyderabad & Arya Samaj" ट्रैक्ट श्री पण्डित जी का ही लिखा हुआ लगता है। यह ट्रैक्ट हमारे पास है।

कलम आज उनकी जय बोल

इस अध्याय की समाप्ति पर यहाँ यह चर्चा भी कर दें कि सत्याग्रह से पूर्व शोलापुर के ऐतिहासिक आर्य महा-सम्मेलन में प्रस्ताव संख्या दस श्री पूज्य पण्डित जी द्वारा प्रस्तुत किया गया था। प्रस्ताव के शब्द हम यहाँ देते हैं:—

"यह सम्मेलन उन अनेक स्त्री, पुरुषों और बच्चों के प्रति जिन्होंने वैदिक धर्म और संस्कृति की पवित्र वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दी है, अपनी प्रसन्नता एवं कृतज्ञता प्रकाशित करता है और बधाई देता है। यह सम्मेलन उन बहु-संख्यक स्त्री, पुरुषों को उनकी नैतिक सहायता और सहानुभूति के लिए धन्यवाद देता है। जिनसे आर्य समाज के सदस्य न होते हुये भी धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये हमारे इस युद्ध में हार्दिक सहानुभूति और सहायता प्राप्त हो रही है।"卐

आइये! हम भी अतीत-अवलोकन करते हुये वीरों का स्मरण करें। मिलकर 'दिनकर' जी के शब्दों में कहें:—

卐 द्रष्टव्य 'आर्य सम्मेलन शोलापुर का कार्य विवरण पृ० ३१ एवं ३८ तथा द्रष्टव्य है। सार्वदेशिक' साप्ताहिक जनवरी १९३९ ई० पृ० ५२.

कलम आज उनकी जय बोल !

जला अस्थियाँ बारी-बारी, छिटकायी जिनने चिनगारी।
जो चढ़ गये पुण्य-वेदी पर लिए बिना गरदन का मोल ॥
कलम आज उनकी जय बोल ......।

एक कार्य जो पण्डित जी न कर पाये:-

पण्डित जी रचनात्मक रीति से सोचते व चलते थे। उन्होंने पग पग पर और क्षण-२ अपनी सृजनात्मक शक्तियों का सदुपयोग किया। सत्याग्रह संग्राम की विजय के पश्चात् समस्त आर्य जगत् के लिये उनका यही सन्देश था। यही उपदेश था कि—"विजय की शोभा विनय है। जिस विजय में विनय नहीं उसका परिणाम दूषित हो जाता है।" पन्डित जी ने रचनात्मक कार्यों के लिये आर्यों को प्रेरित करते हुये लिखा था,—"अभी हम ६ मास तक और यह समझलें कि हमें आत्म त्याग करना है। पैसा भी देना है और ध्यान भी।"× पन्डित जी ने जो कहा व लिखा सो स्वयं कर दिखाया। सार्वदेशिक सभा ने भी एक ठोस कार्यक्रम तैयार किया। उसके एक भाग की पूर्ति श्री उपाध्याय जी व ला० रामप्रसाद जी बी० ए० को करनी थी।" सत्याग्रह सम्बन्धी अन्य रोमाँचकारी घटनाएँ लेखबद्ध कराके छपवाई जायेंगी।"◆पन्डित जी यह कार्य क्यों न कर पाये इसका कारण हमें ज्ञात नहीं हो सका। पंचायती कार्यों में कई अड़चने आ जाती हैं। तथापि पंडित जी ने इस विस्तृत कार्यक्रम की पूर्ति में कई प्रकार का और

× द्रष्टव्य 'सार्वदेशिक' सितम्बर १६३६ पृ० ३७३

◆ वही पृ० ३६७

ठोस योगदान दिया । १९४० में 'बारी ताला' नाम की आपकी एक उत्तम उर्दू पुस्तक हैदराबाद से प्रकाशित हुई । 'शहीदाने हैदराबाद' उर्दू में एक अच्छी पुस्तक श्री पण्डित नरेन्द्र जी ने लिखीं । आपने उसकी बड़ी सुन्दर भूमिका लिखी । पुस्तक न छपी कहाँ गई ? पता नहीं ।

मदुराई का आर्य महा सम्मेलन

श्री पन्डित जी गहराई से सोचते थे और दूर तक देख वाले नेता था । अन्यतर भी हम लिख चुके हैं कि आर्य समाज मेंने प्रविष्ट होते ही वह प्रत्येक प्रश्न को धर्म की कसौटी पर कसकर देखने लगे और मुख्य क्या है ? गौन क्या है ? इसका भेद करके पग उठाते थे ।

जब वह शोलापुर में उपदेशक विद्यालय में थे तो दक्षिण भारत के प्रदेशों में आर्य समाज के प्रचार एवं संगठन को फैलाने के लिए उद्योग करते रहे । तब मराठी पत्रों में व दक्षिण के पत्रों आर्य समाज पर आपके कई लेख छपे । पन्डित जी चाहते थे कि निज़ाम राज्य में आर्य प्रतिनिधि सभा है, मद्रास, कर्नाटक, आँध्र व केरल के कुछ समाजों को एक सूत्र में पिरोकर एक प्रतिनिधि सभा बना दी जावे । आर्य समाज के संस्थापक को तो महाराष्ट्र से नीचे जाने का अवसर न मिल सका । ऋषि को श्री शंकर शास्त्री केरलीय के रूप में दक्षिण से एक योग्य श्रद्धालु मिला परन्तु शास्त्री जी तो उत्तर में ही रह गये और शीघ्र उनका भी निधन हो गया ।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने दक्षिण की यात्राएँ कीं। अच्छा प्रभाव पड़ा। स्वामी जी ने आर्य युवकों को दक्षिण के प्रांतों में धर्म प्रचार के लिये प्रेरित किया। कुछ काम हुआ भी। उपाध्याय जी इतने से ही सन्तुष्ट न थे। उन्हें नाम की भी चाह न थी। वह तो काम चाहते थे। जब उपदेशक विद्यालय का कार्य बन्द किया जा रहा था उन्हीं दिनों हिंदू महा सभा ने मदुराई में अपना अखिल भारतीय सम्मेलन करना निश्चित किया। क्राँतिकारियों के सम्राट स्वातन्त्र्य वीर सावरकर इसके सभापति मनोनीत हुये। पण्डित जी ने मद्रास के आर्य भाइयों से मिल कर मदुराई में उन्हीं तिथियों पर आर्य महा सम्मेलन करना निश्चित करवा दिया। सार्वदेशिक सभा ने श्री शिव चन्द्र जी (वर्तमान स्वामी ओम् आश्रित जी) को पण्डित जी के सहयोग के लिये भेजा। मदुराई में तब आर्य समाज स्थापित हो गया। पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी आर्य महा सम्मेलन के अध्यक्ष मनोनीत हुये। आपने सम्मेलन के प्रचार के लिये सम्मेलन से पूर्व दक्षिण के प्रदेशों का एक भ्रमण किया। ला० नारायण दत्त, श्री महाशय कृष्ण आदि नेता मदुराई पहुँचे। दक्षिण के आर्य बन्धु तो पहुँचे ही। वीर सावरकर, डा० मुंजे, श्री निर्मल चन्द्र चटर्जी ने भी आर्य सम्मेलन में भाव पूर्ण भाषण दिये। शीघ्र सार्वदेशिक के अधिकारी बदले। नीति बदली। दक्षिण में जो कार्य आरम्भ हुआ था उसे बढ़ाया न गया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के शिष्यों को हमारी सार्वदेशिक सभा सम्भाल न पाई।

पण्डित जी के जीवन काल में ही श्री नरेन्द्र भूषण जी ने

केरल में वैदिक धर्म प्रचार का कार्य आरम्भ किया और शुद्धि का आँदोलन चलाकर जान जोखिम में डाली। पण्डित जी का मार्ग दर्शन व आशीर्वाद प्राप्त हुआ। पण्डित जी ने लिखा है कि "इन प्राँतों में आर्य समाज की अवस्था एक दूध पिये बच्चे से अधिक नहीं हैं। न यह अपने पैरों पर चल सकता है न इसको गोद में उठाकर चलने के लिए कोई उद्यत है।" ● पन्डित जी के इन उद्‌गारों से हम कई व्यक्ति प्रभावित हुये। नरेन्द्र जी को जितना बन पाया सहयोग दिया। उनके कार्य में कमियाँ भी रही हैं और यह स्वाभाविक ही है। परन्तु पन्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की दो दिशा का यह सुखद व ठोस परिणाम हमारे सामने है कि आचार्य नरेन्द्र भूषण जी ने मलयालम साहित्य में आर्य समाज का स्थान बना दिया है। बीसियों छोटी बड़ी पुस्तकें व सैकड़ों लेख वैदिक धर्म व आय समाज पर छप चुके हैं। नरेन्द्रजी ऐसे ही कार्य करते रहे तो वह भी उपाध्याय जी की भाँति आर्य समाज के इतिहास में अक्षम यश के भागी बनेंगे। देश जाति का भला होगा ही।

फूले दयानन्द की फुलवारी,
विद्या मधु का पान करें हम।

● द्रष्टव्य जीवन चक्र पृ० १६६

द्वितीय-खण्ड

श्री गंगा प्रसाद उपाध्याय

"ऋषि के
परम भक्त
रूढ़िवादिता के
परम विरोधी हैं।
राजनीति–मारीचिका से
आर्य समाज को
बचाने में
आप सतत् प्रयत्नशील
रहते हैं।"❋

श्री पण्डित शिवदयालु जी

❋ द्रष्टव्य इतिहास आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश पृ० १५–१७६

आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान

१८९८ ई० में पण्डित जी ने वैदिक धर्म ग्रहण किया, उसी वर्ष ऋषि के बलिदान पर्व दीपमाला पर आपने यज्ञोपवीत धारण किया। आपने तब से लेकर अपने जीवन के अन्तिम श्वास तक आर्य समाज के सिद्धान्तों को फैलाने व आर्य समाज के संगठन को सुदृढ़ करने के लिये दिन-रात एक कर दिया। ऋषि दयानन्द के अगणित उपकारों में से एक उपकार यह है कि उन्होंने संगठन पर बड़ा बल दिया। माला की बिखरी मणियों को पिरोने की रीति नीति सिखाकर ऋषि ने मृतकों को जला दिया। उपाध्याय जी को ऋषि के मन्तव्यों का तल स्पर्शी ज्ञान था। वह अपने ज्ञान को कर्म में अनुदित करने के लिए आजीवन यत्नशील रहे। उनके ७० वर्ष के सार्वजनिक जीवन में एक भी घटना ऐसी नहीं मिलेगी जिससे यह पता चला कि आपने प्रत्यक्ष किंवा परोक्ष रूप से समाज के संगठन को हानि पहुँचाई।

१८८६ ई० में संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा की

स्थापना हुई। उपाध्याय जी १९१७ ई० में अपनी प्रान्तीय सभा के अन्तरंग सदस्य बनाये गये। तब से वह सभा के संगठन में सक्रिय रूचि लेने लगे। कभी-२ अधिकारियों से मतभेद भी होता। कभी-२ विरोध भो होता। सहयोग भी होता परन्तु उपाध्याय जी ने सभा के अहित में कुछ न किया। ऐसा तो वह सोच भी न सकते थे। वह भेड़िया वृत्ति के लोगों से दूर ही रहते थे।

एक बार वह सभा के उप मन्त्री भी रहे, उप प्रधान तो दो तीन बार बनाये गये। दो तीन बार प्रधान वनने के लिये भी उन पर दबाव डाला गया। परन्तु उनका मत था कि प्रधान वह बनें जो पूरा समय सभा के संगठन के लिये दे सके। उनकी अपनी ऐसी स्थिति न थी। एक बार प्रयाग में सभा का अधिवेशन हुआ तब उनको न चाहते हुये भी प्रधान वनाने के लिए तैयार कर लिया गया, परन्तु अकस्मात् श्री मदन मोहन सेठ आ गये तो वह प्रधान बना दिये गये।

जब शोलापुर में पंडित जी उपदेशक विद्यालय चला रहे थे तो राजगुरु जी सभा के प्रधान थे। उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। अन्तरंग ने प्रधान पद के लिये पन्डित जी पर वड़ा दबाव दिया। पन्डित जी की इच्छाएँ उच्छुखल न थीं। उनका अकांक्षाओं पर नियन्त्रण था। तव भो मदन माहन जा को प्रधान बनना पड़ा।

१९४२ ई० में उपाध्याय जी दक्षिण भारत की वेद प्रचार यात्रा से लौटे तो पुनः सभा अधिवेशन में उन्हें प्रधान पद स्वीकार करने के लिये मित्रों ने कहा सुना। पन्डित जी बड़े सरल हृदय

महापुरुष थे। 'जीवन चक्र' 卐 में स्वयं लिखते हैं:—"अब कि मैं राजी हो गया। इतना ही नहीं भीतर से भी कुछ इच्छा हुई कि सभा की प्रधानता का भी मीठा और कड़वा मज़ा चखना चाहिये।" आगे लिखते हैं–'आज अपने को प्रांत पति पाकर मुझे हर्ष भी हुआ और अभिमान भी। मैं स्पष्ट कह दूँ कि मैं 'पहुँचा हुआ सन्त' नहीं हूँ। साधारण मनुष्य हूँ और साधारण मनोवृत्तियों का दास भी।"

पण्डित जी का कार्यकाल सभा के इतिहास में एक नया युग था। पण्डित जी ने सभा की नीतियों को एक नई दिशा दी। सभा का कोई स्थायी कार्यालय न था। जहां का मन्त्री होता वहीं कार्यालय चला जाता या ले जाया जाता। प्रधान कहीं का, मन्त्री कहीं का। सभा की इस दृष्टि से विचित्र स्थिति थी और कार्यालय की दुर्गति थी। सभा के अधिकारी गुरुकुल वृन्दावन को ही सभा का सर्वस्व समझते थे। उसी के लिये सोचते थे। उसी के लिये सारी भाग दौड़ होती। वहीं सभा के अधिवेशन होते। यह स्थान प्रदेश के एक सिरे में पड़ता था। केन्द्रीय स्थान भी नहीं था और व्यापारिक, राजनैतिक अथवा शैक्षणिक किसी भी दृष्टि से केन्द्र न था। सभा पूर्वी जिलों की उपेक्षा करती थी। पूर्वी जिले सभा में रूचि क्यों लेते? उपदेशकों की भी ठीक व्यवस्था न थी। सभा पर ऋण भी था।

पण्डित जी ने पूरी शक्ति से सभा का तेजस्वी संगठन बनाने के लिये कार्य आरम्भ किया। लखनऊ में सभा कार्यालय बनाने

卐 'जीवन चक्र' पृ० १७२

का निश्चय किया गया। भवन के लिए अपील निकाली गई। पन्डित जी ने श्री बाबू काली चरण जी (स्वामी अखिलानन्द जी) व आचार्य श्री बृहस्पति जी आदि के सहयोग से भवन क्रय कर लिया। अब तो दिवंगत श्री पन्डित प्रकाश वीर जी शास्त्री के पुरुषार्थ से इस सभा का अपना लाखों रूपये का भवन है। सहस्त्रों रूपये किराये की आय है। पन्डित जी सारे प्रदेश में घूमे। नगरों में, कस्बों में और ग्रामों में भी गये। रेल से, बैलगाड़ी से, तांगे में और पैदल भी यात्राएँ कीं। एक-एक आर्य को एक एक रूपये देने के लिये कहा। जहाँ से बहुत आशा थी, वहां से कुछ न मिला जहां से कुछ आशा न थी वहाँ से ठोस सहयोग मिला। ऋण भी उतर गया। भवन भी अपना हो गया और कुछ राशि जमा भी हो गई।

जिला आर्य सम्मेलनों की पन्डित जी ने प्रथा चलाई। उपदेशक सम्मेलन प्रतिवर्ष लखनऊ में होने लगा। पन्डित जी ने कई ठोस कार्य किये। तीन वर्ष में बहुत काम हुआ। चौथे वर्ष पुनः असाधारण नियमानुसार वह सर्व सम्मति से प्रधान चुने गये। इसके पश्चात् भी कई बार उन्हें प्रधान पद सम्भालने के लिये मित्रों ने कहा। परन्तु उनका मत यह था कि ऐसा करना समाज के लिये हितकर नहीं। वह इसमें अपनी शोभा भी नहीं समझते थे। उनका तो स्वर्गीय महाशय कृष्ण जी को भी यही परामर्श था कि वह पंजाब सभा के प्रधान पद का परित्याग करके समाज की सेवा करें। रिफार्मर में एक लेख में पन्डित जी ने ऐसा लिखा था। पन्डित जी पदलोलुपता से कोसों दूर थे। डा० सत्य प्रकाश (वर्तमान स्वामी सत्य प्रकाश जी महाराज) ने यह गुण बपौती में प्राप्त किया है। अपने पूज्य पिताजी के समान आर्य जगत् में पूज्य

बनकर भी उन्होंने किसी पद की प्राप्ति करने की कभी उत्सुकता या इच्छा नहीं दिखाई। पदों से बचने का उनका प्रयास रहता है।

एक बात उल्लेखनीय है कि पन्डित जी ने सत्यार्थ प्रकाश: का अंग्रेजी अनुवाद इस काल में समाजों में घूमते फिरते पूरा किया था।

जीवन मरण का एक प्रश्न

पूज्य उपाध्याय जी स्वभाव से ही मौलिक प्रश्नों को अधिक महत्व दिया करते थे। गौण बातों को वह गौण ही रखने पर बल दिया करते। उनकी प्रधानता के काल में किसी समाज में निर्वाचन पर विवाद हो गया। किन्हीं सात व्यक्तियों ने चुनाव जीतकर पुराने सभा सदों को सदस्यता से हटाकर समाज की पृथक रजिस्टरी करवा ली। यह सब कुछ प्रान्तीय सभा के हस्तक्षेप से बचने व समाज मन्दिर को हड़पने के लिये किया गया। यह तो संगठन के लिये एक चुनौती थी। इस घातक परम्परा से समाज को बचाने के लिये सभा ने प्रधान जी को अधिकार दिया कि इन सात व्यक्तियों को समाज से निकाल दें।

प्रधान जी ने अपने इस अधिकार का प्रयोग करते हुये इन सातों को समाज से हटाने का नोटिस निकाल दिया। एक ही नोटिस पर सबके नाम लिखकर सबको एक एक प्रति टाईप करके भेज दी गई। इसमें एक तकनीकी भूल यह हो गई कि कार्यालय ने सबके लिये पृथक-२ नोटिस न भेजा एक ही नोटिस पर सबके नाम

थे। उन लोगों ने चतुराई दिखाई। वकील फीस लेकर सब बुरे भले कामों की वकालत के लिये मिल ही जाते हैं। इन अधम व्यक्तियों को भी वकील मिल गया। वकील द्वारा सौजन्य की मूर्ति श्री पन्डित गंगा प्रसाद जो उपाध्याय प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० को मानहानि का ५००० रू० इन सात व्यक्तियों को प्रतीकार के रूप में देने का नोटिस दिया गया। राशि न देने की अवस्था में अभियोग चलाने की धमकी दी गई। पन्डित जी ने उत्तर में लिख दिया कि—"मेरी इन व्यक्तियों से कोई शत्रुता नहीं है। इन्होंने अनियमतता को, मैंने वैधानिक अधिकारों से इनको दण्ड दिया है।"

यह अभियोग लम्बा चला। पन्डित जी कभी अभियोग आदि के लिये न्यायालयों में नहीं गये थे। किसी से कोई झगड़ा हुआ न था। दूर-दूर से साक्षी लाए गये। उन सात व्यक्तियों का भी पर्याप्त धन लगा और सभा का भी बहुत रूपया लगा। लखनऊ के विख्यात आर्य विद्वान स्वर्गीय पण्डित रामदत्त जी शुक्ल व पण्डित भृगुदत्त जी तिवारी सभा के वकील थे। इन दोनों आर्य सज्जनों ने जी जान से यह अभियोग लड़ा। मानहानि का आधार कुभावना होता है। यह सिद्ध न किया जा सका। पण्डित जो दोष मुक्त किये गये। इससे संगठन की साख बढ़ी।

इन सात अपकारी पुरुषों ने इससे भी भयंकर एक और अभियोग सभा पर कर रखा था। स्वयं तो अपनी संस्था की पृथक रजिस्टरी करवा कर सभा के अनुशासन से अलग हुये ही, सभा पर अभियोग इसलिये चलाया ताकि सभा उनसे समाज मन्दिर लेकर दूसरे पक्ष को न सौंप दे। आर्य समाज की सम्पत्ति पर सभा के

स्वामित्व को चुनौती थी। इस प्रकार तो कोई से चार छः व्यक्ति मिलकर आर्य समाज के मन्दिर व संस्थायें हड़प सकते हैं। उपाध्याय जी यह सब कुछ भाँप गये। यह अभियोग न्यायालय तक गया।

एक छोटे न्यायालय में तो सभा को हरा दिया गया। यह अच्छा ही हुआ। हाई कोर्ट में जाकर सभा की जीत हुई। हाई कोर्ट का निर्णय एक उदाहरण बन गया। आर्य समाज की सुरक्षा के लिये यह बहुत अच्छा हुआ। उपाध्याय जी के बाद जो प्रधान चुने गये, उनके कार्यकाल तक यह अभियोग चलता रहा। आर्य प्रतिनिधि सभा की जीत से पन्डित जी को हर्ष व सन्तोष हुआ। पन्डित जी की दृढ़ता से समाज बहुत बड़े अनिष्ट से बच गया। पन्डित जी ने स्वयं लिखा है कि—"यदि यत्न में शिथिलता की जाती तो सभा का नहीं अपितु समाजों का भविष्य सङ्कट में था।" ❋ पण्डित जी ने इस अभियोग को आर्य समाज के लिये जीवन मरण का प्रश्न समझकर कानूनी लड़ाई लड़ी। यह भी आर्य समाज के प्रति उनकी एक अविस्मरणीय सेवा है।

बार बार नर तन को पाऊँ,
पढ़ूं तुम्हारी वाणी को।
भेंट धरूँ मैं धर्म वेद की,
बारम्बार जवानी को॥

—जिज्ञासु

❋ द्रष्टव्य जीवन चक्र पृ० १८८

रंग लाई साधना:—हमारे चरित्र नायक अभी अपनी जननी की कोख में ही थे कि २२ जनवरी १८८१ ई० को भारत की राजधानी कलकत्ता में एक सभा हुई। इस सभा में सैंकड़ों नामी पण्डित विद्वान एवं सेठ श्रीमन्त उपस्थित थे। ये लोग भारत की चहुं दिशाओं से बुलाए गए थे या लाए गए थे। सभा का नाम '**आर्य सन्मार्ग दर्शनी सभा**' था।

नाम तो बड़ा सुन्दर था, परन्तु सभा के सञ्चालकों किंवा इसमें भाग लेने वालों के सामने न आर्यत्व का प्रश्न था और न ही सन्मार्ग दर्शन उनका लक्ष्य था। सभा तो केवल महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित मुख्य-२ सिद्धान्तों के विरुद्ध व्यवस्था देने के लिये बुलाई गई थी। पौराणिक जगत् के दिग्गज विद्वानों की पीठ पर राजे-महाराजे सेठ धनोमानो भी तो थे।

विचित्र बात तो यह थी कि जिसके विरुद्ध यह सभा बुलाई गई उस आजन्म ब्रह्मचारी वेदोद्धारक एक ईश्वरवादी योगेश्वर दयानन्द को बुलाया ही न गया। बुलाने की आवश्यकता ही न समझी गई। न बुलाने में ही बुद्धिमता थी। अन्यथा अन्धेरे के जमघट पर प्रकाश पुन्ज ज्ञान के सूर्य अकेले ऋषि वर की विजय निश्चित थी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रसिद्ध सुधारक ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का भी बाद में इस सभा को समर्थन प्राप्त हो गया। इतिहास में ऐसी सभा इससे पूर्व विश्व में किसी भी सुधारक विचारक के विरुद्ध कभी भी आयोजित नहीं की गई।

महर्षि दयानन्द पर इस सभा का तनिक भी प्रभाव न पड़ा।

पड़ता भी क्यों ? "ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि" की घोषणा और प्रतिज्ञा करके कार्य क्षेत्र में उतरने वाले यतियोगी पर इससे सभा का क्या प्रभाव हो सकता था।

इस सभा के ठीक पचास वर्ष पीछे उसी कलकत्ता नगरी में उसी स्थान पर [कलकत्ता विश्व विद्यालय के सीनेट हाल में] २३ मई १९३१ ई० को एक सभा फिर आयोजित की गई। अर्द्ध शताब्दी के पश्चात् की गई इस सभा का प्रयोजन क्या था ? इस सभा में भी बड़े नामी लोग उपस्थित थे। अन्तर यह था कि अब देश हितैषी प्रतिष्ठित जन पधारे। पहले सभा ऋषि के मन्तव्यों के विरोध के लिये की गई थी। अबकी वार यह सभा उसी महान ऋषि के मण्डन के लिये समर्पित एक महान मनीषी के अभिनन्दन के लिये आयोजित की गई।

२३ मई १९३१ ई० की सभा में स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के प्रचार के लिये ऐतिहासिक कार्य करने वाले पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय को हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा (तब यह पुरस्कार सबसे बड़ा था) सम्मान मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया। श्री पुरुषोत्तम दास जी टण्डन सरीखे देश-रत्न भी वहाँ उपस्थित थे। सेठ मंगला प्रसाद के भ्राता सेठ गोकुल चन्द जी भी वहां पधारे। 'आस्तिकवाद' ग्रन्थ रत्न पर यह सम्मान किया गया आस्तिकवाद को हिन्दी में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन माना गया। इस दर्शन विषयक ग्रन्थ में ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के साथ-२ उन मान्यताओं की भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में

पुष्टि हो ही जाती है, जिनका प्रतिवाद या खन्डन १८८१ ई० को सभा ने किया या करना चाहा। आस्तिकवाद के प्रकाशन पर समस्त हिन्दी जगत् गौरवान्वित हो रहा था। उपाध्याय जी के सम्मान से ऋषि दयानन्द के प्रत्येक शिष्य अपने आपको सम्मानित अनुभव कर रहा था। ऐसा होना स्वाभाविक ही था।

इस घटना ने भारतीयों की एक दुर्वलता को नंगा कर दिया। आस्तिकवाद का प्रथम संस्करण बड़े साधारण कागज़ पर छपा था। उपाध्याय जी १९०४—५ ई० से ही पण्डित्य जी पूर्ण लिखते चले आ रहे थे। परन्तु 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' मिलने के पश्चात् तो यत्र तत्र सर्वत्र उनके विद्यानुराग, पाण्डित्य व लेखनी की धूम मच गई। स्थिति ठीक वैसी ही थी जैसे (Noble Prize) नोबल पुरस्कार की प्राप्ति पर भारतीय जनता ने कवीन्द्र रवीन्द्र को पूछना व पूजना आरम्भ कर दिया। तव विश्व कवि ने व्यंग्य कसते हुये कहा भी था कि तुम आज मुझे सम्मानित नहीं कर रहे, पश्चिम के उन लोगों को मान दे रहे हो, जिन्होंने गीताञ्जलि पर मुझे पुरस्कृत किया है। भारत परतन्त्र था तब न साहित्य की कुछ पूछ थी और न साहित्यकारों की। क्या प्रेमचन्द जी और क्या सुदर्शन जी सवने कष्ट कठोर सहकर उत्तम साहित्य का सृजन किया। उपाध्याय जी इसका अपवाद न थे। उन्होंने भी साहित्य के लिये वड़ी साधना की। हर्ष की बात तो यह थी कि उनको अपने जीवन काल में ही अपनी साहित्यिक सेवाओं के लिये कई बार सम्मानित किया। उनकी साधना रंग लाई। इस पर उन्हें बहुत सन्तोष था।

× × ×

दयानन्द देव वेदों का उजाला ले के आये थे।
करों में ओ३म् की पावन पाताका लेके आये थे॥
अविद्या सिन्धु से अगणित जनों के पार करने को।
परम सुखदायिनी सद्ज्ञान नौका लेके आए थे॥
'जिज्ञासु'

कोल्हापुर में एक वर्ष

कोल्हापुर महाराष्ट्र का एक ऐतिहासिक नगर है। शिवाजी के वंशजों का यहाँ राज रहा है। वहाँ ब्राह्मणो व ब्राह्मणेतर का विवाद खड़ा हो गया। ईसाई प्रचारक भी वहुत सक्रिय थे। वे लोगों को धड़ाघड़ ईसाई बना रहे थे। वहाँ के राजा छत्रपति साहूजो महाराज पर आर्य समाज का प्रभाव पड़ा। महर्षि दयानन्द के भक्त बन गये। वड़ोदा के महाराजा सियाजो से उनको कुछ सद्बुद्धि व सत्प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्होंने कोल्हापुर का राजाराम कालेज और राजाराम हाई स्कूल आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्राँत (उ० प्र०) को सौंप दिये।

सभा ने कालेज के प्राचार्य पद के लिये विख्यात आर्य विद्वान श्री डा० बालकृष्ण जी को भेजा। स्कूल के आचार्य पद के लिये श्री उपाध्याय जी को प्रार्थना की गई। एक वर्ष का अवकाश लेकर आप वहाँ गये। प्रिंसिपल महेंद्र प्रताप जी शास्त्री भी कोल्हापुर कालेज में प्राध्यापक रहे। 'The call of the vedas' पुस्तक के यशस्वी लेखक डा० अविनाश चन्द्र वसु (Dr. A. C.

Bassu) भी राजाराम कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे।

डा० बालकृष्ण तो कोल्हापुर के ही हो गये। उन्होंने वहाँ वैदिक धर्म प्रचार की धूम मचा दी। सहस्रों व्यक्ति शुद्ध होकर आर्य धर्म म दीक्षित हुये। इन विद्वानों के प्रयत्नों से अस्पृश्यता व जन्म की जात पात की जड़े उखड़ने लगीं। वेद के प्रचार से लोगों में नव-जीवन का संचार होने लगा। अंग्रेज के लिये आर्य समाज का बढ़ता हुआ प्रभाव असह्य था। महल में षड्यन्त्र तो चलते ही रहते थे। इसमें अंग्रेज Resident (रेजीडेन्ट) का भी बहुत हाथ हुआ करता था। वे देशी राजाओं व नवाबों के दरबारियों व कुटम्बियों के जोड़-तोड़ का पूरा लाभ उठाया करते थे। यही तो नीति चातुर्य था।

एक दिन प्रात:काल लोग उठे तो पता लगा कि दीवान से लेकर नीचे तक के सब अधिकारी कर्मचारी बदल दिये गये हैं। जिनकी सेवायें बृटिश सरकार से या अन्य राज्यों से उधार ली गई थीं। उन सबको एकदम वापिस कर दिया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा से बिना पूछे कालेज व स्कूल का प्रबन्धक भी राज्य ने संभाल लिया। डा० बालकृष्ण, श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी आदि से कहा गया कि आज से आप राज्य की सेवा में हो।

पंडित गंगा प्रसाद अग्ररेजी सरकार की सेवा पर लात मार कर आर्य समाज के कार्य के लिये आगे आए थे। भला एक छोटे से राज्य की नौकरी अब कैसे स्वीकार करते। सौभाग्य से वह अवकाश पर थे। वह ३ जून १९२५ ई० को कोल्हापुर चले गये थे।

जून १९२६ ई० को प्रयाग लौट आये। इन पंक्तियों के लेखक ने कोल्हापुर के पुराने लोगों पर उपाध्याय जी के प्रेमल स्वभाव, धर्मभाव, समाज सेवा व सौजन्य की अमिट छाप देखी। वहाँ एक कालेज के प्राचार्य ने हमें बताया कि आर्य समाज कोल्हापुर में आया तो हम बच गये अन्यथा ईसाई प्रचारकों के कुचक्र में सब धर्म से च्युत हो रहे थे। खेद की बात है कि जिस कोल्हापुर में हमारे समाज की ऐसी विभूतियाँ रही हैं, जहाँ डॉ० बालकृष्ण जैसे यशस्वी शिक्षा शास्त्री, गवेषक लेखक, इतिहासज्ञ ने जीवन खपाया वहाँ अब आर्य समाज नहीं। आर्य समाज के लाखों के भवन हैं, परन्तु आर्यों के हाथ में कुछ भी नहीं। किसी समय कोल्हापुर से आर्य समाज सम्बन्धी बहुत साहित्य निकला था। डा० अविनाश चन्द्र की लेखनी ने ूम मचा दी थी।

१९५८ ई० में 'आर्य' साप्ताहिक में 'The call of the vedas' पर हमारा एक लेख प्रकाशित हुआ। उस लेख की प्रशंसा करते हुये उपाध्याय जी ने 'आर्य' में एक सुन्दर लेख दिया। शीर्षक था 'डा० अविनाश चन्द्र बास कौन हैं' ? उपाध्याय जी ने कोल्हापुर में डा० अविनाश चन्द्र की समाज के प्रति सेवाओं की भूरि-२ प्रशंसा की थी।

यद्यपि आस्तिकवाद तथा अद्वैतवाद दोनों ग्रन्थों की भूमिकाएँ प्रयाग में ही लिखी गईं। परन्तु इन दोनों महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना कोल्हापुर में ही हुई। ऐसा हमारा मत है। आस्तिकवाद तो १९२६ ई० में ही छपा था। जून मास में उपाध्याय जी कोल्हापुर से लौटे थे। यह पुस्तक कोल्हापुर में ही १९२५ ई० के अन्तिम

दो मास में लिखी। इतनी उपयोगी व स्थायी महत्व की खोजपूर्ण पुस्तक केवल दो मास में लिख डाली, यह भी लेखनी के धनी उपाध्याय जी का ही साहित्यक चमत्कार था।

अद्वैतवाद १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ। यह गूढ़ दार्शनिक ग्रन्थ दो चार मास में तो तैयार हुआ नहीं होगा। इसलिये हमारा मत है कि पूरा नहीं तो भी इसका एक बहुत बड़ा भाग कोल्हापुर में ही लिखा गया। साहित्यकारों में किंवा साहित्यक जगत् में उपाध्याय जी की धूम आस्तिकवाद के छपने पर ही मची थी इसलिए अपने यहाँ इस प्रसंग को छोड़ा है कि यह ग्रंथ यहीं लिखे गये थे।

उपदेशक विद्यालय शोलापुर

हैदराबाद सत्याग्रह में आर्य समाज को गौरवपूर्ण विजय प्राप्त हुई। देश विदेश में आर्यों का उत्साह व आत्म विश्वास बढ़ा। हैदराबाद राज्य में आर्य समाज का संगठन व्यापक व सुदृढ़ होने लगा। प्रचार के लिये उपदेशकों की माँग बढ़ी। सार्वदेशिक सभा ने निज़ाम राज्य में प्रचार के लिये वहीं के युवकों को प्रशिक्षित करने की योजना बनाई। फलतः शोलापुर में उपदेशक विद्यालय स्थापित करने का निश्चय किया गया। केवल एक वर्ष के लिए विद्यालय चलाने का निर्णय हुआ था।

श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री (स्वामी ध्रुवानन्द जी) ने उक्त विद्यालय के लिये एक वर्ष का समय देने को कहा परन्तु उसी वर्ष

वह संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान चुन लिये गये। राजगुरु जी इस विद्यालय के आचार्य नियत हुये। श्री पन्डित गंगाप्रसाद जी उसी वर्ष सार्वदेशिक सभा के उपमन्त्री निर्वाचित किये गए। उन्होंने समाज सेवा के लिये अपने स्कूल के प्रधानाचार्य के पद से त्याग पत्र दे दिया था।

उपाध्याय जो को इस विद्यालय की सेवा के साथ मद्रास आदि प्राँतों में प्रचार का कार्य सौंपा गया। श्री राजगुरु जी की सामाजिक व्यस्तताएँ उनको कहीं जमकर टिककर कार्य नहीं करने देती थीं। अतः श्री उपाध्याय जी ही व्यवहारिक दृष्टि से इस विद्यालय के आचार्य थे। श्री पन्डित त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री व श्री पण्डित महेंद्र कुमार जी शास्त्री तथा पण्डित गोपदेव जी जैसे दार्शनिक भी इसी विद्यालय के अध्यापक थे। उपाध्याय जी विद्यालय भी चलाते रहे और दक्षिण के प्राँतों में प्रचारार्थ भ्रमण भी करते थे। दक्षिण के नीति निपुण आर्य नेता श्री भाई वंशी लाल जी भी इस विद्यालय के प्रबन्धक के रूप में कार्य करते रहे २०–२५ युवक प्रशिक्षित हुये। वर्ष की समाप्ति पर दीक्षान्त संस्कार हुआ। श्री घन श्याम सिंह जी गुप्त व लाला देशबन्धु गुप्त इस अवसर पर शोलापुर पधारे। इस विद्यालय की सफलता का सारा श्रेय श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी को जाता है। उनकी प्रबन्ध पटुता, कार्य के लिये उनकी योग्यता, स्वभाव की सौम्यता व ठोस कार्यों के करने में उनकी स्वाभाविक अभिरुचि सर्वविदित थी ही। वह जिधर से निकलते थे वहीं स्थायी रूप में अपने पग चिह्न छोड़ जाते थे। कई वर्ष हुये श्री पन्डित त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री ने मुझे एक घटना सुनाई थी। शोलापुर में एक जैन मुनि आये। बड़े

विद्वान थे। दर्शन के पन्डित थे। आर्य समाज से शास्त्रार्थ करने की बात किसी ने चला दी। यह प्रस्ताव उपदेशक विद्यालय तक पहुँचाया गया। उपाध्याय जी जैसा मूर्धन्य आर्य दार्शनिक वहाँ था ही।

उपाध्याय जी ने प्रस्ताव को संशोधन के साथ स्वीकार किया। संशोधन यह था कि सार्वजनिक शास्त्रार्थ का कोई लाभ नहीं। जय-पराजय का विचार छोड़कर सुशिक्षित प्रबुद्ध चुने हुए दो चार पाँच सौ व्यक्तियों को निमन्त्रित किया जावे। ऐसे श्रोताओं की उपस्थिति में धर्मवार्ता या धर्म चर्चा हो। ऐसा ही किया गया। अब हमें स्थान का तो ध्यान नहीं रहा कि यह धर्म चर्चा वहाँ के टाऊन हाल में हुई किंवा कहीं अन्यतर परन्तु सुनने वालों पर श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय के गम्भीर पाण्डित्य का बहुत प्रभाव पड़ा। स्वयं उन प्रतिपक्ष जैन महात्मा ने कहा कि मैंने आर्य समाज के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना, पढ़ा था। मैं यही समझता था कि आर्य समाजी भले ही सफल शास्त्रार्थी हों परन्तु इनमें दर्शन का पन्डित तो कोई क्या होगा? मुझे आज पता चला कि श्री पन्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय के रूप में एक गम्भीर विद्वान, विचारक व दार्शनिक इस समाज के पास है। इनकी दार्शनिक ऊहापोह, सूझ-बूझ से मैं प्रभावित हूं।

खेद की बात है कि शोलापुर में रहते हुये हम उस जैन विद्वान के नाम का पता न लगा सके। यत्न विशेष किया जाता तो पता लग सकता था।

उपाध्याय जी के सत्प्रयत्नों से शोलापुर का आर्य समाज भी

नियमित रूप से चल पड़ा। समाज मन्दिर के लिए उन्हीं के कार्य काल में भूमि क्रय की गई। इन पंक्तियों के लेखक को इस बात का बड़ा सन्तोष है कि हमने भी जीवन के चार मूल्यवान वर्ष अपने साहित्य पिता की इस कार्य स्थली में बिताये हैं। जितना भी बन पाया अपने सर्वसामर्थ्य से उन प्रान्तों में वैदिक धर्म का प्रचार किया। कालेज से सेवा निवृत्त होने पर भी वहां विशेष शक्ति लगाने का संङ्कल्प है। परन्तु यह सब कुछ प्रभु की कृपा से ही सम्भव हो सकता है।

बार बार नर तन को पाऊँ।
बार बार बलिदान चढ़ाऊँ॥
ऋण तो भी मुझ से ऋषि तेरा।
जावे नहीं चुकावा..........॥

पन्डित बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार

शोलापुर में पूज्य उपाध्याय जी की दिनचर्या

श्री पन्डित महेंद्र प्रताप जी शास्त्री ग्वालियर से पन्डित जी के सम्बन्ध में उनके संस्मरण मांगे तो उन्होंने बताया कि पन्डित गंगा प्रसाद जी अत्यन्त पूज्य विद्वान थे। वह एक विमल आत्मा थे। वह विनम्र थे। पन्डित महेंद्र प्रताप जी ने बताया कि उपाध्याय जी शोलापुर में प्रातः चार बजे उठते थे। एक घन्टा महर्षि के यजुर्वेद भाष्य का बड़ा गम्भीरता से स्वाध्याय किया करते थे। उन दिनों उपाध्याय जी अपना ईशोपनिषद् का भाष्य

लिख रहे थे। इसलिये कभी-२ शंकराचार्य जी आदि विद्वानों के भाष्य भी देखा करते थे।

फिर इन सब पर विचारते थे। तदुपरान्त अपनी व्याख्या लिखा करते थे। कभी-कभी वह ऋषि के संस्कृत-भाष्य को अच्छे प्रकार से समझने के लिये मुझे भी चार बजे ही उठा देते। मैं (महेंद्र प्रताप) तब जवान ही था। वह अनुभवी एवं प्रसिद्धि प्राप्त नेता व विद्वान थे। उनके इस स्नेहपूर्ण व्यवहार से मेरी स्वाध्याय तथा वेद आदि सत्य शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों पर विचार करने व उन्हें समझाने की रुचि और बढ़ गई।

एक घन्टा लेखन कार्य करके पन्डित जी बाहर नदी तट की ओर भ्रमण के लिये चले जाया करते थे। इन पंक्तियों का लेखक भी शोलापुर में अपने चार वर्ष के निवास-काल में उसी दिशा में भ्रमण के लिये जाया करता था। पंडित जी शौच आदि से निवृत्त होकर वहाँ सन्ध्या में प्रभु चिंतन में लीन हो जाते। प्रभु के ध्यान में तब वह दो घण्टे लगाते थे। वहाँ से लौटकर उपदेशक विद्यालय के कार्यों में जुट जाते थे। दोनों समय सन्ध्या एवं हवन के नियम का वह सहज रीति से पालन करते थे। वह उस कोटि के आस्तिक थे, जो इसलिये सन्ध्या नहीं करते कि यह वेद शास्त्र किंवा सत्पुरुषों की आज्ञा है, अपितु अन्तः प्रेरणा से प्रभु कीर्तन किया करते थे। ऐसी उनकी प्रवृत्ति थी। पन्डित महेंद्र प्रताप जी ने बताया कि मैं उनके पान्डित्य से तो प्रभावित था ही, उनके स्वभाव व सद् व्यवहार से तो उनकी ओर खिचा ही था, उनकी दिनचर्या से तो और भी प्रभावित हुआ।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री

पण्डित जी १६४१–४५ ई० तक सार्वदेशिक सभा के मन्त्री रहे। १६४६ ई० के अन्त में उन्हें आर्यों के इस सर्वोच्च संगठन का मन्त्री चुन लिया गया। २८ नवम्बर १६४६ ई० को वह अपने इस पद को संभालने के लिये देहली पहुंच गये। वह इस कार्यभार को ग्रहण करने के लिये तैयार न थे, परन्तु मित्रों का आग्रह व श्री महात्मा नारायण स्वामी जी की आज्ञा को वह टाल नहीं सकते थे। अब तो पदों के लिये चुनाव का अर्थ तनाव व टकराव है। उपाध्याय जी इस प्रवृत्ति के व्यक्ति न थे। उनके व्यक्तित्व की गौरव गरिमा का इसी से पता चलता है कि उनकी अनुपस्थिति में उन्हें इस सभा का मन्त्री चुना गया और हमें यह लिखते हुये दुःख होता है कि उनके पद त्याग के पश्चात इस सभा को फिर कोई उन जैसा विनम्र, विचारक, तपस्वी व समर्पित जीवन वाला मन्त्री नहीं मिला।

१६४६ ई० से १६५१ ई० तक वह इस पद को सुशोभित करते रहे। प्रयाग छोड़कर उन्हें देहली आना पड़ा। उनके साथ ही माता कलादेवी जी को भी देहली रहना पड़ा। वह सभा कार्यालय में रहकर सभा संचालन करते थे। घर से बाहर रहने का आर्थिक बोझ सब सहर्ष सहन किया। उन्होंने इस सभा की नीतियों को एक नई दिशा देने का भर पूर यत्न किया। इस सभा की नीतियों में सुधार लाकर वह आर्य समाज के सगठन को सुदृढ़ व प्रभावशाली बनाना चाहते थे।

वह क्या चाहते थे ? उनकी चाह थी कि सभाएें शिर बने

शिरोमणि न बनें। शिरोमणि तो शिर का आभूषण होता है। "वह शिर को सजाने के लिये होता है, शिर का काम करने के लिये नहीं। मैं चाहता हूँ सभाएँ शिरोमणि बनने के स्थान में शिर बनें। उनकी आँखें विश्व की प्रगतियों पर हों, वह भूमण्डल की समस्त धार्मिक सभाओं और संस्थाओं के काम से अभिज्ञ हों। समस्त देशों की समाजों पर उनका ऐसा ही नियन्त्रण हो जैसा शिर का अङ्गों पर होता है। यह कैसे हो इसका मुझे चिन्तन था कार्यालय के लेखक मुझे सहायता दे सकते थे। मेरे लिये सोच नहीं सकते थे।"●

पन्डित जी ने अपने कार्यकाल में आर्य साहित्य के प्रकाशन में विशेष रुचि ली। सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना उन्हीं के कार्यकाल में हुई। यह संस्था कितनी सफल और कितनी असफल रही, इसका विवेचन यहां करना हमें अभीष्ट नहीं। इसमें तो दो मत नहीं कि जो पण्डित जी चाहते थे सो तो न हो सका परन्तु फिर भी आर्य साहित्य के प्रकाशन में इसके द्वारा एक बार तो कुछ उत्साह दिखाया गया।

'दयानन्द पुरस्कार निधि' की स्थापना भी इसी काल में हुई। इस निधि से अब कभी किसी को पुरस्कृत किया गया हो, ऐसा हमने कभी सुना पढ़ा नहीं। इस निधि को बैंकों में ही सुरक्षित रखकर और इसका सदुपयोग न करके सार्वदेशिक सभा ने आर्य समाज की इस महान विभूति के अरमानों का रक्तपात कर दिया है। हमारी दृष्टि में यह एक अक्षम्य अपराध है।

● द्रष्टव्य जीवन चक्र पृ० २१५

पण्डित जी ने श्री पण्डित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड को साथ लेकर देहली में विदेशी राजदूतों से मिलने, उन्हें वैदिक साहित्य भेंट करने और वैदिक विचारधारा पर उनके वार्ता करने की एक सुन्दर रीति चलाई।

१९५० ई० में पण्डित जी दक्षिणी अफ्रीका की प्रचार यात्रा पर गये और १९५१ ई० में वह सिंगापुर, बैंकांक की प्रचार यात्रा पर गये। वहां उन्होंने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से वैदिक धर्म-प्रचार के उपायों पर विचार किया। उनके सौम्य स्वभाव और गम्भीर पाण्डित्य का सर्वत्र अच्छा प्रभाव पड़ा। उनका पुराना स्वप्न था कि कभी अमरीका में वैदिक धर्म प्रचारार्थ जाऊँगा। पश्चिमी देशों व अमरीका में तो न जा सके परन्तु विदेशों में वेद प्रचारार्थ जाने वाले उच्च कोटि के आर्य विद्वानों व नेताओं में से वह एक थे। उनकी इन सेवाओं को सदा कृतज्ञता से स्मरण किया जावेगा। फारसी में कहा जाता है:–

'कारे दुनिया करने तमाम न करद' अर्थात् संसार के सब काम कोई भी पूरे न कर पाया। उपाध्याय जी भी इसका अपवाद नहीं। उनके विदेश प्रचार के अरमान पूरे न हो सके। फारसी में एक कहावत है, जिसका अर्थ है जो पिता न कर सका, बेटे को चाहिये कि वह कर दिखाये। उपाध्याय जी इस दृष्टि से बड़े भाग्यशाली निकले। उनके पुत्ररत्न डा० सत्य प्रकाश ने संन्यास दीक्षा लेकर देश-विदेश में धूम मचाकर पिता की रही सही सारी कसर पूरी कर दी है। पण्डित जी ने अपने मन्त्रित्व काल में भी व बाद में शुद्धि आन्दोलन पर भी अपने ठोस विचार आर्य जगत

के सामने रखे। स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान पर एक कविता में आपने लिखा था:-

"गाड़ी रुकी है शुद्धि की आगे चलाए कौन ?"

अब भी शुद्धि की चर्चा तो सभाएँ व नेता बहुत करते हैं परन्तु यह कार्य और शोर मचाने से थोड़ा होता है ? यह तो जीवन समर्पण से होगा। जब तक दस बीस शीर्षस्थ नेता सङ्कट की इस वेला में अपना तन-मन धन आर्य समाज के अर्पण करके पूरा समय प्रचार व संगठन को नहीं देंगे, तब तक कोई ठोस परिणाम निकलने वाला नहीं। घर के सुख साज भी हम चाहें और केवल प्रस्तावों व भाषणों से विनाश की बाढ़ को रोकना चाहें तो यह असम्भव है। वर्षा की बूँदों को पकड़कर चाँद तक कोई पहुँचा है और न पहुँच सकेगा। उपाध्याय जी के सारे उद्योग इस बात पर केन्द्रित थे कि आर्य समाज अपना निरीक्षण परीक्षण करे। मन्त्री पद छोड़ देने पर भी आपने लिखा था कि आर्य समाज को सार्वदेशिक सभा की नीतियाँ सार्वदेशिक होनी चाहियें जो कुछ दीवान हाल समाज के लिये उपयुक्त है, वह सारे आर्य जगत के लिये भी उपयुक्त हो, यह कैसे हो सकता है ? दीवान हाल समाज सार्वदेशिक के मार्ग दर्शन में चले, न कि दीवान हाल के पीछे सार्वदेशिक सभा। पण्डित जी का वह लेख जिसमें आर्यों को यह प्रेरणा दी गई थी, एक से अधिक बार कई पत्रों में प्रकाशित हुआ। यह आज भी उतना ही सत्य है जितना कि तब था।

परोपकारिणी सभा के सदस्य

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा ने अपने ३ दिसम्बर १६५५ ई० के आसाधारण अधिवेशन में उपाध्याय जी को अपना सदस्य चुन लिया। उपाध्याय जी ने शीघ्र ही अपना त्याग पत्र भेज दिया। त्याग पत्र देने का कारण क्या था ? यह सुनिश्चित रूप से तो ज्ञात नहीं है परन्तु अनुमान प्रमाण से यही जंचता है कि पन्डित जी अब सभा संस्थाओं के पदों से पृथक रह कर ही समाज सेवा करने का मन बना चुके थे। वह चाहते थे कि नया रक्त और नये-नये सेवकों को आगे आने का अवसर मिले।

अन्यत्र 'प्रधान का पिता' घटना दी गई है। उसे ध्यान में रखने से पाठकों को उपाध्याय जी के त्याग-पत्र का कारण समझ में आ जावेगा। इसी प्रसंग में यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि जीवन की साँझ में पन्डित जी ने अपनी पुस्तकें भी साहित्यिक पुरस्कार देने वाली सभा संस्थाओं को भेजनी वन्द कर दी थीं। इसका भी यही कारण था। उन्होंने रिफार्मर में अपने एक अग्र लेख में लिखा था कि अब कई वार पुरस्कृत हो लिए। नए-नए लेखकों को भी सन्मान व प्रोत्साहन मिलना चाहिए। उनके हृदय की इस विशालता को सहृदय पाठक अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं।

एक बार श्री पन्डित जी ने संस्कार विधि पर कुछ शंकाएँ उपस्थित कीं। परोपकारिणी सभा ने स्मृतियों व गृह सूत्रों के अद्वितीय विद्वान लौह पुरुष श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

को शंका समाधान के लिए कहा। स्वामी जी महाराज ने युक्ति व प्रमाण से सब शंकाओं का समाधान किया। पं० गंगा प्रसाद सरीखे सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान की शंकाओं से जन साधारण एवं विद्वानों को भी बड़ा लाभ पहुंचा।

प्रेम का पीयूष प्राणियों को हम पिलायेंगे।
विश्व को सन्देश दयानन्द का सुनायेंगे॥

'जिज्ञासु'

फिर रण भेरी बजी !

सत्यार्थ प्रकाश पर प्रहार

सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन से पूर्व भी सब मत पंथों के लोग एक दूसरे का खण्डन करते थे। खण्डन कौन नहीं करता ? कुरान पढ़िए, बाइबल देखिए, आप पुराणों को पढ़ लें, चाहें श्री शंकराचार्य का साहित्य देख लें............सबने अपने से भिन्न विचार वालों की मान्यताओं का खण्डन किया। तुलसीदास जी ने, भक्त कबीर ने, दादू जी ने, बाबा नानक व सन्त तुका राम आदि सबने खण्डन भी किया है। परन्तु सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशन के बीस वर्ष बाद इस ग्रन्थ के अद्भुत प्रभाव को देखकर कुछ लोगों ने इस ग्रन्थ के विरुद्ध लिखना व बोलना आरम्भ किया। इसमें तो कोई आपत्ति वाली बात नहीं थी परन्तु ऐसा करने वालों ने ग्रन्थकर्त्ता व आर्य समाज के विरुद्ध विषैला प्रचार आरम्भ कर दिया।

इसको एक राजनैतिक हथियार वनाकर अखण्ड भारत के सिंध प्रदेश में मुस्लिम लीगी मन्त्री मण्डल ने इस काल जयी ग्रन्थ के चतुर्दश समुल्लास पर प्रतिबन्ध लगा दिया। तब भारत के प्रायः सभी मुसलमान मुस्लिम लीग के झण्डे तले पाकिस्तान की माँग के लिए आँदोलन उपद्रव व दंगे कर रहे थे। आर्य समाज ने इस प्रतिवन्ध को हटवाने के लिए सभी वैधानिक उपाए किये। मुस्लिम लीगी मन्त्री मन्डल टस से मस न हुआ। उन दिनों सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार व रक्षा के लिए आर्य समाज में वड़ा उत्साह व जोश था। हो भी क्यों न? मुनिवर स्वामी, स्वतन्त्रानन्द और नारायण स्वामी जी महाराज की साधना आर्यों को उभार रही थी। देशघाती संस्था मुस्लिम लीग के मंत्री मण्डल ने सत्यार्थ-प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाते हुए कई पैंतरे बदले। जब अक्तूबर १६४४ ई० में प्रतिवन्ध लगाया तो सिंध में इस ग्रन्थ पर पूरा प्रतिबन्ध था। बाद में उर्दू हिंदी व सिंधी भाषा के संस्करणों पर यह पाबन्दी रहीं फिर सिंधी भाषा में छपे केवल चौदहवें समुल्लास पर प्रतिवन्ध लगाया।

मुस्लिम लीग ने वातावरण इतना दूषित बना दिया कि २६ मई १६४६ ई० को लाहौर में सत्यार्थ प्रकाश की रक्षा के लिए वीर परमानन्द, जनूनी मुसलमानों के हाथों वीर-गति को पा गये।

उस युग में कई वीरों ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्दश समुल्लास को कण्ठ करने का संकल्प किया। श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने सत्यार्थ प्रकाश की रक्षा के लिये अपनी ज्ञान प्रसूता लौह लेखनी के चमत्कार दिखाये। समाजों में सम्मेलनों में इस विषय पर आपके खोजपूर्ण प्रभाव शाली व्याख्यान होते रहे।

१९४७ ई० के आरम्भ में महात्मा नारायण स्वामी जी के नेतृत्व में आर्य समाज के कई प्रमुख व्यक्तियों ने इस प्रतिबन्ध को हटवाने के लिए कराची में सत्याग्रह किया। जिस दिन आर्य नेता वहाँ पहुँचे मिस्टर जिन्ना भी वहीं थे। सिंध सरकार ने इनमें से किसी को न पकड़ा। प्रतिबन्ध समाप्त समझा गया। महात्मा जी के साथ महात्मा आनन्द स्वामी, श्री कुँवर चाँदकरण शारदा व श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी आदि गये थे इसमें संदेह नहीं कि यदि सत्याग्रह समाप्त न होता तो श्री पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय कर्तव्य की पुकार पर धर्म रक्षा के लिए आर्य सेनापतियों की अग्रिम पंक्तियों में होते। सहस्रों आर्य वीर अपने धर्म ग्रन्थ की रक्षा के लिए तपोधन महात्मा नारायण स्वामी जी, राजर्षि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के आदेश पर जेलें भरने के लिये तड़प रहे थे। आर्य समाज इस अग्नि-परीक्षा में भी सफल हो गया। तब आर्य समाज के पास तपस्वी नेता थे, बिकाऊ माल नहीं था।

स्वामी आत्मानन्द जी ने अपने एक भावपूर्ण गीत में लिखा है:-

दयानन्द की है पताका रंगीली।
सजी ओ३म् के नाम वाली सजीली॥
सुनो रंग इसका बिगड़ने न देंगे
इसे रक्त से वीर लाखों सनेंगे॥
प्रथा यह पुरानी चलेगी फबीली......
जहाँ पेड़ अन्याय का जन्म लेगा।
विषैले कण्टीले फलों से फलेगा॥
वहाँ यह बनेगी कुल्हाड़ी नुकीली......
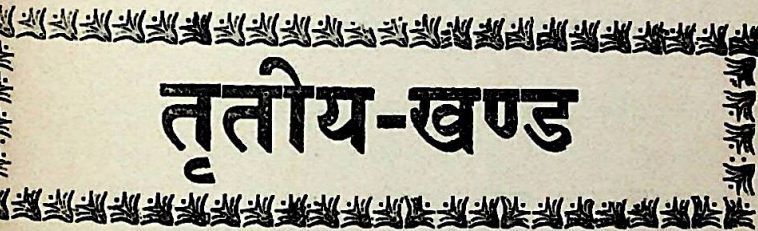
तृतीय-खण्ड

जीवन भर जो रहे, धर्म-सेवा ही करते।
साहित्यिक भण्डार, ग्रन्थ रत्नों के भरते॥
धार्मिक सङ्कट-सिन्धु तेज तरणी से तरते।
ध्येय धर्म का ध्यान, धन्य धरणी में धरते॥

श्रुति-हिम-आलय से सदा जो,
गङ्गा बन बहते रहे।
जिसके तट पर ऋषि कल्प बहु,
स्वाध्यायी रहते रहे॥

और वह चल बसे

जिसका आद है उसका अन्त भी है। जो बना है सो टूटेगा। सृष्टि के इस अटल नियम का अपबाद नहीं है। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का शरीर जर्जर होता जा रहा था। उन्हें अब स्पष्ट दीख रहा था कि इस शरीर को अब छोड़ना ही पड़ेगा। हम यह कहें तो अधिक उपयुक्त होगा कि उन्हें अब इस बात का पूरा ध्यान था कि यह शरीर अब किसी समय छूटेगा। जैन रेलवे स्टेशन पर यात्री अपना सामान लिए अपनी अपनी गाड़ी के आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं और गाड़ी आने के लिए जब Signal सिगनल मिलता है तो अपना-अपना सामान इकदम तैयार कर लेते हैं ऐसे ही हमारे पूज्य उपाध्याय जी अब अपना यह पार्थिव शरीर तजने और आगे चलने के लिए मानसिक दृष्टि से पूरे तैयार थे। संसार के सुखों, गृहस्थ, बेटे पोतों के मोह ने इस दृष्टि से उनके मन में कभी खिन्नता अथवा उदासीनता पैदा नहीं की। अपनी माता के प्रति उनकी श्रद्धा थी। अपनी पत्नी से उन्हें अपार

प्यार था। अपने पुत्रों, अपनी पुत्री व पुत्र वधुओं, सबसे उनको स्नेह था। 'जीवन चक्र' तो समर्पित ही नाती पोतों को किया गया Philosophy of Dayanand (फिलासफी आफ दयानन्द) की भूमिका के अन्त में भी पुत्र, पौत्रों व पुत्र वधुओं के प्रति बड़े भाव भरे हृदय से आभार प्रकट किया। माता जी का वर्षों पूर्व देहान्त हो गया था। पत्नी भी पति के जीवन काल में नश्वर देह का त्याग कर गई। एक पुत्रवधु डा० रत्न कुमारी जी भी यूँही चल बसीं। सन्तान आज्ञाकारी मिली। इससे पं० जी सन्तुष्ट थे। वेद वेत्ता दर्शनिक थे। सच्चाई को जानते भी थे और मानते भी थे कि सब-को चलना है, इस लिए वह अपनी अगली यात्रा के लिए मानसिक रूप से पूरे तैयार थे।

एक वार इन पंक्तियों के लेखक ने पत्र में और बातों के साथ-साथ स्वास्थ्य के बारे में पूछने का भी शिष्टाचार निभाया। उत्तर में आपने इस विषय में निम्न स्वरचित पद लिखा:—

दुआ कहते हैं दिल से जाने वाले बज्म वालों को
रहे गुलजार यह गुलशन रहे आबाद यह खाना

अर्थात—हमतो विदा होने वाले हैं। यह विश्व की सुरम्य वाटिका फूले फले यही हमारी कामना है। पीछे वालों को आशीष देते हैं। एक घटना आप अन्यत्र पढ़ही चुके हैं कि आँख के इलाज के समय कुछ भाई देहली में स्वास्थ्य का पता करने आए तो आपने एक स्वरचित पद बोला:—

अब तो बीनाई बढ़ गई इतनी
कि मौत साफ नजर आती है

एक बार हमने पत्र द्वारा कुशल क्षेम पूछा तो उत्तर में लिखा:—

तूल उमरी का मिरे बस राज है इतना सा
सुस्त रफ़्तार हूँ लग जाती है हर काम में देर

अर्थात् मेरे दीर्घ जीवन का रहस्य यही है कि मेरी गति मन्द है। प्रत्येक काम में देर हो जाती है। मरने में भी देर लग रही है।
एक बार लिखा था:—

देर सी लग रही है मरने में
साग़रे जिन्दगी भरने में
चल पड़ेंगे घड़ी जब आएगी
लगिए कुछ कारे खैर करने में

'जीवन चक्र' के मुख पृष्ठ पर लिखा मुक्तक तो प्रसिद्ध है ही:—

याद मेरी तुम्हें रहे न रहे
ज़िक्र मेरा कोई करे न करे
मर्सिया मैं ही अपना लिख जाऊँ
कौन जाने कोई लिखे न लिखे

ऐसे और भी कई पद व मुक्तक हैं जो अन्तिम दिनों को उनकी मनः

स्थिति को देर्शाते है। इससे पता चलता हैं कि उन्हें संसार छो
का कतई कोई दुःख न था। मृत्यु का कोई भय न था। इसी
उनके वेद शास्त्र के गम्भीर ज्ञान की सार्थिकता थी।

उन्होंने जीवन में कई बीमारियों को झेला बाराबंकी में
तो फेफड़ों में कफ जमा होने लग गया। एक बार निमोनिया
हो गया था। १९३५ ई० में डा० जोशी के शल्य चिकित्सा
देहली में भर्ती हुए। डा० जोशी ने बड़ी कुशलता से फाइल
का ओपरेशन किया। प्रयाग मे डा० मिश्रा ने बड़ी हाई प्रोस्टे
का ओपरेशन किया इस ओपरेशन में कई कठिनाइयां भी
परिवार के लोगों व शुभ चिन्तकों को कई वार आशा व निरा
के झूलों में झूलना पड़ा। आँख का भी आपरेशन हुआ। १९
ई० में घर में ही फिसल गये। कूल्हे की हड्डी टूट गई। वृद्धाव
में हड्डी ने क्या जुड़ना था। कहीं भी आना जाना बन्द हो गय
अँतड़ियों में बोझा सा अनुभव होता था। अन्तिम दिनों में पर्या
कष्ट था परन्तु आश्चर्य की बात है कि जीवन की अन्तिम घड़ि
तक उनका मस्तिष्क बिल्कुल ठीक था।

अन्तिम समय तक लेखनी तीव्र गति से चलती रही। प
का भी उत्तर देते रहे। हमें इस बात का स्वाभिमान है कि
से पूर्व आपने अपना अन्तिम पत्र हमें लिखा।

पं० जी के ज्येष्ठ पुत्र देहली में थे। उन्हें तार देकर बुला
गया। वह प्रयाग आए। हृदय -धीरे-धीरे दुर्बल हो रहा
मस्तिष्क स्वच्छ और निर्मल था। पं० जी के शिष्य और अ
पढ़ाने के गुरू मौलाना अली अकबर साहेब ने लिखा है कि अ

श्वास लेने तक सब आने जाने वालों को भली भाँति पहचानते थे मौलाना लिखते हैं कि उस समय भी गूढ दार्शनिक चर्चा का रस अस्वादन लेते थे। कोई प्रश्न करता तो उत्तर देते थे ।

कई वार उन्होंने कहा कि ऐसा सुना जाता हैं कि वहुत लोगों को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो जाता है मैं मृत्यु के निकट पहुंच रहा हूं परन्तु, मुझे ऐसा कोई पूर्वाभास नहीं हुआ। २६ अगस्त १९६८ ई० को डा० सत्यप्रकाश जो पैदल चलकर अपने पूज्य पिताजी के निवास पर पहुंचे। पिता को भांति मन्द गति हैं अतः पहुंचने में विलम्ब हुआ ही। पं० जी खाट पर वैठे थे । पुत्र भी पिता के पास वैठ गया । एक दो वातें हुई और सहसा उनका सिर ढुलक कर सत्यप्रकाश जी की गोद में आ गया। सजग चेतना के साथ उनका प्राणान्त हुआ। उन्होंने मृत्यु से कुछ समय पूर्व 'चलवसा' शीर्षक से एक बड़ा रोचक दार्शनिक लेख लिखा था। इस उर्दू लेख में आपने लिखा था कि किसी के निधन पर प्रयुक्त होने वाले ये दो शब्द 'चल बसा' वड़े प्यारे हैं। इनमें एक दार्शनिक सच्चाई का प्रकाश किया गया है कि मृत्यु क्या है ? चल वसना। इस शरीर का छूटना जोवन का अन्त नहीं है। इस शरोर का अन्त है जीव नया जन्म लेकर कहीं और वस जाता है। यह यात्रा चलती जाती है हमने उपाध्याय जो के उसो महत्त्वपूर्ण लेख का शोर्षक अपनाकर गुरुवार के महाप्रयाण का वर्णन किया है।

ऐसा 'जिज्ञासु' मिलना है जग में कठिन।
वह पिपासा सभी की वुझाते रहे ॥

श्रद्धा सुमन

"श्रीमान् उपाध्याय जी जैसे साधक दृढव्रती, निर्भीक समाः सेवी हमारे देश में इन गिने ही हैं। उपाध्याय जी के परिचय क सौभाग्य मुझे अपने वचपन से ही प्राप्त है। अनेक अवसरों प मुझे आपसे प्रोत्साहन व सत्प्रेरणाएँ मिली हैं। आज जब कि ये पंक्तियां लिख रहा हूं मेरे मानस पटल पर श्रेद्धय उपाध्याय ज की वह आकृति खिचित ही हो उठती है जब सरकार, ईसाई मुसलमान सभी की निगाह में कांटा बने वे आर्यसमाज के प्रच में रत थे। तब वे अपने आपमें एक संस्था थे। प्रसिद्धि की चाह से दूर जोखिमों की ओर से सर्वथा उदासीन होकर उन्होंने हम सामने सच्चे आर्य का चरित्र उपस्थित किया है।"

श्री ठा० श्रीनाथ सिंह जी, सम्पादक (दोदी)

प्रधान मन्त्री अखिल भारतीय पत्रकार लेखक संघ

"उपाध्याय जी ने साहित्य तथा समाज की असाधारण सेवा की है

डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए० डी० लिट्०

"उनकी सभी सार्वजनिक सेवाएँ सर्बथा स्तुत्य हैं।"

श्री राञ्जय सिंह जी पूर्व संसद सदस्य (केन्द्राय) अमे

"हुतात्मा लेखराम जी की अन्तिम इच्छा को, कि आर्यसमाज लेखन कार्य वन्द न होने पाये, आपने पूरी तरह निभाया है।"

श्री पं० विनायकराव जी विद्यालङ्कार

"पूज्यपाद श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय मेरे पिता के तुल्य हैं। उ मैंने बहुत कुछ सीखा है।"

श्री हरिवंश राय 'वच्चन'

"पण्डित होने के साथ-साथ सभा संचालन में ये बड़े पटु हैं। इसका अनुभव मैंने उनके प्रधान काल में किया। मैंने इस योग्यता से कार्य करने वाले कम प्रधान देखे हैं।"

आचार्य महेन्द्र प्रताप जी शास्त्री एम० ए०

आप ऋषि के परम भक्त, सैद्धान्तिक ज्ञान के रहस्यविद्, तपस्वी, त्यागी, स्वाध्यायशील साथ-साथ आर्यसमाज के नेता होकर भीं परम सेवक, लेखनी के धनी, देशविद्वन्मुकुट मणि हैं। आपका पाकर सचमुच आर्यसमाज गौरवान्वित हुआ है और भारत आप जैसे गुदड़ी के लाल को पाकर निहाल हुआ है सचमुच 'विद्या बिनयेन शोभते' के आप उदाहरण हैं।

स्नातक सत्यब्रतः बम्बई

"As a distinguished scholar, author of numerous works and reformer his name and fame will survive."

Dr. P. K. Acharya

"I have always looked upon him as one of those Indians whose life has been dedicated to a very useful type of much needed work in India, and have entertained great respect for his amiable

character, temperament and pleasant personality

Prof. A. C. Mukerjee

Head of the Philosophy Deptt.
Allahabad University

"…पाध्याय जी हमारे देश की महान विभूति हैं।"

डा० राम कुमार वर्मा

"उनका जीवन हमारे सबके लिए आदर्शरूप रहा है।"

डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए० डी० लिट् अजमेर

"आप सरल प्रकृति के पुरुष हैं, आप में छल दम्भ का लेश भी नहीं।"

आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेद तीर्थ ज्वालापुर

"He has always shunned limelight and has done yeoman's service to the cause which Arya Samaj holds dear."

डा० नारायण प्रसाद पूर्व उप कुलपति प्रयाग विश्वविद्यालय

"उनका जीवन आर्यसमाज को समर्पित था और उन्होंने आर्यसमाज की तन मन धन से सेवा की। मेरे ऐसे सैकड़ों आर्यसमाजियों के वह प्रेरणास्रोत थे।

डा० बाबूराम सैक्सेना एम० ए० डी० लिट्० पूर्व उपकुलपति

"हमारे मध्य श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एक अप्रतिम व्यक्ति हैं। उपाध्याय जी का जीवनादर्श और व्यवहार अनुकरणीय है। मनस्वी मानव परमुखापेक्षी तथा साधनऔर सुविधा का दास नहीं बरन परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने वाला होता है, ऐसी सदुक्ति की सत्यता का प्रचुर प्रमाण आपके श्रमिक विकसित जीवनमें ओत-प्रोत है।"

दिवंगत श्री स्वामी अभेदानन्द जी

प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

"हिन्दी के लिए उन्होंने जो साहित्य दिया है वह कितनी दृष्टियों से अत्यन्त मूल्यवान है।"

प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक तथा कवि दिवंगत
पं० हरि शंकर जी शर्मा

"उपाध्याय जी ने शिक्षा, साहित्य तथा धर्म की जो सेवा की है वह लोक विदित है।"

श्री डा० गोरख प्रसाद जी प्रयाग विश्वविद्यालय

"फूट, वर और दल-दल के इस युग में उन्होंने भिन्न-भिन्न संस्थाओं में ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन रहते हुए भी अपने को इनसे दूर रखा।"

श्री पण्डित राम नारायण मिश्र काशी

पण्डित जी का हास्य विनोद

श्री उपाध्याय जी के प्रवचनों में हास्य विनोद का रंग नहीं होता था। इसका यह अर्थ नहीं कि उनको हंसी विनोद से चिढ़ थी। वह स्वभाव से प्रेमल तथा उदार थे। प्रसन्न चित्त रहते थे, दूसरों को प्रसन्न देखना चाहते थे। कभी-कभी बातचीत में हास्य रस का अच्छा परिचय देते थे।

(१) लेखराम नगर (कादियां) में श्री पं० त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री ने उपाध्याय जी से कहा, "जो आप के चरणों में बैठता है अपने को धन्य समझता है।" इस पर उपाध्याय जी ने कहा, "भाई मैं बूढ़ा हो रहा हूं मेरे पाँव की हड्डियां टूट जायंगी मेरे पांव में मत बैठो। न ही मेरे सिर पर बैठना क्यों कि मुझ से बोझ नहीं उठाया जाता।"

वहीं आर्यसमाज के कोषाध्यक्ष महाशय बस्तीराम आए। इन पंक्तियों के लेखक ने उपाध्याय जी से उनका परिचय करवाते हुए कहा कि यह हैं महाशय बस्तीराम। आप हमारे समाज के सी० डी० देश मुख हैं। तब श्री देशमुख केन्द्र में वित्त मन्त्री थे। उपाध्याय जी ने कहा आप को सी० डी० देश मुख को महाशय वस्ती राम कहना चाहिए।

(२) शाहपुरा राजस्थान के युवराज श्री सुदर्शन को पढ़ाने के लिए आप अठारह मास शाहपुरा में रहे थे। वहां एक प्रज्ञाचक्षु पं० हरिश्चन्द्र जी थे उन्हीं के सम्पर्क से उपाध्याय जी ने संस्कृत काव्य रचना का आरम्भ किया था।

वह नित्य श्री पण्डित जी के निवास पर आते और कहते, "प्रोफेसर साहेब मैं आप के दर्शनों को आया हूं।"
उपाध्याय जी कहा करते थे, "पडित जी मेरे दर्शन करना तो आपके लिए असम्भव है। हाँ ! आप मुझे दर्शन देने अवश्य आते हैं।"

(३) एक दिन महाराजा उमेद सिंह जी ने उपाध्याय जी से पूछा, "आप घास पार्टी में हैं या माँस पार्टी में ?"

पं० जी ने कहा. "माँस भेड़िए खाते हैं और घास भेड़ें। मैं तो पूरी पार्टी में हूं।"

एक दिन पं० जी महाराजा साहेब के साथ उनकी अजमेर की कोठी में बैठे थे। प्रात: काल का समय था। सामने घास पर चड़ियाँ कीड़े वीन वीन कर खा रही थीं। महाराजा महोदय ने उपाध्याय जी से कहा, पण्डित जी ये चिड़ियाँ तो माँसाहारी हैं पं० जी ने झट से उत्तर दिया, "इन्होंने पातंजल का योग दर्शन नहीं पढ़ा इन्हें हिंसा अहिंसा का ज्ञान कैसे हो ?"

(४) सात मार्च १९५४ ई० को लेखरामनगर में विद्यार्थियों की भाषण प्रतियोगिता हो रही थी। उपाध्याय जी के हाथ में भी कार्यक्रम की एक प्रति दी गई। भाषणों के बीच में एक कविता भी रखी गई। कविता के आगे किसी का नाम नहीं था उपाध्याय जी ने कहा, राजेन्द्र यह कविता कवि लोगों की है अथवा किसी का नाम है।

कन्याओं के भाषण हो रहे थे कि बीच में एक बालक रमेश चन्द्र का भाषण करवाया गया। इस पर श्री उपाध्याय जी ने कहा क्या यहाँ लड़के भी लड़कियां होते हैं।

यही बालक रमेश चन्द्र इस समय दयानन्द कालेज काँगड़ा के यशस्वी प्राचार्य हैं। अब रमेश चन्द्र जीवन के नाम से आर्यसमाज के एक निष्ठावान मिशनरी के रूप में कार्य कर रहे हैं।

(५) लेखराम नगर की उसी यात्रा के समय एक दिन दिवंगत श्री पण्डित त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री ने कहा, उपाध्याय जी आप के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त कर बड़ा आनन्द मिलता है।

उपाध्याय जी बोले न भाई मेरे चरणों में न बैठना। मैं बूढ़ा हूँ। मेरे चरण टूट जाएंगे। यह सुनकर हम सब हंस पड़े।

स्मृतियों के

द्वीप में

"पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी
एक सिद्धहस्त लेखक हैं।
उपाध्याय जी ने सतत साधना,
तपोबल व मनोबल से ऊँचे पाण्डित्य
को प्राप्त किया है।

उनकी परिश्रम शीलता प्रशंसनीय है।
उनका अध्ययन गहन है।"

(प्रसिद्ध इतिहासकार एवं वैदिक विद्वान श्री पं० भगवद्दत्त जी ने १९५३ ई० में लेखक के एक प्रश्न के उत्तर में उपरोक्त शब्द कहे थे)

वीर परमार्थ के पथ से न हटा करते हैं।
शत्रु के सामने निर्भय हो डटा करते हैं॥
ज्ञान का भानु प्रखर जबकि उदय होता है।
घोर अज्ञान के तब मेघ छटा करते हैं॥

'कविरत्न प्रकाश चन्द्र जी

आस्तिक्य भाव

सम्भवत: १९५३ ई० की बात है पं० गंगाप्रसाद जी अपने एक सुयोग्य शिष्य अग्निलाल को साथ लेकर आगरा गये। ताज-महल को देखते हुए इस भव्य भवन की विशालता व सुन्दरता कि प्रशंसा करने लगे। इस अद्भुत भवन के बनवाने वाले व बनाने वाले कलाकारों की प्रशंसा कर ही रहे थे कि अनायास उपाध्याय जी का ध्यान वहीं किसी अन्य वस्तु ने खींच लिया। गुरू जो शिष्य से पूछ बैठे "अग्नि क्या तुम ताजमहल से भी अधिक सुन्दर कोई वस्तु देख रहे हो ?" उसने कहा, "नहीं"।

पं० जो ने समीप ही एक जलाशय में खिले हुए एक फूल की ओर संकेत करते हुए कहा, "अग्नि क्या यह फूल ताजमहल से सैकड़ों गुणा सुन्दर नहीं है"? शिष्य की समझ में आ गया कि ईश्वर की कारीगरी ईश्वर के कामों द्वारा चमक कर ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करती है।

आस्तिकवाद का यशस्वी लेखक सारा जीवन इस सत्य का प्रकाश करने में लगा रहा। ईश्वर के प्रति इसी अडिग श्रद्धा से वह जीवन भर आगे बढ़ते रहे। विपदा की घोर घटाओं में भी उनके पग डगमगाए नहीं।

अपनी बात भी तो कहो

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के पुराने भजनोपदेशक श्री पं० बलराज जी एक बार आर्यसमाज हनुमान रोड के एक कार्यक्रम में बोल रहे थे। ईश्वर की सर्वव्यापकता पर बोलते हुए आपने किसी उर्दू कवि का यह प्रसिद्ध पद सुनाया :—

> जाहद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर।
> या वह जगह बता जहां पर खुदा नहीं॥

जब बलराज जी अपने भजन समाप्त कर चुके तो पूज्य उपाध्याय जी ने उन्हें बुलाकर कहा शराबी की बात तो कहदी अपनी भी तो कुछ कहो। तब पं० जी ने अपना निम्न पद इसके उत्तर में सुनाया।

श्री पं० शिवकुमार जो शास्त्री इसमें थोड़ा संशोधन करके ऐसे सुनाया करते हैं :—

> ऐ रिंद पी शराब जहां चाहे बे धड़क।
> मन में अगर नहीं तो कहीं पर खुदा नहीं॥

उपाध्याय जी छोटी-छोटी बातों को किस दार्शनिक गहराई से सोचते थे उसका एक प्रमाण यह घटना है।

संध्या पर उपाध्याय जी की एक शङ्का

एक बार किसी आर्य सामाजिक साप्ताहिक [सम्भवतः आर्य मित्र] में उपाध्याय जी ने आर्य विद्वानों के सम्मुख एक सैद्धान्तिक शङ्का उपस्थित की। शङ्का यह थी कि सन्ध्या के अघमर्षण मन्त्रों में तो प्रलय के साथ २ सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है। इन मन्त्रों का नाम महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अघमर्षण मन्त्र क्योंकर लिखा जब कि मन्त्रों मे पाप को मसल डालने का कुछ भी वर्णन नहीं।

श्री पं० शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी ने यह प्रश्न पढ़कर उपाध्याय जी को लिखा कि आप सरीखे उच्च कोटि के विद्वान सिद्धन्तों के मर्मज्ञ होकर भी यह शङ्का हमारी परीक्षा के लिए लिख रहे हैं तो मेरा निवेदन है कि मनुष्य के मन में पाप की भावना के उत्थित होने के मुख्यतः दो कारण हैं। (१) निराशा और (२) अभिमान है।

निराश व्यक्ति सोच लेता है कि मुझसे अब कुछ नहीं हो सकता ऐसी स्थिति में वह निराशा के अन्धकुप में गिरते-गिरते आत्म हत्या का महापाप करने पर उद्यत हो जाता है।

पाप का दूसरा मुख्य जनक अभिमान है। "हमचो मा दीगरे नेस्त" मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं जो मेरे सामने टिक सके। इस प्रकार अभिमान में जकड़ा जाकर मनुष्य वड़े बड़े अनर्थ करता चला जाता है।

निराश व्यक्ति के लिए इस मन्त्र में बहुत बड़ा उपदेश है। परमात्मा की शक्ति को मनुष्य निहारता है कि कितनी विस्तृत तथा अद्भुत सृष्टि रची है। निराश होने की आवश्यकता नहीं। बिन्दु से घड़ा भर जाता है। धैर्य से पुरुषार्थ करते जाओ। पुरुषार्थ करने से कल्याण अवश्य होगा। निराशा पिशाचनी को परे फैंक कर ईश्वर की रचनात्मक शक्ति का ध्यान करते हुए अपने जीवन का निर्माण किया जावे।

दूसरा अभिमान से होने वाले पापों से बचने का उपाय —

परमात्मा कि संहारक शक्ति के द्वारा इन मंत्रों मे बताया गया है। परमेश्वर अपनी अथाह शक्ति से इस सृष्टि व अन्य लोकों का अन्त करके इन सबको चिकनाचूर कर देता है तो एक अल्पज्ञ मनुष्य की शक्ति उस भगवान के सम्मुख क्या है कि अभिमान कर सके। अतः विनय भाव धारण करके अभिमान से होने वाले पापों से बचा जावे।

निराशा और अभिमान से होने वाले पापों से बचने का सर्वोत्तम साधन संध्या के इन मन्त्रों में बताया गया है। इसी कारण से इनका नाम अघमर्षण मन्त्र होना स्वतः सिद्ध है।

पूज्य उपाध्याय जी इस समाधान से बहुत प्रसन्न हुए।

पाण्डित्य और विनय :—

प्रयाग के स्वाध्यायशील डा० के० सी० गोयल नये-नये आर्य समाज के सम्पर्क में आए थे। एक बार आर्यसमाज चौक में आपका

भाषण रखा गया। आप ने बड़े जोश से वल देकर कहा कि उपाध्याय जी द्वारा की गई मनुस्मृति की टीका कोई पूर्णतया प्रमाणित ग्रंथ नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने प्रचलित मनुस्मृति में जो कांट छांट की है सब ठीक ही है क्योंकि उनकी टीका के वाहर से मैं कुछ श्लोक उद्धृत कर सकता हूं जिन्हें कोई प्रक्षिप्त नहीं कह सकता।

पं० जी को अनुपस्थिति में ये शब्द कहे गये। कुछ आर्य भाईयों को डा० गोयल जी की यह टिप्पणी अरुचिकर लगी। उन्होंने पं० जी से डा० गोयल जी की शिकायत की। उपाध्याय जी उनकी बात सुनकर अप्रसन्न नहीं हुए। इसके विपरीत आपने कहा, "लड़के ने ठीक ही कहा है।"

पं० जी ने स्वयं अपने ही किसी लेख का एक उद्धारण भेजा इस लेख में उन्होंने स्वयं लिखा था कि मैंने जो प्रचलित मनुस्मृति में कांट छांट की है उसमें कुछ प्रमाणिक अंश भी अवश्य छूट गये हैं उपाध्याय जी ने अपनी कांट छांट को एक सर्जन के ऑपरेशन के तुल्य बताया जो दूषित अंश को निकाल फैंकने के समय कुछ स्वस्थ भाग को भी काट फैंकता है।

डा० गोयल जी ने लिखा है, "निस्सन्देह मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके समान एक विद्वान तथा वयोवृद्ध पुरुष ने मेरी भर्त्सना न करके मुझे पुरस्कृत किया। यह उनकी उदारता का परिचायक नहीं तो और क्या ?

उपाध्याय जी के जीवन की ऐसी अनेक घटनाएँ सुरक्षित नही

रखी गईं। वह अपने लेखों व साहित्य पर टीका टिप्पणी करने वालों का उत्तर बड़े विशाल हृदय से दिया करते थे। इसीसे उनके पाण्डित्य की शोभा और बढ़ती थी। विनय शील वह थे ही।

अच्छी रुचि है!

श्री पं० जी लेखरामनगर में पिण्डाल की ओर जा रहे थे। इन पंक्तियों का लेखक साथ था। कुछ युवक पास से निकले। वे परस्पर बातें कर रहे थे। मनोविनोद में ही एक दूसरे को बड़ी भद्दी गालियां दे रहे थे। उनकी गालियां सुनकर मुझे बड़ी ग्लानि आई। मैंने उपाध्याय जी से पूछा क्या उ० प्र० में भी पढ़े लिखे लड़के लाड प्यार में हँसी में एक दूसरे को अश्लील गालियाँ देते है?

आपने कहा, मैं बस में अमरोहा से कहीं जा रहा था। मेरे पास बैठे युवक एक दूसरे को बात बात में गालियां दे रहे थे। मैंने एक कान के पास होकर धीरे से कहा आपका Taste (रुचि) बहुत बढ़िया है। यह सुनकर वह लज्जित हुआ और उसने साथियों को संकेत से समझाया कि ऐसा करना उचित नहीं।

अब किसी को गालियां देते देखता हूं तो मैं भी उपाध्याय जी के इस वाक्य का प्रयोग करके समझाने का यत्न करता हूं। इस विधि से कई बार सफलता मिली है।

आर्यसमाज के उपदेशकों की चिन्ता,-

श्रीं पं० शान्तिप्रकाश जी श्री उपाध्याय जी के यहाँ ठहरे हुए। प्रातः वायु सेवन के लिए घूमते हुए मान्य उपाध्याय जी ने श्री

पण्डित शांति प्रकाश जी से पूछा कि आपके बच्चों की शिक्षा का क्या प्रवन्ध है ? पन्डित जी ने कहा कि भारत विभाजन के पश्चात् पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री महाशय कृष्ण जी को लिखा कि मैं अपने बच्चों को गुरुकुल काँगड़ी में शिक्षा दिलाना चाहता हूं। मेरा वेतन स्वल्प है। सभा उपदेशकों के बच्चों की गुरुकुल में निःशुल्क शिक्षा का प्रवन्ध करें। महाशयजी का सीधा उत्तर था कि ऐसा कोई नियम नहीं है। पन्डित जी ने कहा अब दशम कक्षा करके मेरे बच्चे सर्विस करते हुये आगे पढ़ रहे हैं, पढ़ जावेंगे ।

यह सुनकर पूज्य उपाध्याय जी वड़े दुखी हुये । पन्डित शांति प्रकाश जी ने कहा इसमें दुःख की कोई वात नहीं। लाखों करोड़ों व्यक्तियों से मेरी घरेलु स्थिति सन्तोषप्रद है। बच्चे परिश्रमी हैं। आगे निकल जावेंगे।

पन्डित गंगाप्रसाद जी ने पन्डित शान्ति प्रकाश जी की आर्थिक सहायता करना चाही। वहुत विवश किया परन्तु पन्डित शांति प्रकाश जी ने पूज्यनीय उपाध्याय जी की बात न मानी। ऐसे कितने ही समाज सेवकों की उन्होंने सुधि ली।

एक वात यहाँ ध्यान देने योग्य है कि जिस गुरुकुल कांगड़ी में सभा के अधिकारी उपदेशकों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा की सुविधा देने को उद्यत नहीं थे, उसी गुरुकुल में जब अनिष्टकारी वेश पन्थी घुसे तो ऐसी ईंट से ईंट बजा दीं कि गुरुकुल की रक्षा के लिये अपार धन लुटा, जन-हानि भी हुई। कोर्टों के चक्र तो

समाप्त होने में नहीं आ रहे थे।

आप भी यह सन्तोष प्राप्त कर सकते हैं:-

इस शताब्दी की छटी दशाब्दी में उपाध्याय जी का एक उर्दू मुक्तक पत्रों में छपा।

हो गया कोहना लिबास तार तार,
अब रफ़ूगर भी हमसे आरी है।
क्या कहें किस तरह गुजरती है,
जामाए नो की तैयारी है॥

इसका भाव यह है कि बूढ़ा शरीर जर्जर हो गया है। अब तो सर्जन भी इसे ठीक करने में असमर्थ हैं। क्या कहें कि जीवन कैसे बीत रहा है। अब तो नये चोले (पुनर्जन्म) को तैयारी है। यह मुक्त पाठकों भी बहुत अच्छा लगा। स्वयं उपाध्याय जी इसको प्रायः गुनगुनाया करते थे। एक बार किसी सभा में हिन्दू व मुसलमान बन्धुओं के मध्य में पन्डित जी ने यह मुक्तक सुनाया तो मुसलमान मित्र इसे सुनकर फड़क उठे और बोले, "आपकी मान्यता कितनी सन्तोषप्रद है। पण्डित जी ने कहा कि यह सन्तोष मुसलमान भाई भी प्राप्त कर सकते हैं। संकीर्णता तजने की आवश्यकता है।"

चक्षु दान

श्री पन्डित गंगा प्रसाद जी आन्दोलनकारी प्रवृत्ति के नेता

नहीं थे। वह अपने ध्येय के लिये समर्पित जीवन थे। लोकहित के लिये उनसे जो कुछ भी बन सका उन्होंने किया। उन्होंने मरणोपरान्त अपनी आंखें भी दान करने की इच्छा व्यक्त की परन्तु उनके जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी आँखें ठीक-२ काम नहीं कर रही थीं। एक का आपरेशन कराया गया और वह विफल रहा। श्री डा० मथुरादास जी मोगा वालों ने वर्षों पूर्व उन्हें कहा था कि आपरेशन न करवाना। एक आँख के विगड़ जाने से दूसरी का आपरेशन उन्होंने न करवाया। उससे जितना काम वह ले सकते थे. लेते रहे।

उपाध्याय जी क निधन पर उनके परिवार ने उनकी इस इच्छा पूर्ति में किसी का विशेष हित होता न देखकर आँखों का दान न होने दिया। श्री डॉ० सत्यप्रकाश जी ने इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि उपाध्याय जी की आँखें निरोग होती तो हम दे देते। कुछ भी हो श्री पन्डित जी की पवित्र भावना हम सबके लिये एक उदाहरण है। इस यज्ञ प्रेमी का सारा जीवन एक यज्ञ है। उन्होंने अपने सत्कर्मों से संसार को सुगन्धित करने में कोई कसर नहीं छोड़ो।

मान होता है नहीं धन धाम से।
मान होता है न सुन्दर चाम से॥
मान ऊँची डिग्रियों से भी नहीं।
मान होता है सदा शुभ काम से॥

('प्रकाश')

नम्रता का उच्च भाव:–श्री पन्डित शिव कुमार जी शास्त्री पूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० ने कई बार यह घटना सुनाई है कि एक बार उपाध्याय जी साधु आश्रम हरदुआ गंज जिला अलीगढ़ पधारे। परस्पर बातचीत करते हुये उपाध्याय जी ने एक शब्द का प्रयोग किया। श्री पण्डित शिव कुमार जी ने उपाध्याय जी से कहा कि व्याकरण की दृष्टि से यह शब्द ठीक नहीं। आपके भाव को प्रकट करने के लिये यह शब्द अनुपयुक्त है। पन्डित शिव कुमार जी तो तब जवान थे और उपाध्याय जी देश विदेश में प्रसिद्ध थे। श्री पन्डित गंगा प्रसाद जी ने बड़ी सरलता से अपनी भूल का सुधार कर लिया और पन्डित शिव कुमार जी को भूल सुझाने पर धन्यवाद दिया।

विनय की एक और घटना:-पण्डित गंगा प्रसाद जी ने "धर्म सुधासार" पुस्तक लिखी। प्रकाशित होने पर एक प्रति समालोचना के लिये हमारे पास भी भेजी। उनमें लिखा है कि ६ मार्च को १८९७ ई० के दिन पण्डित लेखराम जी का क्रूर घातक उनके पास पहुंचा और छल से अवसर पाकर पण्डित जी पर छुरे का बार कर दिया। हमने उपाध्याय जी को लिखा कि घातक ६ मार्च को नहीं १६ फरबरी को पण्डित जी के पास आया था। शुद्ध होकर उनके यहाँ खाता पीता रहा और छः मार्च को धर्मवीर पन्डित लेखरामजी पर प्राणघातक प्रहार कर दिया। कुछ और भी छोटी-छोटी त्रुटिया दूर करने का सुझाव दिया। यशस्वी मनस्वी साहित्यकार श्री उपाध्याय जी ने बड़ी उदारता व नम्रता से सुझाव स्वीकार करते हुये लिखा कि जब

अगला संस्करण छपेगा तो आप इन सब त्रुटियों को ठीक कर देना। उनके इस बड़प्पन की और भी ऐसी घटनाएँ हमें स्मरण हैं परन्तु पुस्तक के आकार का विस्तार रोकने के लिये एतद विषयक और घटनाएँ नहीं देते।

तरुण तत्ववेत्ता

श्री गंगा प्रसाद शिक्षा-महा विद्यालय प्रयाग के छात्र थे। आपकी शिक्षा-विधि की परीक्षा थी। शिक्षा महाविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी को स्कूल के छात्रों को पाठ पढ़ाना होता है। गंगा प्रसाद जी के पाठ का विषय था 'बीज'। आपने कई प्रकार के बीज एकात्रित किये। अमरूद के छोटे से बीज से लेकर नारियल के बड़े बीज तक अनेक बीज छात्रों के सामने रखे गये। इन बीजों का वनस्पति विज्ञान के अनुसार शास्त्रीय वर्गीयकरण किया गया। बच्चों को इन बीजों के बारे में कई प्रकार की जानकारी दी गई।

पाठ की समाप्ति पर गंगा प्रसाद जी ने अपने छात्रों से कहा, "क्या तुम ईश्वर की उस महती सत्ता का अनुभव नहीं करते जिसके द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार के बीजों से ऐसे विचित्र फूल पत्तें तथा फल उत्पन्न होते हैं ? बरगद के छोटे से बीज से बरगद का इतना विशाल वृक्ष बन जाना कैसे आश्चर्य जनक दृश्य है।"

कालेज के प्राचार्य महोदय इस पाठ का निरीक्षण कर रहे थे। इस अन्तिम वाक्य को सुनकर अपने शिक्षक-छात्र (Pupil

Teacher) से बोले "You are a young Philosopher" अर्थात् तुम तो एक तरुण दार्शनिक हो। उस दिन से गंगाप्रसाद जी के सहपाठी कभी-कभी उन्हें तरुण दार्शनिक भी कह दिया करते थे।

इस घटना से जहाँ पण्डित जी के दृढ़ ईश्वर विश्वास का पता चलता है, वहाँ यह भी पता चलता है कि आपके शिक्षक आपके बारे में क्या सोचते थे।

एक हँसी की बात

उपाध्याय जी दक्षिणी अफ्रीका की प्रचार यात्रा पर गये। वहां Fliek फ्लिक नामी पत्र के सम्पादक उनसे साक्षात्कार करने आए। उपाध्याय जी का जीवन परिचय छापने के लिये कई प्रश्न पूछे। एक प्रश्न यह भी था कि सबसे पहले आपने क्या लिखा था ?

पन्डित जी ने सोचकर कहा सर्वप्रथम मैंने नृत्य के ऊपर 'विवाह और रन्डियां' नामक ट्रैक्ट लिखा। उपाध्याय जी की भेंट का यह अंश पीछे मनोविनोद का कारण बन गया। इस भेंट के कई सप्ताह पश्चात पन्डित जी पोर्ट एलीजबेथ में गये। एक सज्जन दर्शनार्थ आये और कहा, "आप तो सूक्ष्म कलाओं के भी पन्डित हैं।"

पन्डित जी ने उत्तर में कहा, "मुझे तो कोई कला नहीं

आती।" झट से वह महाशय बोले, "क्या आप गाना नहीं जानते।" श्री पन्डित जी ने कहा, "सुनना जानता हूं। परन्तु न समझता हूं, न गा सकता हूं।"

उस महानुभाव ने कहा, "आपने तो नृत्य पर एक पुस्तक लिखी थी ?" पन्डित जी ने आश्चर्य से पूछा, "आपने कैसे जाना ?" उत्तर मिला, "फ्लिक पत्र में पढ़ा था।" यह सुनकर उपाध्यायाजी खिल खिलाकर हँसे। उस पत्र में उपाध्याय जी का जीवन वृत्त छपा था। वह वृत्त अन्य स्थानों पर पन्डित जी के परिचय के लिये भेजा गया था। बात कहां से कहाँ जा पहुंची। पन्डित जी ने उस महानुभाव को इस ट्रैक्ट के छपने का कारण बताया तो उसे वास्तविकता का ज्ञान हुआ।

उनकी सुरुचि—उनकी पसन्द

उपाध्यायजी के छोटे सुपुत्र श्री प्रकाशजी ने अपने सस्मरणों में लिखा है कि "उन्हें यह पसन्द था कि यदि पैसा अधिक हो तो बहुमूल्य पुस्तकें खरीद लें या उस पैसे को किसी उपयोगी कार्य में लगा दें। किसी अच्छे कार्य के लिये पैसा देने में वे झिझकते नहीं थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार डी० ए० वी० हाई स्कूल, इलाहाबाद पर जब धन का सङ्कट आया और समझा जाने लगा कि कुछ अध्यापकों को निकालना पड़ेगा, पिताजी ने उनको निकाले जाने के बजाये यह अधिक उत्तम समझा कि ७ माह तक वेतन न लिया जाये।

सङ्कट टलने तक यह दान दिया जाता रहा। कितने महान थे पूज्य श्री उपाध्याय जी !

शिष्यों का सम्मानः—

उपाध्याय जी सार्वदेशिक सभा के मन्त्री थे। तब सभा कार्यालय में दूरभाष की समस्या थी। आप इस विभाग के केन्द्रीय मन्त्री श्री रफी अहमद किदवाई के पास गये। सभा की कठिनाई उनके सामने रखी। वह एक दम बोले—"मास्टर जी चिन्ता न करें आपका काम हो जावेगा। कल ग्यारह बजे तक सभा कार्यालय में फोन लग जावेगा।

उपाध्याय जी ने मन्त्री महोदय से पूछा, "आपको यह कैसे पता लगा कि मैं अध्यापक हूं ?

श्री रफी अहमद ने बड़े आदर भाव से कहा कि आप तो नहीं जानते परन्तु मैं तो जानता हूं कि मैं आपका शिष्य रहा हूं। मुझे इस समय ठीक-२ स्मरण नहीं कि रफी अहमद कहां उपाध्याय जी के पास पढ़े, परन्तु कुछ कुछ ध्यान आता है कि बाराबंकी में वह उनके विद्यार्थी रहे।

यह घटना उपाध्याय जी के निधन पर प्रयाग से प्रकाशित एक श्रद्धाजाँलि स्मारिका में विश्व प्रकाश जी के एक लेख में मैंने पढ़ी थी।

इस घटना को लिख चुकने के पश्चात् श्री पण्डित रघुनाथ

प्रसाद जी के संस्मरण प्राप्त हुये। तब इस घटना सम्बन्धी कुछ और रोचक बातें पता चलीं। जब रफी साहब ने उपाध्याय जी से कहा कि आप मेरे नगर बाराबंकी के राजकीय स्कूल में मेरे टीचर रहे। तो उपाध्याय जी ने कहा, "भाई आपने बहुत याद रखा, मुझे तो इस बात की अब कतई याद नहीं।"

श्री रफी अहमद ने कहा, आपकी दृष्टि से सैंकड़ों छात्र निकले होंगे पर हमारी दृष्टि से चन्द मास्टर ही गुजरे थे।" यह कहकर मन्त्री महोदय ने चाय का अनुरोध किया। उपाध्याय जी ने चाय का आग्रह स्वीकार न किया। तब रफी साहब ने कहा, "मास्टर जी आपको हिन्दू मुसलमान का विचार होगा। परन्तु मैंने अपनी कोठी में हिंदू रसोइया रखा हुआ है। उसी के हाथ से चाय बनवाऊँगा।"

'इस पर उपाध्याय जी ने कहा, 'मुझे इस बात का कतई विचार नहीं है, विचार इस बात का है कि रफी शिष्य से भेंट करने नहीं आया था, कल फोन लगने पर मुझे निमन्त्रण देना, मैं अवश्य चाय पीने आऊँगा।"

अगले दिन ठीक १२ बजे फोन लग गया। रफी साहब ने फोन पर अपना निमन्त्रण दुहराया। सायंकाल पण्डित जी रफी साहब की कोठी पर पहुंच गये। चाय पीकर उन्हीं की कार पर श्रद्धानन्द बलिदान भवन लौटे।

इस सारे बृतान्त को पढ़ सुनकर हम एक ही टिप्पणी देंगे।

'बड़ों की प्यारी बातें' से शिष्टाचार एवं व्यवहार कुशलता बहुत कुछ हम सीख सकते हैं।

ऐसे थे हमारे उपाध्याय जी !

राजकीय विद्यालय बाराबंकी के प्रधान अध्यापक एक एंग्लो इण्डियन मिस्टर टॉमस थे। उपाध्याय जी को एक क्लास की मौखिक परीक्षा लेने को कहा गया। उसी क्लास में उनका ज्येष्ठ पुत्र पढ़ता था। उपाध्याय जी ने श्री टॉमस से इस विषय में कुछ कहा। उनके कथन का सार यह था कि वह अपने पुत्र के परीक्षक बनना नहीं चाहते।

प्रधान अध्यापक ने उपाध्याय जी के सुपुत्र सत्य प्रकाश को क्लास से बुलाकर सबसे अलग परीक्षा ली। यह वार्षिक परीक्षा थी। उपाध्याय जी की इस नीति से जहाँ उनका गौरव बढ़ा वहाँ बालक के लिये भी अच्छा ही रहा। श्री टॉमस ने विद्यार्थी की प्रशंसा की और उपाध्याय जी जितने अङ्क देते उससे अधिक ही अङ्क सत्य प्रकाश को मिले। आज तो शिक्षा का सारा ढाँचा ही ढीचूँ ही ढीचूँ कर रहा है। इसके लिये शिक्षकों को दोष दें अथवा शिष्यों को ? समाज को दोषी ठहरावें या राज्य सत्ता को ?

"मुझे बड़ा बल मिला"

१९५५ ई० में युवक श्रीरामजी दास गुप्त (आर्य भिक्षु, जी वानप्रस्थी) ने उ० प्र० सभा के कोषाध्यक्ष के रूप में आय-व्यय

का व्यौरा रखा तो पिछले वर्ष में वेद प्रचार विभाग में १५००० रु० का घाटा दिखाया। कई सदस्यों ने इस घाटे के लिए गुप्तजी की आलोचना की। एक वृद्ध उठे तो उन्होंने कहा, क्या वेद प्रचार कोई व्यापार है जिसमें लाभ हो ? कार्य अधिक हुआ तो घाटा होना ही था और अधिक घाटा होना चाहिए था। यह वृद्ध उपाध्याय जी थे। इनके इन शब्दों से आर्य भिक्षु जी का साहस बढ़ा। वह कहते हैं मुझे बड़ा बल मिला कि पूज्य उपाध्याय जी जैसा नेता मेरी प्रशंसा कर रहा है। सब चुप हो गये।

'बुरा न मानना मैं भूल गया'।

एक दिन उपाध्याय जी के घर राधे मोहन जी ने भोजन किया। उपाध्याय जी ने शिष्य राधेमोहन जी को ऐसे ही पुकारा जैसे अपने परिवार के किसी छोटे सदस्य को पुकारा जाता है। नाम के साथ श्री अथवा जी आदि कोई आदर सूचक शब्द नहीं जोड़ा।

राधे मोहन जी ने हाँ पन्डित जी कहकर कोई आज्ञा पूछी तो झट से बोले, राधे मोहन जी मैं तो भूल जाता हूं। बुरा न मानना, अपनेपन में मैं कोई आदर सूचक शब्द नहीं जोड़ पाता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्यार का मूल्य आँका नहीं जा सकता। वाणी इसके रस का बखान करने में असमर्थ है। उपाध्याय जी नामधारी आचार्य न थे, वह मर्यादाओं का पालन करने वाले तथा मर्यादा को स्थापित करने वाले महान

आचार्य थे। शिष्टता क्या है ? इसकी वह साक्षात प्रतिमा थे।

आह ! कुरसी उठाते हुये गिर गए

एक दिन मौलाना अली अकबर उपाध्याय जी को अरबी पढ़ाने के लिये आए। उनके आने पर उपाध्याय जी दूसरे कमरे में गये। कुर्सी उठाकर लाते हुये गिर गये। परिवार वालों ने पूछा कि कुर्सी क्यों उठाई ? किसके लिये उठाई ? उपाध्याय जी ने कहा कि मौलवी साहेब के लिए ! परिवार वालों ने कहा कि आपने वृद्धावस्था में ऐसा क्यों किया, किसी को कह देते। मौलाना साहेब उपाध्याय जी से पढ़ते भी थे और आयु में भी बहुत छोटे। उन्होंने भी कहा कि आपने यह कष्ट क्यों किया ? आपका कथन था कि मैं उनसे पढ़ता हूं। अतः यह मेरा कर्त्तव्य बनता है कि मैं उन्हें कुर्सी उठाकर दूँ। शिष्टाचार तो उनका सहज स्वभाव बन चुका था।

यह घटना 'आर्य मित्र' में प्रकाशित राधे मोहन जी के एक लेख में मैंने पढ़ी थी।

अन्तिम बेला में

श्री मौलाना अली अकबर ने पूज्यनीय उपाध्याय जी पर मुझे एक लेख भेजा था। मैंने इसे साप्ताहिक "वैदिक" धर्म उर्दू में प्रकाशित करवाया था। इसमें मौलाना साहेब ने उपाध्याय जी के अन्त समय की एक घटना दी थी। ऊँचा बोल न सकते थे। संके

से राधे मोहन जी को पास बुलाया।

राधे मोहन जी ने अपना कान गुरुवर के मुख के साथ लगाकर कहा, कहिए क्या आज्ञा है ?

तब उपाध्याय जी ने कहा, "अब शरीर छूटने वाला है कुछ पूछना है तो पूछ लो।"

ये शब्द सुनते ही मोहवश राधे मोहन तो फूट-फूट कर रोने लगे। संसार की रीति यही है।

परन्तु, यह घटना महान मनीषी गंगाप्रसाद के जीवन का सार है। उनका समस्त जीवन इसी उद्देश्य की पूर्ति में लगा रहा कि "जो पूछना हो पूछ लो।' अन्धकार निवारण करने में वह यत्नशील रहे। ज्ञान का प्रकाश करने में उन्हें एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती थी। अन्तिम बेला में भी उन्हें पुत्रों का, पुत्री का, नाती पोतों का ध्यान नहीं था। चिन्ता थी तो अपने ध्येय की जिसके लिए वह समर्पित रहे। यहाँ प्रसंगवश यह बताना भी रुचिकर रहेगा कि स्वामी दर्शनानन्द के उपदेशों का गंगाप्रसाद जी पर विशेष प्रभाव पड़ा। दर्शनानन्द जी ने भी अपनी अन्तिम वेला में हाथरस नगरी में मनादी करवा कर कहा था कि अब पूछ लो जो पूछना हो, दर्शनानन्द जा रहा है।

~卐~
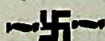
एक अविस्मरणीय घटना

श्री पं० गंगा प्रसाद जी किसी सामाजिक कार्य के लिये देहली आए। श्री लाला सन्तलाल जी 'विद्यार्थी' सम्पादक 'रिफार्मर' ने उन्हें बताया कि आपका शिष्य (मैं राजेन्द्र 'जिज्ञासु') भी देहली आया हुआ है। उपाध्याय जी ने कहा कि वह स्वामी आत्मानन्द जी के पास दयानन्द वाटिका जा रहे हैं। मेरे लिये सन्देश छोड़ा कि मैं उन्हें वहीं मिलूँ।

विद्यार्थी जी की विनती पर उपाध्याय जी ने उर्दू में एक पुस्तक लिखी। उसकी पाण्डुलिपि विद्यार्थी जी को देते हुए कहा- "राजेन्द्र से कहना कि इसको देख ले जो ठीक ठाक करना हो कर ले।"

मेरे बड़े भ्राता श्री यश जी मेरे साथ थे। जब श्री विद्यार्थी जी ने उपाध्याय जी का यह सन्देश मुझे दिया तो मैं चकित रह गया। मैंने समझा उपाध्याय जी ऐसी बात थोड़ी कह सकते हैं। यह तो विद्यार्थी जी का मनोविनोद है। विद्यार्थी कहते रहे परन्तु मैंने इसे सत्य न माना।

हम दोनों भाई दयानन्द वाटिका गए। पूज्य उपाध्याय जी ने इस पुस्तक की बात छेड़ दी। वही बात कही कि देख लो। जो कमी त्रुटि दीखे ठीक कर लो। मैंने नम्रता से कहा. "आप सरीखे दिग्गज विद्वान व मूर्धन्य लेखक की पुस्तक में मैं क्या दोष निकाल सकता हूं ? मैं क्या संशोधन कर सकता हूँ। फारसी की लोकोक्ति

कहीं:—

'कै आमदी वा कै पीर शुदी'
अर्थात् कब आए और कब गुरु बन बैठे।

इस पर उपाध्याय जी ने पुनः अपने वड़प्पन का परिचय देते हुए कहा कि तुम उस पुस्तक को देखो और जैसे चाहो संशोधन कर दो।

पुस्तक थी 'प्यामे हयात'। यह पुस्तक विद्यार्थी जी ने न जाने कहां गुम कर दी। मैंने इसे ध्यान से पढ़ा। जन साधारण व विद्वानों सबके लिए उपयोगी थी। सामग्री ठोस थी। मैंने एक दो वार विद्यार्थी जी से कहा कि इसे लिखवाया है तो छापो भी। वह यही कहते रहे कि मैं इसे अब तक छपी आर्य सामाजिक पुस्तकों से भी कहीं अधिक संख्या में प्रकाशित करूँगा, एक वार श्री रामचन्द्र जी 'जावेद' से इसकी भाषा आदि ठीक करवाऊँगा।

१९५९ ई० मथुरा में महर्षि दयानन्द दीक्षा शताब्दी पर कविरत्न 'प्रकाश जी' के पास उपाध्याय जी बैठे थे। वहाँ मैंने इस पुस्तक की वात छेड़ दी। मैंने विद्यार्थी जी की उपरोक्त इच्छा उन्हें सुना दी। इस पर उपाध्याय जी ने एकदम कहा, "यह हमें स्वीकार नहीं। हम अपनी पुस्तक की ऐसी अदल-बदल नहीं चाहते। वह न छापें।" भाव यही था। शब्द कुछ और हो सकते हैं।

तब मैंने विनय की कि आपने मुझे तो पुस्तक को ठीक करने के लिए वार-वार कहा था कि जो चाहो अदल-बदल कर लो अब विद्यार्थी जी की बात पर आपको क्या आपत्ति है ? इस पर वह बोले, "मैं आपकी भावना को जानता हूं। आपकी बात और है, विद्यार्थी जी की यह बात मुझे स्वीकार नहीं।"

मेरा अब भी यही विश्वास है कि श्री जावेद जी को पुस्तक की भाषा आदि में अदल-बदल के लिए कहा जाता तो वह भी इतने महान लेखक की पुस्तक की मनमानी काँट-छांट न करते।

उपाध्याय जी के महान व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि एक अनुभवहीन युवक कार्यकर्त्ता को प्रोत्साहन देने के लिए इतना बड़ा दायित्व सौंपा। इस घटना ने मुझ पर उनके स्नेह व सौजन्य की एक अमिट छाप छोड़ दी।

'आज का भोजन करना व्यर्थ रहा'

फरवरी १९७२ में जब श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी सरस्वती अबोहर पधारे तो कई युवकों ने उनसे प्रार्थना की कि वह पूज्य पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय के सम्बन्ध में कोई संस्मरण सुनाएं श्रद्धेय स्वामी जी ने कहा, "किसी और के बारे में तो सुना सकता हूँ परन्तु उपाध्याय जी के बारे में किसी और से पूछें।"

एक दिन सायंकाल स्वामी जी महाराज के साथ हम भ्रमण को निकले तब वैदिक साहित्य की चर्चा चल पड़ी। मैंने पूछा

"उपाध्याय जी का शरीर जर्जर हो चुका था, फिर भी वृद्धावस्था में उन्होंने इतना अधिक साहित्य कैसे तैयार कर दिया ? अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने कितने अनुपम व महत्वपूर्ण ग्रन्थों का सृजन कर दिया।"

स्वामी जी ने उत्तर में कहा, "उपाध्याय जी कहा करते थे, "जिस दिन मैंने कुछ न लिखा उस दिन मैं समझूंगा कि आज मेरा भोजन करना व्यर्थ गया। भोजन करना तभी सार्थक है यदि कुछ साहित्य सेवा करूँ।"

आपने बताया कि वह (उपाध्याय जी) एक साथ कई साहित्यिक Project (योजनाएं) लेकर कार्य करते थे। एक से मन ऊबा तो दूसरे कार्य में जुट जाते थे परन्तु लगे रहते थे। इससे उनका मन भी लगा रहता था तथा सन्तोष होता था कि किसी उपयोगी धर्म कार्य में लगा हुआ हूँ। बस यही रहस्य था कि उनकी महान साधना का।

इस पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक सामाजिक कार्यकर्त्ता के लिए यह घटना बड़ी प्रेरणाप्रद है।

उनका एक लेख

१९५४ ई० में लेखराम नगर (कादियाँ) में धर्मवीर पन्डित लेखराम जी को श्रद्धाञ्जलि देते हुये पूज्य उपाध्याय जी ने एक

घटना सुनाई। आर्य समाज के प्रचार के लिए यह घटना बहुत महत्वपूर्ण है। एक वार एक आर्य पत्र ने पण्डित लेखराम जी की स्मृति में अपना विशेषांक निकाला। इसके लिए उपाध्याय जी से भी एक लेख माँगा। आपने एक कागज के पूरे पृष्ठ पर स्थूल अक्षरों में केवल एक पद इस अङ्क के लिए लिख भेजा:—

तसनीफ़ को समाज की ले जाओ हर तरफ़।
पैग़ाम वेद पाक का पहुँचाओ हर तरफ़॥

अर्थात् आर्य समाज का साहित्य सब ओर ले जाओ और पवित्र वेद का सन्देश सब दिशाओं में सुनाओ।

उपाध्याया जी ने स्वयं इस घटना को सुनाते हुये इस वात पर बल दिया था कि वैदिक साहित्य के प्रकाशन और प्रचार प्रसार से ही संसार का कल्याण होगा। ऋषि मिशन की पूर्ति के लिए अच्छे वैदिक साहित्य के सृजन की आवश्यकता है।

लेखकों के लिये

१६५३ ई० में जब आप लेखराम नगर (कादिया) पधारे तो आपका स्वास्थ्य शिथिल था। मार्च का प्रथम सप्ताह था। सर्दी वहुत थी। मैंने कहा यदि आप वोलते जावें तो मैं आपके लेख को लिखता जाऊँगा। वह प्रति सप्ताह 'रिफार्मर' के लिये सम्पादकीय लिखा करते थे। उन्होंने सहर्ष यह विनती स्वीकार कर ली।

मैं लिखने बैठा। पृष्ठ समाप्त हुआ। अगला पृष्ठ लिया। लिखने लगा तो वोले, "ध्यान रखो लिखते हुए पहले पृष्ठ संख्या लिखो फिर लिखना आरम्भ करो। इससे सुविधा रहती है। गड़वड़ नहीं होती।"

मैंने उन्हीं से यह शिक्षा ग्रहण की और अब प्राय: लिखते समय मैं पृष्ठ संख्या पहले लिखकर ही कुछ लिखता हूं।

विचित्र लेखक······अद्भुत स्मृति

तभी एक विचित्र वाधा पड़ी। जव वह लिखवा रहे थे तो कोई बारात बाजे गाजे के साथ उधर से निकली। शोर के कारण लिखना लिखवाना बन्द करना पडा। वारात निकल जाने के वाद फिर मैं लिखने वैठा, वह लिखवाने लगे कुछ लिखा 'फिर एक वारात और आ गई फिर विघ्न पड़ा। इस प्रकार तीन चार वारातें उधर से निकलीं। हमने सोचा कल लिखा जावेगा, आज तो 'बारात दिवस' के कारण शोर में कुछ सुनाई न देगा।

अगले दिन मैं कागज लेकर लिखने के लिये बैठा ही था कि उपाध्याय जी ने वोलना आरम्भ कर दिया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, "पंडित जी आपने यह तो पूछा ही नहीं कि कल कहाँ छोड़ा था ? क्या वाक्य था ? कल का पढ़कर सुनाओ। लिखवाते हुये तो कई बार उसी समय पिछला वाक्य पूछना और पढ़वाना पढ़ता है।" उन्होंने सरलता से कहा, मुझे स्मरण है कि कल कहाँ छोड़ा था। यह सब कुछ जहाँ ईश्वर प्रदत है, वहाँ

परिश्रम, चिंतन व निरन्तर स्वाध्याय एवं साहित्य साधना भी इसका कारण है। उनकी स्मृति अद्भुत थी।

श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक ने लिखा है कि एक बार उन्हें एक लघु पुस्तिका लिखने की विनती की गयी तो एक घण्टे के भीतर पुस्तिका लिखकर दे दी।

'तो भारत का बेड़ा पार हो जावे'

आर्यसमाज दीवान हाल देहली के उत्सव पर पं० शान्ति प्रकाश जी का बड़ा ओजस्वी व्याख्यान हुआ। पं० जी ने उनमें कहा कि आर्यसमाज अपने किराये के मकानों और स्कूलों कालेजों को बेचकर यदि वेद प्रचार, शुद्धि व वैदिक साहित्य प्रकाशन में लगा दे तो आर्य समाज का बोल बाला हो जावे। इन संस्थाओं में झगड़े हैं। सन्ध्या हवन आदि उपेक्षित होते जा रहे हैं। वेद का नाद गुन्जाना है तो यह साहसिक पग उठाओ। मेरी बात ठीक न निकले तो मेरी गरदन काटकर फैंक दी जावे। जनता पर व्याख्यान का अद्भुत प्रभाव पड़ा।

बाद में ला० चरणदास जी पुरी ने कहा पं० जी बहुत अच्छे है परन्तु आज उन्होंने ठीक बात नहीं कही। विद्या प्रसार आर्य समाज का मुख्योद्देश्य है और धर्म प्रचार साधन है। यह वकीलों वाली बात वह कह गये। उपाध्याय जी मंच पर ही बैठे थे। लोगों में पुरी जी के टिप्पणी से रोष फैला। श्री पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार ने अपने विशिष्ट ढ़ंग से पं० शान्ति प्रकाश जी का

प्रवल समर्थन किया।

पं० गंगा प्रसाद जी ने रिफॉर्मर में अपने सम्पादकीय में लिखा कि पं० शान्ति प्रकाश जी ने अपने ओजस्वी व्याख्यान में जो कुछ कहा यदि आर्यसमाज उसका सौवाँ भाग भी मान ले तो भारत का बेड़ा पार हो जावे। पं० शान्ति प्रकाश जी ने पूज्य उपाध्याय जी से यह थपकी पाकर उन्हें धन्यवाद का पत्र लिखा।

लिखते वा लिखाते हुए

एक बार राधे मोहन जी ने श्री पं० गंगाप्रसाद जी से पूछा कि आप लेख लिखवाते हुए कभी रुकते नहीं! कभी सोचने का अवसर नहीं लेते और न ही पीछे लिखवाए हुए वाक्य को दूसरी बार पढ़वाते हैं। यह कैसे सम्भव हो पाया है। उन्होंने उत्तर में कहा कि मैं लिखवाने से पूर्व ही चिन्तन कर लेता हूं। जो विचार मस्तिष्क में होते हैं उनका मन्थन कर लेता हूँ। अतः एक बार लिखवाए हुए वाक्य को पढ़वाना नहीं पढ़ता।

उपाध्याय जी राधे मोहन जी से एक पुस्तक पढ़वा रहे थे। उसमें लेखक ने किसी वाक्य को स्पष्ट करने के लिए अर्थात् लिख कर कुछ लिखा। राधे मोहन जी को अर्थात् से भी वाक्य स्पष्ट न हुआ। आपने पं० जी से पूछा कि इसका क्या अर्थ हुआ। पं० जी ने कहा कई लेखकों को अपनी लिखी बात स्वयं ही समझ में नहीं आती वे यूं हो अर्थात् २ लिख देते हैं।

प्राध्यापक रत्न सिंह जी को भी पं० जी ने प्रयाग में कहा

था कि मैं एक वार लिखकर फिर काटता नहीं। काटने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यह वहुत वड़ो साहित्यिक सिद्धि है।

बिस्तर में पड़े पड़े लेखन कार्य

श्री पं० मदन मोहन विद्या सागर ने बताया कि एक वार वह प्रयाग गए। उपाध्याय जी के दर्शन करने उनके निवास पर गए। सर्दी के दिन थे। उपाध्याय जी रजाई (साल) ओढ़े बिस्तरे में पड़े हुये थे। पं० मदन मोहन जी का कुशल क्षेम पूछकर कहने लगे कि भाई ऐसा मत सोचना कि मैं अब तक विस्तर में पड़ा हूं। मैं तो यह भी लिखने पढ़ने का ही कार्य रहा हूं।

पं० मदन मोहन जी ने हमें बताया है कि मैं उनके विस्तरे में ही पुस्तक आदि देखकर वड़ा दंग रह गया कि यह महापुरुष कितना तपस्वी व कर्मठ है कि इस वृद्धावस्था में भी इसे चैन नहीं। न सर्दी में रूकता है, न गर्मी में। इसका लिखना पढ़ना चलता ही रहता है।

सुखी सफल गृहस्थी

हैदराबाद सत्याग्रह के पश्चात् शोलापुर में एक उपदेशक विद्यालय खोला गया। उपाध्याय जी सार्वदेशिक सभा की विनती पर उस विद्यालय में पढ़ाते थे। तब शोलापुर के दिवंगत श्री अशोक आर्य उनके पत्र आदि लिखा करते थे। श्री अशोक जी ने मुझे वताया कि एक वार उपाध्याय जी ने कुछ पत्र लिखवाये तो उनमें से एक पत्र परिवार को भी लिखवाया।

उसमें केवल अपनी कुशलता की सूचना दी और परिवार की कुशल क्षेम पूछी। इस पर अशोक जी ने कहा, "आप कुछ और भी तो लिखवाइये।"

उपाध्याय जी ने कहा, और क्या लिखवाऊँ ? परिवार को इतनी सूचना चाहिए कि मैं ठीक ठाक हूँ। बस इतने से उन्हें निश्चिन्तता हो जाती है। मुझे भी इतने से निश्चिन्तता हो जाती है कि पीछे सब प्रकार से मंगल कुशल हैं।"

श्री अशोक जी बताया करते थे कि वह परिवार का प्रायः संक्षिप्त सा पत्र ही लिखा करते थे इससे पता लगता था कि पारिवारिक जीवन में वह सन्तुष्ट, सुखी व सफल थे।

उनका गृह स्वर्ग है :–

१६५२ ई० में आर्यसमाज सीताराम बाजार देहली ने श्रावणी पर्व मनाया। श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी व श्री पं० भगवद्दत् जी के बारी-बारी से प्रवचन करवाये गये। मैं नियमित रूप से इन प्रवचनों को सुनने जाया करता था। एक दिन गृहस्थ पर बोलते हुए श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी ने कहा कि आर्य शास्त्रों ने सुखी गृहस्थ को धरती का स्वर्ग बताया है। ऐसा गृहस्थ देखना हो तो श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का घर देख लो।

ऐसा ही एक बार मैंने श्री महात्मा आनन्द भिक्षु जी के

श्रीमुख से भी सुना था।

देहलवी जी आदर्श पत्नी के रूप में माता कला देवी जी का दृष्टाँत दिया करते थे। आपने बताया कि उपाध्याय जी बैठकर लिख रहे थे। वह घण्टों लिखते व पढ़ते थे। अपने कार्य में लीन कई बार वह अपना रूमाल अपने कागजों व पुस्तकों में इधर उधर खो देते थे। माता कला देवी जी उनके आसन के आसपास चादर के साथ रूमाल को भी सी दिया करती थीं। आवश्यकता होने पर पण्डित जी वहीं से रूमाल उठा लिया करते थे। कपड़े की दुकानों पर कैंची भी तो ऐसी ही रखी जाती है।

"मैं थाली देखकर समझ जाता हूँ"

रिफार्मर में अपने लेखों में एक से अधिक बार उपाध्याय जी ने लिखा कि मेरे पास जब भोजन की थाली आती है तो मैं थाली को दूर से देखकर समझ लेता हूं कि आज थाली मेरी पत्नी ने लगाई है। ऐसा लिखने का प्रसंग यह होता था कि पति पत्नी की अनुकूलता जब होतीहै तो जैसा वे एक दूसरे की रूचियों को समझते हैं, वैसा कोई दूसरा नहीं समझ पाता, परन्तु ऐसे भाग्यशाली सब नहीं हो सकते। आज होटल युग में, पश्चिम के अन्ध अनुकरण के कारण अब Married Couple विवाहित जोड़े उस सुख की कल्पना भी नहीं कर सकते जो वैदिक गृहस्थ में है।

'अरे भाई बुड्ढों को कौन पूछता हैं' ?

यह १६५६ ई० की वात है। मैं दयानन्द कालेज हिसार की एम० ए० (प्रथम वर्ष) का विद्यार्थी था। मैंने कालेज के प्राचार्य जी से अनुरोध किया कि श्री डा० सत्यप्रकाश जी को व्याख्यान के लिये आमँत्रित किया जावे। मुझे कालेज की ओर से पत्र लिखने की अनुमति मिल गई। डा० साहेब ने प्रयाग विश्वविद्यालय में छात्रों की हड़ताल तथा एक कार्यक्रम के कारण तव आने में असमर्थता प्रकट की। फिर किसी समय आने का वचन दिया।

इतने में महर्षि दयानन्द दीक्षा शताब्दो महोत्सव आ गया। हम भी मित्र मण्डली के साथ मथुरा पहुंचे। उपाध्याय जी कविरत्न प्रकाश जी के पास बंठे हुये थे। हमने निवेदन किया कि डा० सत्य प्रकाश जी से हमें कालेज के लिये समय दिलवा दें। पं० जी ने कहा, "भाई बुड्ढों को कौन पूछता है ? आप स्वयं ही वात कर लें। डा० सत्य प्रकाश जी आये हुये है।"

हमें पं० जी की पुस्तकों व लेखों से इस वात का ज्ञान भो था कि डा० सत्य प्रकाश बड़े आज्ञाकारी पुत्र हैं। हमने पुनः पं० जी से अपनी विनती दुहराई। पं० जी ने कहा, "हमारा सत्यप्रकाश ऐसा नहीं। आप स्वयं उनसे वात करें। आपको तो घर में सव जानते हैं। सत्य प्रकाश में दिखावा नहीं है।" अभी हम यह वात कर ही रहे थे कि डा० सत्य प्रकाश व विश्व प्रकाश जी वहां आ गये। उपाध्याय जी ने कहा, "सत्य प्रकाश आपसे राजेन्द्र कुछ

कहना चाहता है।" आपने पत्र व्यवहार की स्मृति दिलाते हुये हमने पुनः अपनी विनती की। डा० सत्य प्रकाश जी ने बड़े प्रेम व नम्रता से कहा कि किसी अनुकूल समय पर जब आप लिखेंगे, मैं हिसार आऊँगा।"

पं० जी को अपनी सन्तान की योग्यता पर और शिष्टता पर सन्तोष था। 'आर्य मित्र' में उन्होंने एक लेख में सगर्व यह लिखा था कि मुझे सन्तोष है कि मेरे पश्चात् आर्य समाज में मेरा स्थान लेने वाले मुझसे अधिक योग्य होंगे। मैं देख रहा हूं कि मेरी सन्तान मुझसे अधिक योग्य है। उनके इस आशावादी दृष्टिकोण से हमें आज प्रेरणा मिलती है। उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो रही है। स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती अपने व्यक्तित्व व कर्त्तव्य से पण्डित जी की अक्षय यश में वृद्धि कर रहे हैं।

सार्वदेशिक सभा के मन्त्री जी के सिर की मालिश:-

पूज्य पं० जी सार्वदेशिक सभा के मन्त्री पद को सुशोभित कर रहे थे। एक दिन पं० मदन मोहन विद्यासागर उनके दर्शनार्थ श्रद्धानन्द बलिदान भवन पहुंच गये। सर्दी की ऋतु थी। उपाध्याय जी धूप में बैठे अपनी मालिश आप कर रहे थे।

पं० मदन मोहन जी उपाध्याय जी को पिता तुल्य पूज्य समझते थे। मदन मोहन जी ने उनसे विनती की, कि मैं आपकी मालिश करता हूं। तैल लेकर सिर की मालिश करने लग गये।

उपाध्याय जी हँस कर बोले, कोई देखेगा तो यही कहेगा कि तुम सार्वदेशिक सभा के मन्त्री की चाटुकारिता के लिये मालिश कर रहे हो। पं० मदन मोहन जी भी इस पर बहुत हँसे और कहा, "कोई कुछ भी कहे, मुझे क्या चिन्ता ?"

"ईश्वर यहां से भी उतना निकट है।"

१९५३ ई० की बात है। उपाध्याय जी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। बहुत समय तक डाक्टर चिकित्सा करते रहे। मैंने श्री लाला सन्तलाल जी विद्यार्थी से कहा आप उपाध्याय जी को देहली बुला लें। यहाँ बड़े बड़े डाक्टर हैं। मैं उनकी यहाँ सेवा करूँगा। मैं तब देहली रहता था। विद्यार्थी जी ने कहा—"आप यह बात पत्र में लिख दें मैं आपका पत्र उन्हें भेज दूँगा।"

मैंने पत्र लिख दिया। कई दिन पत्र उनकी जेब में रहा, फिर भेज दिया। उपाध्याय जी ने उन्हें उत्तर दिया। उन्होंने मुझे वह पत्र दिखाया। रिफार्मर में यह पत्र छपा भी था। उसमें मेरे प्रति आभार प्रकट करते हुये लिखा था—"ईश्वर प्रयाग से भी उतना ही निकट है जितना कि दिल्ली से ईश्वर की सर्वव्यापकता पर यदि मानवों को दृढ़ विश्वास हो जावे तो संसार के बहुत से रोग, पाप, ताप, कष्ट क्लेश कट जावें। ईश्वर पर उनका अडिग विश्वास था।

अजमेर के श्री विद्यानन्द विदेह एक नामधारी संन्यासी थे।

तीनों ऐषणाओं से ग्रसित थे । बड़े कपटी, असत्य भाषी धन लोलुप तो थे । प्रतीत होता है कि किसी मानसिक रोग से रुग्ण थे । इस कारण अपनी बड़ाई करके व सुनकर उन्हें बड़ा सन्तोष होता था । विदेह महोदय ने अपनी पुस्तक, पर निन्दा, आत्म स्तुति पुराण' (विदेह गाथा) में सर्वथा कपोल कल्पित बात लिखी है कि हैदराबाद में उपाध्याय जी ने कभी कहा था कि कौन जाने ईश्वर नाम की सत्ता है भी या नहीं । मनुष्य समाज को नियन्त्रण में रखने के लिये ही तो कहीं यह ढकोसला चला नहीं आ रहा है । ❖

मैं स्वय चार वर्ष दक्षिण में रहा हूं । हैदराबाद आना जाना तब भी था अब भी है । वहाँ उपाध्याय जी के प्रति उनके जीवन काल में भी बहुत श्रद्धा थी और अब भी । आर्यगण उनके श्रद्धालु हैं । उपाध्याय जी की पुस्तक 'बारी ताला' उर्दू वहीं से प्रकाशित हुई थीं । इसका विषय ही ईश्वर सत्ता है । यह त्रिदेह पुराण बड़ी हीन भावना से लिखा गया है ।

फ़ारसी का निम्न पद दूषित प्रवृत्ति के विदेहजी पर पूर्णतया चरितार्थ होता है:-

नैशे अक्रब न अज़ पै कीं अस्त ।
कि मक्तज़ाए तबीयतश ईं अस्त ।।

❖ 'विदेह गाथा' पृष्ठ ४७७

अर्थात् बिच्छू का डंग किसी वैर विरोध के कारण नहीं उसकी प्रवृत्ति अथवा स्वभाव ही ऐसा है।

मान से पीछे रहकर, मान प्रतिष्ठता पाईः—

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का वार्षिकोत्सव था। पं० शान्ति प्रकाश जी उत्सव पर आमान्त्रित थे। वह सैर से लौटकर आये तो क्या देखा कि एक टूटी फूटी चारपाई पर एक बृद्ध गहरी निद्रा में सोया पड़ा है। चारपाई के एक सिरे पर सोने वाले का सिर है और दूसरे सिरे पर टाँगे। सोने वाले की पीठ धरती को छू रही थी। वाण हो तो पीठ सीधी होती। जब चारपाई में वाण ही टूट टाट गया हो तो फिर सोने वाले की स्थिति तो यही होनी थी।

पं० शान्ति प्रकाश जी ने ध्यान से देखा तो ऐसा लगा कि यह सार्वदेशिक सभा के उप प्रधान श्री गंगा प्रसाद जी उपाध्याय हैं। साहित्य पढ़ा था। नाम सुना था। चित्र देख रखा था। भेंट आज ही हुई। पं० जी ने गुरूकुल के अधिकारियों कर्मचारियों को सचेत किया कि सार्वदेशिक सभा के उप प्रधान विख्यात विद्वान पूज्य उपाध्याय जी रात्रि देर से पहुंचे लगते हैं। स्वयं ही एक टूटी खटिया बिछाकर सोये पड़े हैं। अधिकारियों ने तपोनिधि उपाध्याय जी के विश्राम की समुचित व्यवस्था की।

आर्य समाज अपने इन सपूतों के तप से आगे बढ़ता गया। ये

लोग मान के पीछे-२ नहीं भागे। मान भाग भागकर इनके पास पहुंचता था।

सौजन्य की मूर्ति

मेरे प्रिय मित्र महाशय राजपाल जी 'सुमन' लेखराम नगर निवासी एफ०ए० करने के पश्चात् आर्थिक कठिनाईयों के कारण कानपुर चले गये। वहाँ साधारण से वेतन पर काम करने लगे। आर्य समाज के सत्सँगों में जाया करते थे। पूज्य उपाध्याय जी आर्य समाज मैस्टन रोड में व्याख्यान देने आये। उनके नाम की, उनके काम की और उनके पाण्डित्य की सारे आर्य जगत् में कीर्ति थी और अब भी है। व्याख्यान से पूर्व भी व पश्चात् भी आर्य स्त्री पुरुषों ने श्रद्धा विभोर होकर उन्हें घेरे रखा।

राजपाल सुमन तब १८-१९ वर्ष के युवक थे। कोई विशेष जान पहचान न थी। उपाध्याय जी के दर्शन लेखराम नगर में १९५३ ई० में किये थे। मैं यदा कदा व सदा उनसे चर्चा करते हुये और अपने व्याख्यानों में उपाध्याय जी के लेखों व ग्रन्थों के प्रमाण दिया करता था। वह भी उपाध्याय जी से बात करना चाहते थे। कैसे बात करें ? कैसे पास जावें ? एक उपाय सूझा। द्वार पर आ खड़े हुये। जब उपाध्यायजी बाहर निकलने लगे तो कर जोड़कर नमस्ते करते हुये मेरे मित्र सुमन जी ने इक दम अपना परिचय इस प्रकार दिया, "मैं राजेन्द्र जिज्ञासु जी का मित्र हूं। लेखराम नगर निवासी हूं।"

प्यार से उपाध्याय जी ने सुमन जी के सिर पर हाथ फेरा। अपनी बाहों में ले लिया। मेरी बावत पूछा। सुमन जी का कुशल क्षेम पूछा। आर्य समाज के लिये भरपूर प्रेरणा दी। सुमन जी को आर्शीवाद देकर बाहर निकले। सुमन जी इतने महान व्यक्तित्व की सरलता व सौजन्यता से बहुत प्रभावित हुये। न जाने उनके जीवन में ऐसी कितनी घटनाएँ घटीं।

मुझे भी आशा नहीं थी:—

मेरे एक विद्यार्थी श्री डा० सुरेन्द्र जी बंसल हैं। उन्होंने छात्र जीवन में उपाध्याय जी को एक पत्र लिखा है। सुरेन्द्र जी को यह आशा नहीं थीं कि देश विदेश में विख्यात दार्शनिक और आर्य समाज का इतना यशस्वी नेता एक युवक के पत्र का उत्तर भी देगा। परन्तु उपाध्याय जी ने बड़ी तत्परता से बड़े स्नेह से उनके पत्र का उत्तर दिया। उनका पत्र पाकर डा० सुरेन्द्र जी ने अपने को धन्य धन्य माना। मैंने दो वर्ष पूर्व डा० सुरेन्द्र जी से उपाध्याय जी का वह पत्र माँगा। उन्होंने कहा था कि पत्र कहीं सुरक्षित है। खोज करके दे दूँगा, परन्तु वह सम्भवतः भूल हो गये।

सेवकों का सम्मान :—

महर्षि दीक्षा शताब्दी पर 'प्रकाश' जी के पास उपाध्याय जी बैठे थे। पूज्या माता कलावती जी भी वहीं बैठी थीं। श्रद्धालु स्त्री

पुरुष 'प्रकाश' जी के दर्शनार्थं व उनका कुशल क्षेम पूछने आ रहे थे। एक माता आई। उसने कविरत्न जी को नमस्ते की। 'प्रकाश' जी ने भाव विभोर होकर पूज्य उपाध्याय जी से कहा, "पं० जी इन माता जी ने आपके प्रयाग से मुझे इस रुग्णावस्था में पर्याप्त सहायता भिजवाई है। कृतज्ञता से प्रकाश जी का गला रुंध गया। इससे पूर्व कि कविरत्न कुछ और कहते उपाध्याय जी ने ऊंची आवाज से कहा प्रकाश जी आप क्या कहते हैं? किसी ने कोई सहायता नहीं भेजी। आपने समाज की बहुत सेवा की है और कर कर रहे हैं। यह हमारा कर्त्तव्य है और हमें कर्त्तव्य पालन में जागरूक रहना चाहिए। कविरत्न जी से इसके बाद जब कभी भी भेंट हुई वह प्रायः यह संस्मरण सुनाते हुए कहा करते थे "जैसे उपाध्याय जी आपसे असीम स्नेह करते थे, मुझ पर भी उनकी बड़ी कृपा रहती थी।"

उनके प्रति भक्ति भाव :—

उपाध्याय जी अपनी निस्वार्थ सेवा, पाण्डित्य, स्पष्टवादिता व सरलता नम्रता के कारण अपने सम्पर्क में आने वालों को खींच लिया करते थे। १९७५ ई० में दक्षिण अफ्रीका से आर्य समाज शताब्दी पर भारत में आने वाले सज्जन उपाध्याय जी के परिवार को खोजने का प्रयास करते। श्री प्रकाश जी आदि को मिलकर वे लोग झूम उठते और ये उनके स्नेह से आच्छादित हो जाते। एक सज्जन तो अपने साथ उपाध्याय जी का एक चित्र भी लाए थे, "देखो यह उस समय का चित्र है जब उपाध्याय जी मेरे परिवार में ठहरे थे।" ऐसे भक्ति भाव को प्राप्त करना कोई साधारण उपलब्धि

नहीं। आर्य समाज में तो ईश्वर व जीव के बीच में कोई होता नहीं।

जब पिता ने गर्वित स्वर में सहर्ष पराजय स्वीकार की:-

सन् १९५५ में उपाध्याय जी का महत्वपूर्ण ग्रंथ Philosophy of Dayanand प्रकाशित हुआ। इसके कुछ समय पश्चात् प्राध्यापक रत्नसिंह जी प्रयाग गये। डा० सत्य प्रकाश जी की कोठी पर उपाध्याय जी के दर्शनार्थ पहुँचे। उपाध्याय जी ने श्री रत्न सिंह जी से पूछा कि आपने डा० सत्य प्रकाश की पुस्तक A critical study of Philosophy of Dayanand भी पढ़ा होगा। सत्य प्रकाश जी की पुस्तक और मेरी पुस्तक, दोनों में से आपको कौन सी पुस्तक अधिक अच्छी लगी ?

प्रा० रत्न सिंह जी ने कहा, "उपाध्याय जी मुझे तो आपकी पुस्तक से सत्य प्रकाश जी की पुस्तक अधिक बढ़िया लगी है। भाषा की दृष्टि से भी और विषय के प्रतिपादन की दृष्टि से।"

यह सुनकर उपाध्याय जी ने अपनी स्वाभाविक सरलता व उदारता से कहा, "हाँ सत्य प्रकाश जी की पुस्तक अधिक बढ़िया है, सभी ऐसा ही कहते हैं।"

प्राध्यापक रत्न सिंह जी का कथन है कि मुझे तब ऐसा लगा कि अपने पुत्र से पराजित होते हुए उपाध्याय जी हर्ष व गर्व अनुभव कर रहे थे। यहाँ यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि

इन पंक्तियों के लेखक का भी यही मत है कि यद्यपि दोनों ग्रन्थों में मौलिकता है। दोनों अपने विषय के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं तथापि भाषा, भाव व शैली की दृष्टि से पुत्र का ग्रन्थ पिता के ग्रंथ से बढ़िया है।

पूज्य उपाध्याय जी ने तब प्रा० रत्न सिंह जी से यह भी कहा, "मैंने अपनी पुस्तक लिखने से पहिले सत्यप्रकाश जी की पुस्तक को जान बूझकर नहीं पढ़ा ताकि मेरे मन व मस्तिष्क पर इसका कोई प्रभाव न पड़े।"

'दिन रात लौ लगी थी साहित्य के सृजन की'

१९६५ ई० में मैं 'वीर संयासी' पुस्तक लिख रहा था। मैंने पूज्य स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी के जीवन सम्बन्धी संस्मरण व घटनाएँ भेजने के लिए अनेक सज्जनों को पत्र लिखे। बहुत कम लोगों ने पत्रों का उत्तर दिया। पं गंगाप्रसाद जी को भी एक पत्र लिखा।

प्रयाग से श्री विजय कुमार (उपाध्याय जी के पौत्र) का पत्र आया कि उपाध्याय जी कानपुर गये हैं। वहाँ उनको रिक्शा दुर्घटना ग्रस्त होने से कुछ चोटें लगी हैं। विजय जी ने मुझे लिखा कि मैं कानपुर पत्र लिखूँ।

मैंने पुनः प्रयाग पत्र लिखकर उपाध्याय जी के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी माँगी और यह भी लिखा कि चोटें लगने के कारण उपाध्याय जी मुझे स्वामी जी के बारे में अब क्या संस्मरण

भेज सकेंगे। श्री विजय कुमार ने लिखा कि मैं कानपुर उपाध्याय जी को लिखूं वह अवश्य संस्मरण भेजेंगे।

मैंने पं० जी को पत्र लिखा। मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब पत्र प्राप्त करते ही उपाध्याय जी ने स्वामी जी के सम्बन्ध में मुझे बड़ा रोचक, उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सामाग्री भेज दी। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में सन्तोष की परिभाषा 'अत्यन्त पुरुषार्थ' की है। वैदिक साहित्य के सृजन में वह सन्तोष किंवा अत्यन्त पुरुषार्थ की जीती जागती मूर्ति थे वह कहा करते थे कि मेरी गति धीमी है। उनकी गति भले ही धीमी थी परन्तु प्रमाद को उन्होंने कभी पास नहीं फटकने दिया। रोग व बुढ़ापा भी उनकी साहित्य साधना में वाधक न बन सका। उपरोक्त घटना इसका एक अच्छा उदाहरण है। श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज युवकों को प्रेरणा देने के लिये कई बार यह घटना सुनाया करते हैं।

ईश्वर–विश्वास

हम अपने को आस्तिक कहते हैं। ईश्वर विश्वासी हैं परन्तु ईश्वर को दयालु व न्यायकारी मानते हुये भी विपत्तियों से घबरा जाते हैं। इसका कारण यही है कि हमारी दिनचर्या में ईशोपासना को वह स्थान प्राप्त नहीं जो भोजन को है और बर्तमान युग में जो स्थान हमने राजनीति अथवा सत्ता पूजन को दे रखा है। उपाध्याय जी ने 'आस्तिकवाद' व 'बारी ताला' जैसे ग्रन्थ तो लिखे ही, इस विषय पर सैंकड़ों लेख भी लिखे। उनका ईश्वर

विश्वास लेखों व पुस्तकों तक ही सीमित नहीं था। उनके सोच विचार व व्यवहार पर ईश्वर विश्वास की छाप थी।

उन्होंने अपनी आत्म कथा 'जीवन चक्र' में 'ईश्वर सुनता है' शीर्षक से एक रोचक व शिक्षाप्रद अध्याय भी लिखा लिखा है। इसमें उपाध्याय जी ने लिखा है, "जब सच्चे हृदय से प्रार्थना करने पर भी मेरी कामनाएँ सिद्ध नहीं होतीं तो मैं समझ लेता हूं कि मेरी कामनाओं की असिद्धि में ही मेरा हित था। ईश्वर सुनता अवश्य है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि मान भी ले। मैं प्रार्थना करता हूं। आज्ञा तो नहीं देता।"❁

१९०७ ई० में जब पंडित जी बिजनौर में अध्यापक थे तो उनका वेतन ४५) रू० मासिक था। अकाल पड़ने के कारण अन्न के भाव बहुत चढ़ गये। सिर पर १५०) रू० ऋण चढ़ गया। परिवार का निर्वाह ही अति कठिन था। बी० ए० की परीक्षा के लिये संस्कृत की टयूशन भी रख ली थी। आय का कोई और साधन न था। क्या किया जावे ? चरित्र नायक ने लिखा है—"अब केवल एक ही साधन था।" वह था ईश्वर से प्रार्थना। जब प्रातः सायं सन्ध्या करने बैठता तो नित्य ईश्वर से प्रार्थना करता कि नाथ ! कुछ भी विपत्ति दो ! ऋण चुकाने का कोई साधन भेज दो। एक मास बीत गया। न साधन दृष्टि में आया न प्रार्थना करना ही बन्द हुआ। प्रार्थना की सत्यता और तीव्रता बढ़ती गई। उसमें कोई कमी नहीं आई।"❃

❁ 'जीवन चक्र' पृ० ८२ ❃ वही पृ० ८४

एक आकस्मिक घटना घटी। एक अध्यापक छुट्टी पर चले गये। पं० जी को अपनी अवकाश की घण्टी में उनकी कक्षा में जाने का आदेश मिला। छात्रों से पूछा क्या पढ़ते हो ? उन्होंने बताया उर्दू व्याकरण।"

उनकी पुस्तक ली। देखा तो यह इण्डियन प्रेस प्रयाग की छपी थी। अंग्रेजी व्याकरण की शैली पर थी। ऐसी पुस्तक इससे पूर्व उपाध्याय जी ने न देखी थी। मन में एक विचार आया। जेब से कार्ड निकाला और उक्त प्रेस को लिखा कि "क्या आप इस प्रकार का हिन्दी व्याकरण भी छापेंगे ?" दो तीन दिन में उत्तर आया कि पुस्तक लिखी है तो भेज दो हम छापने को उद्यत हैं। यह भी पूछा कि क्या तुमने कोई पुस्तक कभी लिखी है ?

पं० जी ने कभी पुस्तक तो लिखी न थी। पत्रों में लेख दिया करते थे। ऐसा ही उत्तर दे दिया। रायलटी क्या दोगे यह भी पूछा। उधर पत्र लिखा इधर दिन रात पुस्तक लिखने में जुट गये। उनका उत्तर आया कि हम रायलटी तो नहीं देते परन्तु पुस्तक देखकर बता सकेंगे कि क्या दे सकते हैं। पं पद्म सिंह शर्मा से परामर्श करके पुस्तक रजिस्ट्री करके भेज दी। बीस भी मिल जाते तो लेखक की सन्तुष्टि थी। इण्डियन प्रेस ने लिखा दो सौ दे सकते हैं। एक सौ अभी और एक सौ पुस्तक छापने पर।

उपाध्याय जो ने स्वीकार करते हुए लिखा १५०) अभी भेज दें और पचास बाद में भेज देना। कुछ ही दिन में उन्हें १५०) प्राप्त हो गया। सारा ऋण चुकता कर दिया गया।

आपने लिखा है, "किसी को पता न चला कि यह रुपया कहाँ से आया। जब कष्ट दूर हो जाता है तो कष्ट की स्मृति पर हँसी आती है।

उस दिन से मेरी श्रद्धा ईश्वर प्रार्थना पर बढ़ गई है। जब कभी मेरे पास कोई अपना दुःख लाता है तो मैं उसे यही परामर्श देता हूँ कि श्रम करो और सच्चे दिल से ईश्वर प्रार्थना करो।"❀

वैदिक साहित्य के प्रसार की उत्कृष्ट इच्छा :—

पुस्तक में यत्र तत्र ऐसी कई घटनाएँ दी गई हैं जिनसे चरित्र नायक की वैदिक साहित्य प्रकाशन की उत्कट इच्छा का परिचय मिलता है। वैदिक साहित्य के प्रकाशन की उनकी लग्न बेजोड़ थी। आर्य समाज के इतिहास में चार भाषाओं में साधिकार लिखने वाला और कोई लेखक नहीं हुआ। उपाध्याय जी के जीवन काल में ही देश को कई भाषाओं में उनके कई ट्रैक्टों व पुस्तकों का अनुवाद छप चुका था।

अप्रैल १९३६ ई० में मैं शोलापुर गया। बाल काल से ही मेरे मन में ऋषि-मिशन के प्रचार के लिए अदम्य उत्साह रहा है। जब शोलापुर गया तो मेरे मन में अरमानों की भीड़ थी। मैंने उपाध्याय जी से मार्ग दर्शन करने के लिए एक पत्र लिखा। वह शोलापुर रह चुके थे। उस क्षेत्र से भली प्रकार से परिचित थे।

❀ जीवन चक्र पृ० ८७

अपने विस्तृत ज्ञान व निजी अनुभव के बल पर आपने मुझे लिखा मराठी व कन्नड़ भाषा में वैदिक साहित्य का प्रकाशन करो कराओ। अपने सम्पूर्ण साहित्य का अनुवाद करने कराने और छपवाने का मुझे लिखित अधिकार दिया। उनकी उदारता और धर्म भाव हम सबके लिए अनुकरणीय है।

मैंने इस दिशा में जो कुछ हो सकता था किया व करवाया। मराठी लिखने वाले आर्य बन्धुओं को प्रेरित करता रहा। कन्नड़ व मराठी में उपाध्याय जी के साहित्य का कुछ प्रकाशन हुआ। केरल में आचार्य नरेन्द्र भूषण जी ने १९६४ ई० में वैदिक धर्म प्रचार का बीड़ा उठाया। आपने बड़ी योग्यता व दक्षता से उपाध्याय जी के कई अंग्रेजी ट्रक्टों व कई हिंदी पुस्तकों का मलायलम में अनुवाद कर दिया। बहुत कुछ उपाध्याय जी के जीवन काल में छपवा भी दिया। आर्य समाज अंग्रेजी पोषकों के इस भ्रामक प्रचार का शिकार रहा है कि दक्षिण में अंग्रेज़ी साहित्य से वैदिक धर्म का प्रचार बढ़ेगा पूज्यनीय उपाध्याय जी ने हमें दिशा दी और मैंने भी दक्षिण में रहते हुये और बाद में दक्षिण की प्रचार यात्राओं में यह अनुभव किया कि अंग्रेज़ी कुछ सहायक हो सकती है, परन्तु जन जन तक वैदिक सन्देश पहुंचाने के लिये दक्षिण की प्रादेशिक भाषाओं में साहित्य का प्रकाशन आवश्यक है। बस दिशा में प्रमाद व ढील घातक है।

प्रयाग के माघ मेला की मीठी स्मृतियां:–

प्रतिवर्ष प्रयाग में माघ मेला होता है। आर्य समाज की ओर

से इस अवसर पर प्रचार की व्यवस्था होती है। पूज्य उपाध्याय जी इस प्रचार में सारी व्यवस्था का मार्ग दर्शन किया करते थे। कई भजनीक उपदेशक आते थे। मान्या माता कलादेवी जो पीछे से सब उपदेशकों प्रचारकों का भोजन बनाकर प्रचार शिविर में पहुंचती। एक उल्लास यात्रा (Picnic) सी भी हो जाया करती थी। साथ उपाध्याय परिवार प्रचार शिविर में होता था। पुराने उपदेशकों कार्य कर्त्ताओं के मन में आज भी माता जी की सेवा की मीठी याद गुदगुदाती रहती है।

उपाध्याय जी का अखण्ड अतिथि यज्ञ

प्रयाग में कोई आर्य जाये और उपाध्याय जी के दर्शनार्थ उनके निवास पर न पहुंचे, यह हो नहीं सकता था। जो भी जाता पं० जी व माता जी, जी खोलकर सत्कार करते। पं० जी ने चौक समाज के सेवक को यह निर्देश दे रखा था कि जो भी अतिथि आर्य समाज में ठहरे, उसका भोजन उन्हीं के यहाँ होगा। चाहे एक व्यक्ति हो, चाहे दो तीन अथवा इससे भी कभी अधिक हों तो भी माताजी सहर्ष सबका अतिथ्य किया करती थी। उपाध्यय जी का आतिथि यज्ञ अखण्ड चलता रहा। डा० सत्य प्रकाश जी को भी पिता से यह प्रवृत्ति वपौती में मिली। गृहस्थ जीवन में उन्हें भी आतिथ्य का वड़ा चाव रहा। खिलाने के साथ खाने का भी।

लोकैषणा से दूर

कीर्ति की चाहना कोई बुरी नहीं परन्तु यश की चाहना कोई और बात है और मान प्रतिष्ठा की भूख दूसरी बात है। जब नेता लोग प्रतिष्ठा पाने के लिए व्याकुल हो जाते हैं तो सभा सस्थाएँ पतनोन्मुख हो जाती हैं। नेताओं का व्यवहार वैसा होना चाहिए यह निम्न घटना से सीखना चाहिए।

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय वैदिक धर्म प्रचार के लिए केरल गए। चैंगन्नूर नगर में उनके जलूस के लिए लोग हाथी लाये। पूज्य उपाध्याय जी ने हाथी पर बैठने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि यहां तो लोग निर्धनता के कारण ईसाई बन रहे हैं और आप मुझे हाथी पर विठाकर दिखाना चाहते हैं कि मैं बड़ा धनीमानी व्यक्ति हूं या मेरा समाज बड़ा साधन सम्पन्न है। लोकैषणा से दूर उपाध्याय जी पैदल चलकर ही नगर में प्रविष्ट हुए।

'पारखी ही हीरे को पहचानता है'

'रिफ़ार्मर' में अपने एक सम्पादकीय में उपाध्याय जी ने लिखा था कि उच्च कोटि के साहित्य को आवश्यकता बहुत है परन्तु इधर ध्यान नहीं दिया जाता। उन्होंने लिखा कि 'शङ्कर भाष्य आलोचन' हमने लिखा। कला प्रेस ने छपवा दिया। विद्वानों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की। पुस्तक की थोड़ी सी प्रतियाँ ही बिकीं परन्तु श्री स्वामी आत्मानन्द जी ने लेखक को लिखा :—"बड़ी

गहरी डुबकी लगाते हो।" उपाध्याय जी ने लिखा था पुस्तक की खपत नहीं हुई, इसका कोई दुःख नहीं परन्तु, इस बात से बहुत सान्त्वना व सन्तोष प्राप्त हुआ है कि श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरीखे दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान ने हमारे परिश्रम को सार्थक समझा है ।

'फूल मुरझाए हुए' :—

उपाध्याय जी लेखराम नगर पधारे। रात्रि में महाशय कृष्ण जी का सम्मान किया गया। फूल मालाएँ लिए एक आर्य बन्धु मञ्च पर बैठे थे। श्री पं० गंगाराम जी लेखराम नगर वालों ने कहा "मालाएँ उलझ गईं हैं।" पास ही उपाध्याय जी बैठे थे और मैं भी उनके साथ था। सुनते ही अनायास उनके मुख से निकला,

"यह तो सुलझों को भी उलझा देती हैं" अगले दिन उपाध्याय जी का अभिनन्दन किया गया। पुष्प मालाएँ पहनाई जाने लगीं। मैंने स्वरचित एक कविता (तुकबन्दी ही कहिए) उनके स्वागत में पढ़ी। सम्मान के उत्तर में उन्होंने एक बड़ा गम्भीर और नपा तुला संक्षिप्त भाषण देकर अपना विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान का एक अंश मुझे कभी भूलता ही नहीं। श्रद्धेय गुरुवर ने तब कहा।—

कान में कहते गये हैं फूल मुरझाए हुए
फूल मत जाना खुशी के साज़ो सामां देखकर

अर्थात् जीवन में मान प्रतिष्ठा व ऐश्वर्य को प्राप्त करके इतराना नहीं चाहिये।

सार्वजनिक जीवन में सब छोटे बड़े कार्य कर्त्ताओं को उपाध्याय जी का यह सन्देश हृदयाङ्गम कर लेना चाहिये। इससे बहुतों का भला होगा।

प्रधान का पिता

१९५४ ई० की बात है। आर्य समाज चौक प्रयाग के सभासदों में कुछ मतभेद उत्पन्न हो गया। दो पक्ष थे। दोनों के कुछ प्रतिनिधि शिष्ट मण्डल बनाकर श्रीयुत पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय के पास आये और कहा, आप यदि इस वर्ष प्रधान बनना स्वीकार कर लें तो समाज में मतभेद बड़ी सुगमता से दूर हो जाएंगे।"

श्रद्धेय उपाध्याय जी ने कहा,—"मैं तो अब कई वर्षों से पदमुक्त रहकर ही समाज सेवा करने का निश्चय कर चुका हूं। अत: आप लोग स्वयं प्रीति पूर्वक अपनी समस्या सुलझा लें।" उपाध्याय जी तो तब आर्य समाज मोगा व लेखराम नगर (कादियाँ) के उत्सवों पर आ गये। जब वह लौटकर प्रयाग गये तब तक समाज का नया निर्वाचन हो चुका था। एक दिन श्री उपाध्याय जी ने दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों से कहा, "प्रधान बड़ा अथवा प्रधान का पिता ?"

प्रतिनिधि इस प्रश्न का प्रयोजन समझे अथवा नहीं। प्रत्येक समाज सेवी को इस घटना से प्रेरणा लेनी चाहिए। पदलोलुपता के महारोग से समाज को रक्षा करना बड़ा पुण्य कार्य है। प्रश्न का रहस्य यह है कि उपाध्याय जी की अनुपस्थिति में श्री विश्व प्रकाश जो आर्य समाज के प्रधान चुने गये। पूज्य उपाध्याय जी का यही भाव था कि समाज का प्रधान उनका सुपुत्र था। प्रधान बनकर वह इतने बड़े नहीं थे जितने प्रधान का पिता बनकर। ❦

—❦—

'मौत साफ़ नज़र आती है।'

उपाध्याय जी दार्शनिक थे, परन्तु स्वभाव शुष्क न था। उनमें मनोविनोद भी बहुत था। जब वह सार्वदेशिक सभा के मन्त्री थे तो एक बार आँख में कुछ विकार हो गया। चिकित्सा करवा रहे थे। किसी आर्य पुरुष ने स्वास्थ्य पूछा तो अनायास उनके मुख से एक स्वरचित पद निकला। सम्भवतः यह ऊर्दू पद उसी क्षण रचा गया:—

"अब तो बीनाई बढ़ गई इतनी।
कि मौत साफ़ नज़र आती है॥"

इसका भाव यह है कि अब तो दृष्टि इतनी बढ़ गई है कि

❦ १९५४ ई० में रिफ़ॉमर में प्रकाशित उपाध्याय जी के एक लेख के आधार पर।

मौत स्पष्ट दिखाई देती है। जिस जिसने भी यह पद सुना है उपाध्याय जी की काव्य की प्रतिभा मनोविनोद और प्रतुत्पन्न मति की भूरि भूरि प्रशंसा की।

'मैं फड़क उठा'

१९५४ ई० के ऋषि निर्वाण पर्व के उपलक्ष में मैंने साप्ताहिक 'रिफ़ार्मिर' देहली को एक लेख भेजा। लेख महर्षि के जीवन व दर्शन पर था। लेख छप गया। छपने के कुछ ही दिन बाद उपाध्याय जी का एक पत्र मुझे प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था "रिफ़ार्मिर में तुम्हारा लेख पढ़कर मैं फड़क उठा।"

पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि यह पत्र पाकर व पढ़कर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई होगी। उपाध्याय जी मेरा लेख पढ़कर कितने फड़के होंगे यह तो मैं क्या बता सकता हूं, परन्तु इतना अवश्य जानता हूं कि 'मैं फड़क उठा'' यह वाक्य पढ़कर मैं भी फड़क उठा। अपने युग के सर्वश्रेष्ठ वैदिक लेखक से इतनी आत्मीयता व सराहना को प्राप्त करके मैंने अपने को धन्य-धन्य जाना व माना। मेरे साहित्यिक जीवन के शैशव काल में इस महान मनीषी के इस पत्र से मुझे जो प्रेरणा प्राप्त हुई उसे शब्दों में व्यक्त करना मेरे बस की बात नहीं।

तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया।
वाणी से जावे वह क्योंकर सुनाया।।

उदीयमान लेखकों के प्रति उपाध्याय जी का यह

व्यवहार तथा यह दृष्टिकोण सभी अनुभवी, यशस्वी व पुराने लेखकों के लिये एक मर्यादा है। इस मर्यादा के पालन से साहित्य व समाज को नये नये रत्न प्राप्त होते रहेंगे।

'हँसाया न करो'

प्राध्यापक रत्न सिंह जी एक बार आर्य समाज हींग की मण्डी आगरा के उत्सव पर गये। पं० गंगा प्रसाद जी भी आमन्त्रित थे। श्रोताओं ने नवयुवक वक्ता रत्नसिंह के व्याख्यानों को अधिक पसन्द किया। उपाध्याय जी वक्ता के रूप में अपने विषय को इतना रोचक नहीं बना पाते थे जितना कि रत्नसिंह जी। श्रद्धेय उपाध्याय जी रत्न सिंह जी को वर्षों से जानते थे। प्रसन्न होकर युवक विद्वान से कहा, "बहुत अच्छा बोलते हो परन्तु हँसाया न करो, इससे व्याख्यान का महत्व कम हो जाता है।" परन्तु धर्म प्रचार के लिये प्रत्येक विद्वान वक्ता को उपाध्याय जी का यह सुझाव हृदयाङ्गम करना चाहिए।

—卐—

जब पुत्र को बन्दी बनाया गया:—

भारत छोड़ो आन्दोलन पूरे यौवन पर था। प्रयाग में इस आन्दोलन ने प्रचण्ड रूप धारण किया। प्रयाग विश्व विद्यालय के छात्रों में राष्ट्रीय चेतना देखकर विदेशी सरकार चिन्तित थी। छात्र भी इस आन्दोलन में कूद पड़े। छात्रों पर लाठी व गोली भी चलाई गई। अंग्रेजी शासन ने छात्रों में देश भक्ति के भाव के

लिए डा० सत्य प्रकाश जी को दोषी समझता था। सरकार समझती थी कि गाँधी टोपी वाला, श्वेत खद्दरधारी डाक्टर सत्य प्रकाश ही विद्यार्थियों का प्रेरणा स्रोत है।

बस फिर क्या था सरकार ने डा० साहेब को धर लिया। श्री लाल बहादुर शास्त्री, डा० काटजु व श्री फिरोज गाँधी आदि नेताओं के साथ उन्हें नैनी जेल में बन्दी बनाया गया। बम आदि बनाने के भयङ्कर आरोप थे। डा० सत्यप्रकाश जी के श्वसुर प्रयाग आए। वह घबराए हुए थे। पूज्य उपाध्याय जी को लेकर वह डिप्टी कमिशनर से मिले और कहा कि डा० सत्य प्रकाश तो कोई राजनैतिक व्यक्ति नहीं। अतः इन्हें छोड़ा जावे। सरकार को सब पता था कि डा० महोदय के श्री टण्डन जी, शास्त्री जी जैसे माननीय राष्ट्रीय नेताओं से सम्बन्ध हैं।

डिप्टी कमिशनर ने उपाध्याय जी से कहा कि आप पुत्र को समझावें कि वह लिखकर देवें कि मेरा आन्दोलन से कोई सम्बन्ध है और न होगा। इस पर उपाध्याय जी ने अत्यन्त दृढ़ता से कहा- मैं पुत्र को ऐसा परामर्श नहीं दे सकता। सरकार उसे दोषी समझती है तो दण्ड दे दे, यदि दोषी नहीं समझती तो छोड़ दे। डिप्टी कमिशनर ने कहा—आप निर्दोष होने की बात करते हैं। हमारे पास तो उसके विरुद्ध इतनी बड़ी फाईल है कि पूरा ग्रंथ बन जावे।

डा० सत्य प्रकाश (वर्तमान पूज्य स्वामी सत्य प्रकाश जी) ही एक मात्र भारतीय बन्दी नहीं थे। जिन्हें देश के स्वाधीनता

संग्राम में देशहित में बन्दी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने इस संघर्ष में पुत्र मोह पर विजय पाकर जिस नैतिक बल का परिचय दिया वह उन सरीखे दार्शनिक व धार्मिक नेता के लिये उपयुक्त ही है।

कोई बात नहीं

देश विभाजन के पश्चात् मेरठ में आर्य महा सम्मेलन हुआ। उसमें यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि आर्य समाज राजनीति में भाग ले या नहीं। श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने बड़ी गम्भीरता से अपने विचार रखते हुये यह कहा कि आर्य समाज सामूहिक रूप से राजनीति में भाग न ले।

पं० जी के पश्चात् एक युवक ने बड़ी ओजस्वी शब्दों में पण्डित जी की युक्तियों को काँटते हुए यह सिद्ध करने का यत्न किया कि आर्य समाज का राजनीति में कूदना ही श्रेयस्कर व आवश्यक है। जब यह युवक अपना भाषण समाप्त करके मंच पर बैठा तो पूज्य उपाध्याय जी ने उसकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, "तुम पुनः इस विषय पर विचारो।" उस युवक ने बड़ी धृष्टता से पं० जी का हाथ परे हटाते हुए कहा, "छोड़ो मैंने अच्छी प्रकार से सोचा विचारा है।" पं० जी ने फिर कहा, मैं तुम्हें जानता हूं, "तुम फिर एक बार इस पर विचारो।" युवक का फिर वही रोषपूर्ण उत्तर था।

कुछ समय पश्चात् उस युवक ने पं० जी को एक पत्र

लिखकर अपनी अशिष्टता पर पश्चाताप प्रकट करते लिखा, "आपके विचार ठीक हैं, मैं भूल पर था।" ऐसा ही एक लेख पत्रों में छपवाया। प० जी ने फिर बड़े स्नेह से उस युवक को लिखा, "मैं तुम्हें जानता हूं। तभी तो विचारने का आग्रह किया था।" पं० जी ने उस युवक की उद्दण्डता पर तनिक भी बुरा न माना। यह युवक थे पं० ओम प्रकाश जी खतोली वाले।"

पं० जी का एक पत्र

'बुढ़ापे की पहचान'

श्री प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय लेखराम नगर (कादियाँ) से देहली होते हुए प्रयाग गये। मार्ग में उन्हें खाँसी लग गई। श्री सन्तलाल विद्यार्थी जी ने बताया कि उपाध्याय जी को खाँसी ने परेशान कर रखा था। हमने पत्र लिखकर स्वास्थ्य के बारे में पूछा तो निम्न उत्तर अपने २८ मार्च १९५४ ई० के पत्र में लिखा:-

"खांसी बुढ़ापे की पहचान है। कभी आ बैठती है। उस दिन मुझे खेद हुआ कि मैं विद्यार्थी जी की नींद में बाधक हुआ। अब इतनी खांसी नहीं।"

खेद है कि हमारे संग्रह के कई पत्र किसी ने लिये और नष्ट कर दिये। यह पत्र भी नष्ट हो गया परन्तु सौभाग्य से इसे एक नोटबुक में तभी लिख लिया था।

'सबके लिए वानप्रस्थ, संन्यास नहीं'

४ मार्च १९५४ ई० को जालंधर छावनी में पं० जी क

व्याख्यान रखा गया। ट्रेनिंग कालेज की हमारी मित्र मण्डली भी पहुंची। व्याख्यान के पश्चात् हमारे एक सहपाठी प्रेमचन्द वाली ने प्रश्न रूप में कहा यदि ५० वर्ष की आयु के बाद सब वानप्रस्थ ले लें तो भारत में शिक्षा की कमी दूर हो जावे।

पं० जी ने उत्तर में कहा, किसी देश में प्राथमिक शिक्षा तो अनिवार्य घोषित की जा सकती है। क्या बिश्वविद्यालय की शिक्षा भी अनिवार्य की जा सकती है? ऐसे ही ब्रह्मचर्याश्रम तो अनिवार्य हो सकता है परन्तु गृहस्थ अथवा संन्यास किसी पर ठूंसा नहीं जा सकता। जब तक कि अगले इच्छुक न हों और इसके पात्र न हों।

४८ वर्षीय वाली जी अविवाहित थे। आपने यह भी पूछा, क्या अध्यापक को विवाह करना चाहिए? पं० जी ने उत्तर में कहा, "यह अध्यापक से पूछिये। मैं क्या कह सकता हूं।"

यदि वेद का स्वाध्याय करते तो........

डा० के० सी० गोयल गीता पर प्रवचन कर रहे थे। जन्माष्टमी का पर्व था। डा० जी का भाषण वैष्णव सम्प्रदाय की रंगत लिए हुए था। पूज्य उपाध्याय जी मञ्च पर आसीन थे। स्वयं वक्ता को बोलते हुए कुछ संकोच सा अनुभव हो रहा था। डा० गोयल तब तक उपाध्याय जी से परिचित न थे परन्तु उपाध्याय जी की कीर्ति सुन चुके थे। आज वह उपाध्याय जी

सुनने के लिये उत्सुक थे। उन्हें ऐसा लग रहा था कि पं० जी उनके भाषण पर कोई कटु टिप्पणी देंगे। कोई श्रोता भी उनके मुख से डा० गोयल जी के विचारों की कुछ ऐसी ही आलोचना सुनना चाहते थे।

डा० गोयल चकित हो गये जब उपाध्याय जी ने यह कहा कि मैं डाक्टर साहेव की वातों से सहमत हूं। हाँ ! इतना अवश्य कहूँगा कि जितना उन्होंने गीता का स्वाध्याय किया उसका कुछ समय यदि वह वेदों के स्वाध्याय में लगाते तो उन्हें वड़ी प्रसन्नता होती है। यह थी डा० गोयल जी की पं० जी से प्रथम भेंट। पं० जी की इस सत्प्रेरणा से वह वेद के स्वाध्याय में लग गये।

वैराग्य नहीं तो कपड़े रंगने से क्या लाभ ?

एक बार कुछ लोगों ने उपाध्याय जी से कहा कि अव आपका समय संन्यास लेने का है। विलम्ब नहीं करना चाहिए। पं० जी ने स्पष्ट उत्तर दिया कि जब मेरे अन्दर संन्यास के लिये आवश्यक वैराग्य नहीं है तो कपड़ा रंगने से क्या लाभ ?

यह घटना भी डा० गोयल जी ने ही भेजी है। जव स्वामी अमृतानन्द जी ने वानप्रस्थ में प्रवेश करने का निश्चय किया तो उन्होंने रिर्फामर में एक लेख लिखकर आश्रम बदलने के बारे में विद्वानों की सम्मति माँगी। तव उपाध्याय जी ने उन्हें अपने लेख में यही सुझाव दिया था कि जो काम वह घर में रहते हुये कर रहे हैं, वही करते चले जावें। वैराग्य के विना आश्रम वदलना

उचित नहीं इस पुस्तक में सम्भवतः अन्यतर भी हमने यह लिखा है कि उपाध्याय जी का सुझाव कई एक को तब अच्छा नहीं लगता था परन्तु आगे चलकर जब संन्यास को फैशन बनाकर राजनैतिक उद्देश्य से और पारिवारिक स्वार्थों के लिए कुछ लोग आर्य समाज को पतन की दलदल में घसीट कर ले गये तब सबको उपाध्याय जी के लेख व उपाध्याय जी के आचरण का स्मरण हुआ। जब सब लोग भावुकता के वशीभूत थे उपाध्याय जी ने उस समय अपना मानसिक सन्तुलन रखकर शास्त्र की बात कहीं। ऋषियों की मर्यादा को दूषित करने से सबको रोका।

~❀~

अग्रवालों के इतने गोत्र कैसे ?

श्री डा० गोयल जी ने ही लिखा है कि एक कायस्थ विद्वान एक बनिए के बच्चे को ढाल बनाकर पं जी के पास आया। उसी अग्रवाल युवक से प्रश्न कराया कि सगोत्र विवाह का कानून पास करवा कर आर्य समाज ने महापाप किया है। उसने पन्डित जी से कहा कि आप स्वयं भी बहुत बड़े अंश में इस पाप में भागीदार हैं।

पं० जी ने उस अग्रवाल युवक से पूछा, आप अग्रवाल तो महाराजा उग्रसेन की सन्तान से हैं। बतलाओं आपके साढ़े बाईस गोत्र कैसे हो गये ? क्या तुम्हारी महिलाओं.........? प्रश्न सीधा और गम्भीर था। प्रश्न सुनते ही वणिक पुत्र के प्राण निकलने लगे और वह अवाक हो गया। अब उपाध्याय जी ने उस कायस्थ

महोदय से पूछा, "कहिए आपको क्या शंका है ? उसने कहा आपने इस युवक से जो व्यवहार किया है उससे मेरा भी समाधान हो गया है।

'पं० जी गद्गद् हो गये' :—

उपाध्याय जी श्री रामचन्द्र जी जावेद के निवास पर ठहरे हुए थे। आगे लेखराम नगर (कादियां) जाना था। इन पंक्तियों का लेखक भो तब जालंधर में बी० टी० कक्षा का विद्यार्थी था। उनके आगमन की सूचना पाकर हम भी दर्शनार्थ पहुंच गये। वहाँ जालंधर छावनी स्कूल के एक अध्यापक श्री अमर सिंह जी बैठे हुए थे। वह बड़े अध्ययनशील थे। कुछ दार्शनिक चर्चा चल रही थी। उपाध्याय जी ने प्रसंगवश कहा आश्चर्य व छल ही अंध विश्वासों को जन्म देते व पोषण करते हैं। अपनी पुस्तक Superstition के प्रथम अध्याय को देखने व पढ़ने की प्रेरणा दी।

हमने लिखा था कि प्रयाग से आते हुए हमारे लिए कुछ पुस्तकें लेते आवें उनमें से एक Superstition भी थी। उपाध्याय जी पृष्ठ उलटते पुलटते रहे। उन्हें उपरोक्त प्रसंग न मिला। तब हमने कहा कि जो पैरा आप कह रहे हैं वह पुस्तक के दायें नहीं बायें ओर का पृष्ठ होना चाहिये। पुस्तक उनके हाथ से ली और इकदम वह प्रसंग निकाल दिया तब आपने गद्गद् होकर कहा, "तुमने इतने ध्यान से मेरी पुस्तकों को पढ़ा है।"

पाठकों की ज्ञानवृद्धि के लिये वह महत्वपूर्ण वाक्य यहाँ उद्धत करना उपयुक्त रहेगा।

"We said that fraud is the nurse of superstition. If there is no fraud in the world superstition if born, will die soon a natural death. Superstition is not a mother-breast-fed child. Wonder does not feed it. She gives birth tc it and leaves it. No mother takes pride in illegitimate children. It is fraud that rushes to its succour, takes it her lap and bring it up."

अर्थात् छलछद्म अंधविश्वासों की छाया है। यदि संसार छल न हो, तो अंधविश्वास यदि जन्म भी लेगा तो शीघ्र स्वाभाविक मौत मर जावेगा। अंधविश्वास एक ऐसा शिशु है, जिसका पालन माता द्वारा नहीं होता। आश्चर्य इसको खिलाता पालता नहीं, इसे जन्म देकर वह इसे तज देता है। कोई भी माँ अपने अवैध वच्चों पर गर्व नहीं करती। यह तो छल है जो इसकी सहायता को पहुँचता है, अपनी गोद में उठाता है और पालन करता है।◇

दयालु ऋषि का दयालु शिष्य

१९४९ ई० में उपाध्याय जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक

◇ द्रष्टव्य Superstition पृष्ठ ६.

Vedic Culture लिखी। १६५१ ई० में इस पर उन्हें दयानन्द अमृतधारा साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह पुरस्कार की राशि ६०० रु० थी। उन्हीं दिनों सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में उनकी अनुपस्थिति में उनके निवास स्थान से ५६० रुपए की चोरी हो गई। उपाध्याय जी लौटकर आए तो रिपोर्ट लिखवाई। पुलिस अधिकारी ने जाँच की और जाते समय उनके सेवक को अपने साथ ले जाना चाहा। सेवक का कथन था कि उसने चोरी नहीं की।

दयालु ऋषि के शिष्य श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय व माननीया माता कलादेवी जी ने पुलिस अधिकारी से कहा, "यदि हमारे रुपये प्राप्त हो जाएँ तो इसे ले जा सकते हो यदि नहीं तो सन्देह में सेवक को मारा पीटा गया तो यह हमारे लिए असह्य होगा।" पुलिस अधिकारी यह आश्वासन न दे सका। सेवक को वारम्वार साथ ले जाने का अनुरोध किया। इस पर उपाध्याय जी ने अपनी रिपोर्ट वापस ले ली। पुलिस अधिकारी को वापिस कर दिया गया। माता कलादेवी के हृदय में करुणा थी। उपाध्याय जी ने अपने व्यवहार से प्रमाणित कर दिया कि वह ऋषि के सच्चे शिष्य हैं। सेवक उन दोनों के आर्योचित व्यवहार से अत्यन्त प्रभावित हुआ।

उपाध्याय जी ने चोरी के वारे में रिफार्मर में भी एक लेख में कुछ लिखा था। उनके प्रशंसकों व भक्तों ने उनकी क्षति पूर्ति का सुझाव रखा परन्तु उन्होंने कहा, जब कुछ लेना होता है तो प्रभु से माँग लेता हूं।

सेवक सम्बन्धी संस्मरण हमें श्री पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक ने भेजा है।

दान से प्रसन्न हुए

माता कलादेवी ने आर्य कन्या विद्यालय के उत्सव पर अपने गले का हार दान में दे दिया। इस घटना की कहीं अन्यत्र चर्चा है। प्रा० श्री प्रकाश जी ने उस पर पिताजी के मनोभावों की बावत लिखा है कि वे माता जी के इस धर्म भाव से, दानशीलता से बहुत प्रसन्न हुए। पत्नी बिना पूछे इतना बड़ा दान करदे और पति किञ्चित मात्र भी रोष व्यक्त न करे, इसके विपरीत वह हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करे यही आर्योचित व्यवहार है।

अद्भुत स्मरण शक्ति

उपाध्याय जी की स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी। वृद्धावस्था में नियमित रूप से रिफ़ार्मर के लिए सम्पादकीय लिखते थे। अन्य पत्रों में भी लेख देते थे। बिना पुस्तक देखे प्रमाण आदि ठीक-ठीक दिया करते थे। सार्वदेशिक सभा के मन्त्री पद का परित्याग करने के कई वर्ष बाद देहली आए तो सभा के गणक श्री प्रेमचन्द जी से अपने हिसाब की स्थिति ज्ञात की। उन्होंने अनुमान से कुछ राशि बताई। यह राशि सभा की ओर से उपाध्याय जी को प्राप्तव्य थी। पं० जी ने इसमें से दो रुपये बारह आने की कमी बताई। खाता देखा गया तो राशि ठीक उतनी ही थी जितनी उपाध्याय जी ने बतलाई थी। उपाध्याय जी की स्मरण शक्ति से तो कार्यालय वाले चकित हुए ही। आर्यों में अर्थ शुद्धि का कितना महत्व है। इसका प्रमाण यह छोटी सी घटना है।

—※—

पत्नी का धर्म भाव—पति के नाम का विरोध

—卐—
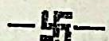
श्री पं० जी आर्य समाज के सर्वमान्य नेता व सार्वदेशिक ख्याति के विद्वान लेखक थे। पूजनीया माता कलादेवी जी अपने पति के कारण तो प्रसिद्ध थी हीं अपनी समाज सेवा के कारण उनका अपना भी एक अस्तित्व था। वह भी बहुत धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। उनकी व्यवहारिक कुशलता, प्रशासनिक योग्यता व धर्मभाव की एक विशेष घटना का उल्लेख यहाँ हम सबके लिए शिक्षाप्रद है।

माताजी का प्रयाग को कई सामाजिक संस्थाओं से सम्बन्ध था। प्रयाग के कटघर मुहल्ला के हिन्दू अनाथालय को भी माता जी का सहयोग प्राप्त था। एक बार उपाध्याय जी का अनुपस्थिति में इस अनाथालय के संचालकों के सामने एक समस्या उपस्थित हुई। एक हाल बनना था। प्रश्न यह था कि यह किसके नाम पर हो। एक सज्जन ने जीवन भर इस संस्था की सेवा की थी, अब इस संसार में नहीं थे। उनके नाम पर हाल का नाम रखने का प्रस्ताव आया परन्तु सभा में कुछ लोग उनके विरोधी थे। दो दल बन गये। अन्त में दोनों दलों ने उपाध्याय जी के नाम पर सहमति प्रकट की। इस पर माता कलादेवी जी ने इसका विरोध करते हुए कहा, "उपाध्याय जी ने अनाथालय की सेवा नहीं की अतः उनके नाम पर हाल का नाम क्यों रखा जावे? कलादेवी जी के विरोध के कारण यह प्रस्ताव वापिस हो गया। उसी सज्जन के नाम पर हाल बना। यही उचित था। उपाध्याय जी को माता कलादेवी जी ने पूछा क्या आपको यह बुरा तो नहीं

लगा ? आपके पीछे आपके नाम का मैंने विरोध किया। उपाध्याय जी ने पत्नी से कहा, "तुमने समुचित बात की। मुझे प्रसन्न होना चाहिए। सभा में बैठकर सदस्य को पक्षपात शून्य होना चाहिए।" पाठक वृन्द। यही धर्म है. यही मर्यादा है।

दानशीलता का उत्तम भाव

उपनिषद् ने धर्म के तीन खम्बे बताते हैं दान भी उनमें से एक है। "त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः तप एव।"× भले कामों के लिए जो भी दान देता है, वह पुण्य का भागी है और प्रशंसनीय है। श्री पं० गंगाप्रसाद जी धर्म के मर्म को समझने व समझाने वाले दार्शनिक महापुरुष थे। उनकी दानशीलता अनुकरणीय थी। उनको दानशीलता में एक सुन्दरता थी। उनकी यह प्रवृत्ति भी उनके गहन चिन्तन व उच्च धर्मभाव की उपज थी। परम पिता परमात्मा पर अडिग विश्वास से प्रेरित होकर वह धार्मिक कार्यों के लिए दान दिया करते थे। वह गृहस्थ की गाड़ी के दक्ष चालक थे। स्वयं तो दान देने का महत्व जानकर दान करते ही थे। गृहस्थ की गाड़ी को ऐसी दक्षता से चलाया कि माता कलादेवी जी की दानशीलता ने पं० जी की शोभा बढ़ा दी।

पं० जी ने लिखा है कि आरम्भ में कलादेवी जी के मुंह से निकला कि स्त्री कमाती नहीं, दान क्या दे ? कोमल हृदय पं० जी ने उन्हें कहा कि वस्तुतः जो मैं कमाता हूँ उसमें अधिकतर

× द्रष्टव्य छान्दोग्य–उपनिषद् प्रपाठक २, खण्ड–२६-प्रवाक १

तो भाग तुम्हारा ही है। देवी घर गृहस्थी की उलझनों को समुचित ढंग से सुलझाकर पति को अर्थोपार्जन में सहयोग देती है। पं० जी ने पत्नी को कहा कि तुम अपना कमाया समझकर दान किया करो। तब से पं० जी ने दान देने का काम श्रीमती कलादेवी जी के आधीन कर दिया। भले ही पं० जी उद्योगपति व सेठ नहीं थे परन्तु, वेद-मर्यादा के अनुसार उदार हृदय से दान करते थे। इसका श्रेय वह अपनी पत्नी जी को ही देते हैं।

आर्य समाज चौक प्रयाग की भूमि १६०५ ई० में क्रय की गई। १६३० ई० तक भवन न बन पाया। पं० जी ने कई धनी सज्जनों को प्रेरित किया, परन्तु किसी ने उत्साह न दिखाया। पं० जी ने १६०५ ई० में कलादेवी के बुढ़ापे के लिये बीमा करवाया था। तब साधन अति स्वल्प थे। १६३१ ई० में बीमा मिला। पं० जी ने कलादेवी जी से कहा, "वृद्धावस्था में कौन जानता है कि ईश्वर कैसी परिस्थिति उत्पन्न कर दे और सर्व सम्पन्न घर में भी शान्तिमय अन्त न हो। तुम्हारे पुत्र योग्य व पितृ भक्त हैं, फिर बीमे का लोभ क्या करना ? समाज के भवन के लिये दान कर दो। धर्म के कार्यों में सदा उत्साह दिखाने वाली देवी ने पति की प्रेरणा स्वीकार कर ली। समाज ने कलादेवी जी के नाम पर हाल बनाना स्वीकार किया। २५ वर्ष तक बड़ी कठिनाई से जो धन जोड़ा था, वह सहर्ष दान करना मान लिया। यह कोई छोटी बात न थी।

ईश्वर की कृपा से उसी वर्ष पं० जी को आस्तिकवाद पर 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' १२०० रु० का मिला। पं० जी ने वह

भी इसी कार्य के लिए दान कर दिया। राशि ३००० रु० बनी इतने से हाल क्या बनता ? समाज को दान इस शर्त पर दिया गया कि इतनी ही राशि समाज एकत्र करे। समाज ने यह शर्त मान ली और तीन सहस्र एकत्र कर लिया। इस प्रकार पं० जी की पवित्र भावना व उदारता से, हमारी पूज्या माताजी की उदारता से एक कार्य जो वर्षों से अटका पड़ा था पूरा हो गया। पं० जी ने 'रिफार्मर' में एक बार किसी प्रसग में लिखा था कि जब प्रयाग में उनका निजी घर बनकर तैयार हो गया तो उनको यह बात अखरने लगी कि मेरा गृह तो तैयार हो गया, परन्तु मेरे समाज का अपना भवन नहीं, बस फिर क्या था ? समृद्ध व साधन सम्पन्न न होते हुये भी इस तपः पूत ने आर्य समाज का मन्दिर बनवाने का जो सङ्कल्प किया वह पूरा करके ही दम लिया।

एक और प्रेरक घटना

जब "कला देवी हाल" का भवन तैयार हो गया और छत्त पड़ना शेष रह गया तो पैसा समाप्त हो गया। अन्तरंग सभा हुई। धन आता कहीं से दीखता नहीं था। उपाध्याय जी के "पुत्र अभी जीवन पथ के नये पथिक थे।" कलादेवी जी के हाथ में सोने के कड़े थे। जब बनवाये गए थे तो ३०० रु० में बने थे। उस समय ५०० रु० के थे। उपाध्याय जी की उपस्थिति में कला देवी जी ने अन्तरंग सभा में सोने के कड़े उतार कर दान कर दिये, "लीजिये इनको बेचकर काम चलाइये।" उपाध्याय जी ने स्वयं लिखा है, "मैं दंग रह गया। मुझसे पूछा भी नहीं था।" भवन

की छत पड़ गई ।

घर आकर कला देवी जी ने पं० जी से कहा, 'मैंने आपसे पूछा भी नहीं। समय भी न था। मुझे कुछ जोश आ गया।" पं० जी ने जो उत्तर दिया वह उन्हीं के व्यक्तित्व का महापुरुष दे सकता था। बोले, ठीक है, तुम्हारे हाथ जितने सोने के कड़े से सुन्दर लगते थे उससे अधिक सुन्दर दान देने से लगेंगे। यह सुनकर हमारी माननीया माताजी मुस्करा गईं।

मानना पड़ेगा कि इस दिशा में यदि पति महान था तो पत्नी उससे भी अधिक महान थी।

एक और घटना

पं० जी को Vedic Culture पुस्तक पर दयानन्द अमृतधारा पुरस्कार प्राप्त हुआ। पं० जी ने सार्वदेशिक सभा में आर्य साहित्यकारों के सम्मान के लिए दयानन्द पुरस्कार निधि स्थापित की। पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा से प्राप्त पारितोषिक की राशि दयानन्द पुरस्कार निधि के लिए दान कर दी गई थी।

एक बार फिर आभूषण दान में दे दिया

आर्य कन्या पाठशाला का उत्सव था। पुरस्कार वितरण का दिन था। माता जी से दान मांगा गया। कड़े तो अब थे नहीं। क्या दें? चुपचाप गले से सोने की माला उतार कर दे दी।

श्री पं० जी ने अपनी जीवन संगिनी की इस धर्मभावना व दान शीलता से आनन्दित हुए। पं० जी ने इसी प्रसंग में लिखा है, "श्रद्धा उत्पन्न करने के कई साधन हैं। दान भी एक साधन है। इसका अनुभव मुझको अपने ही घर में हुआ। ।"

उपाध्याय जी ने अपने अन्तिम श्वास तक अपने शिष्यों, भक्तों व सामाजिक कार्य कर्त्ताओं को जीवन में आगे बढ़ने के लिये यथा सम्भव आर्थिक सहायता भी करते थे। इस ढग से करते थे कि दाएँ हाथ की वात का बाएँ को भी पता न चले।

यह घटना हम अन्यत्र भी दे चुके हैं। वहाँ हमने इस घटना का वर्णन करते हुए प्रा० श्री प्रकाश जी को उद्धृत किया है। पिताजी के मनोभावों का चित्रण उन्होंने किया है। यहाँ उपाध्याय जी के मनोभाव उन्हीं के शब्दों में दिये हैं।

उपाध्याय जी की दिग्विजय

जब उपाध्याय जी के सहपाठी उपन्यास सम्राट 'माधुरी' मासिक के सम्पादक थे तो उपाध्याय जी ने शङ्कर मत के खण्डन में इस पत्रिका में एक लेख माला दी। इस लेख माला का माधुरी के पाठकों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। कुछ पाठकों को इस लेखमाला का प्रकाशन बहुत अखरा। पत्रिका के संचालक व पोषक लोगों के लिये शंकर मत का प्रतिवाद असह्य था। माया वाद का प्रभाव भारत के हिन्दुओं पर गहरा व व्यापक है। महर्षि दयानन्द से पूर्व

रामनुजाचार्य ने भी शङ्कर मत का खण्डन किया । ऋषि के विचार धारा के प्रसार से जन जागरण तो वहुत हुआ, फिर भो शंकर मत का प्रभाव रवीन्द्र कवीन्द्र, राजगोपालाचार्य तथा राधा कृष्णन् जैसे यशस्वी विद्वानों व नेताओं पर भी बहुत अधिक था। हाँ इतना अवश्य है कि इनमें से प्रत्येक का अद्वैतवाद दूसरे से न्यारा था ।

महर्षि के वाद पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय ने माया वाद के प्रतिवाद में जितना साहित्य दिया है उतना किसी अन्य विद्वान ने नहीं दिया । माधुरी में छपी लेखमाला से जव पाठकों में जागृति आई तो सञ्चालकों का स्वप्न भंग हो गया ।

सञ्चालकों ने मुन्शी प्रेम चन्द जी पर दवाव डाला कि यह लेखमाला बन्द होनी चाहिए। वन्द करवाने में आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी का विशेष उद्योग था। आचार्य जी अब तक उपाध्याय जी को वैसा ही उपाध्याय समझते थे, जैसे श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय थे । द्विवेदी जी को अव पता चला कि गगा प्रसाद वैसे उपाध्याय नहीं हैं। यह तो आर्य समाजी हैं और अपने गुण कर्म स्वभाव से ही उपाध्याय हैं। वस फिर क्या था उपाध्याय जी की लेखमाला वन्द कराई गई । इतने से ही उन्हें सन्तोष न हुआ। डा० वासु देव शरण जी अग्रवाल को कह सुनकर उपाध्याय जी के लेखों के प्रभाव के निराकरण के लिये माधुरी में लेखमाला दिलाई गई ।

कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट है कि उपाध्याय जी की लेखनी

अच्छी हलचल मचाई यह घटना १६२६ ई० की है।

भावों की भीषण ज्वाला को सीने में कौन दवा सकता।
अलबेले दृढ़ सङ्कल्पी को रस्ते से कौन हटा सकता॥

इसी लेखमाला को वढ़ाकर उपाध्याय जी ने 'अद्वैतवाद' नाम से एक ग्रंथ तैयार कर दिया। उनके जोवन काल में ही इसके तोन संस्करण निकल गये। हम 'माधुरी' लखनऊ के सञ्चालकों द्वारा पं० जी के लेखों के प्रकाशन को रोकने के इस प्रयास को उपाध्याय जो को दिग्विजय ही कहेंगे।

यदि आर्य समाज स्कूलों कालेजों व संस्थाओं के कुचक्र से निकलकर ऐसे साहित्य के प्रचार प्रसार में शक्ति लगा देता तो देश, जाति व मानवों का वड़ा हित होता परन्तु इतिहास में अगर मगर व यदि के लिए स्थान नहीं होता।

तिमिर गढ़ तोड़ डाला तर्क तोर मार मार।
तार्किक थे, त्रैतवादी, तपस्वी, तोषमान थे॥

(श्री विद्या सागर शास्त्री)

एक युवक का भक्ति भाव

१६५५ ई० की वात होगी। मोगा मण्डी (पंजाब) के एक युवक ने पं० जी की पुस्तक आस्तिकवाद पढ़ी। पुस्तक पढ़कर युवक

मुग्ध हो गया। कालेज का छात्र था और सिख मत के संस्कारों के कारण ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरु की खोज में था। आस्तिकवाद पुस्तक का विषय ही ईश्वर की सत्ता व ईश्वर का स्वरुप हैं। युवक को अनेक शङ्काएं निर्मूल हो गई। आस्तिक्य भाव तो पहिले हो था अब तो यह भाव और गहरा हो गया।

युवक के मन में लेखक के दर्शनों की चाह पैदा हुई। वह प्रयाग जा पहुंचा। गुरुजी को जा मिला। दर्शन करके भाव विभोर हो गया। कुछ धर्म चर्चा चली। पं० जी ने बहुत समझाया कि ईश्वर और मनुष्य के बीच में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं। युवक के मन से पुराना संस्कार न निकल सका। वह तो उपाध्याय जी को गुरु धारण करके पार उतारना चाहता था।

पं० जी के प्रति इतनी श्रद्धा हो गयी कि प्रयाग में सड़कों पर, चौक पर, लोगों को रोककर पूछता "क्या तुमने आस्तिकवाद पढ़ा है ?" पं जी को भी उसकी इस धुन की सूचना मिल जाती। पं० जी को यह बात बहुत अखरती थी कि वह पढ़ाई छोड़ दे। वह चाहते थे कि वह घर जाकर आगे पढ़े। योग्यता बढ़ाकर ही वह कुछ बन सकता है, ऐसा पं० जी का मत था। वह सदा युवकों को ऐसा ही परामर्श दिया करते थे।

वह युवक कई दिन तक पं० जी के पास रहा। उनके सौजन्य से और भी प्रभावित हुआ। पं० जी ने एक दिन उसे यज्ञोपवीत देकर कहा, "अच्छा मैं तुम्हें शिष्य बनाता हूं, अब मेरी आज्ञा

मानो और घर जाकर पढ़ाई जारी रखो। यदि कोई शंका हो तो लेखराम नगर (कादियां) में मेरे शिष्य राजेन्द्र 'जिज्ञासु' से मिलना। ईश्वर भक्त के लिए यह भी आवश्यक हैं कि वह कर्त्तव्यों के पालन में तत्पर रहे।"

पं० जी ने इस युवक की चर्चा रिफ़ार्मर में भी एक लेख में की। लेखक से जब भेंट हुई तो आपने पूछा, क्या वह तुम्हारे पास पहुंचा ?" हमने बताया कि नहीं।"

पं० जी ने उसके प्रयाग निवास का सब वृत्त सुनाया। पं० जी को उससे सहानुभूति थी। उन्हें आशंका थी कि कहीं 'गुरु' 'गुरु' की रट में यह गुरुडम के गर्त में न गिर जावे। भावुकता के कारण उसकी पढ़ाई न छूट जावे। लगता है कि ऐसा ही हुआ। पं० जी के हृदय की कोमल भावना को इससे टीस लगी।

—❦—

पं० बुद्धदेव जी की भावुकता से चिन्तित

श्री पं० बुद्ध देव विद्यालङ्कार के पाण्डित्य व सूझबूझ से सब प्रभावित थे। परन्तु उनकी भावुकता व संकल्प शक्ति के शैथल्य से उनके अनन्य भक्त भी दुखी रहते थे। पं० जी ने लेखराम नगर (कादियां) में हमारे ताया जी के गृह पर अपने कृषि विद्यालय की योजना रख दी और हमें मुख्याध्यापक बनाने की बात कही। उ० प्र० सरकार से बहुत अनुदान मिलने की आशा

थी। तब हमने यह बात टाल दी।

दयानन्द वाटिका में उपाध्याय जी के सामने पं० जी ने पुनः यह प्रस्ताव रख दिया। हमने कहा, "सोचेंगे।" उपाध्याय जी तो भली भाँति जानते थे कि पं० जी की योजनाएँ कम ही सिर चढ़ती हैं। हम भी पं० जी को हँसी में कहा करते थे कि आप 'शतपथ' के विद्वान हैं। 'एक पथ' के होते तो अधिक बढ़िया होता।

उपाध्याय जी ने पं० जी के सामने तो हमें कुछ न कहा और न उन्हें रोका टोका, परन्तु बाद में ला० सन्तलाल जी विद्यार्थी द्वारा सन्देश भेजा कि "यह भूल न करना। तुम अपनी योग्यता बढ़ाओ और समाज की ठोस सेवा करो। कृषि विद्यालय के झमेले में मत पड़ना।"

पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय का युवकों के नाम सदा यही सन्देश था और वह सबको यही परामर्श दिया करते थे कि योग्यता बढ़ाओ और चरित्रवान बनो।

सम्पादक का अधिकार

श्री उमेश चन्द्र जी स्नातक पूर्व सम्पादक 'आर्य मित्र' साप्ताहिक ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि "उपाध्याय जी नेता और अधिकारी होते हुए भी इतने विनम्र थे कि सम्पादक को अपने लेख में आवश्यक सुधार के लिए लिख देते थे।"

यह कोई साधारण सी बात नहीं है। वह जहां एक स्वाभिमानी लेखक थे, वहाँ मर्यादाओं की सीमा में रहना उनका सहज स्वभाव था।

—◇—

उनका बड़प्पन

उनका साधु स्वभाव उपाध्याय जी जब सार्वदेशिक सभा के मन्त्री के रूप में दक्षिण भारत की प्रचार यात्रा पर गये तो एक सप्ताह के लगभग पं० मदन मोहन विद्या सागर के गृह में ठहरे। पं० मदन मोहन जी ने इतने पूज्य विद्वान के आगमन को अपने सौभाग्य का सूचक जाना। ऐसी विभूति का आतिथ्य किसी भी गृहस्थी के लिए बड़े गर्व की बात है।

पं० मदन मोहन जी ने बताया कि हमने एक दिन भी ऐसा अनुभव नहीं किया कि कोई बड़ा नेता हमारे घर पर ठहरा हुआ है। हमें यही लगता था कि हमारे पिताजी पधारे हैं। पं० जी ने कभी भी तो ऐसा संकेत नहीं दिया कि उन्हें खाने पीने के लिए किसी वस्तु की विशेष रुचि है। वह बड़ी आत्मीयता से परिवार के अभिन्न अंग की भाँति चौके में बैठ जाते और जो कुछ हम खिलाते बड़े प्रसन्न चित्त से स्वीकार करते।

पं० मदन मोहन जी ने हमें बताया कि "मैं किन शब्दों में उपाध्याय जी के बड़प्पन, साधु स्वभाव व सौजन्य का वर्णन करूँ वह मेरी समझ में नहीं आ रहा। वह बड़े सूझबूझ वाले थे।

उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। उनका चिन्तन बड़ा गहन था। परन्तु इससे भी बड़ी बात जिसने मुझे प्रभावित किया वह यह थी कि उनका व्यवहार आर्योचित था। वह निष्कपट, सरल, मृदुल एवं उदार वृत्ति के महामानव थे। ईश्वर पर उनका अटल विश्वास था।"

बिस्कुट प्रेमी पिता–उपाध्याय जी

पं० जी को सामाजिक कार्यों के लिये वाहर जाना आना तो पड़ता ही था। जब कभी वह वाहर जाते बच्चों के लिए जे० बी० मंघाराम कम्पनी के बिस्कुट के बहुत से पैकट क्रय कर लाते। प्राध्यापक श्री प्रकाश लिखते हैं कि हम बड़े उतावलेपन से पिताजी की (बिस्कुटों के आने की) प्रतीक्षा किया करते थे। पं० जी मिठाई के स्थान पर बिस्कुट ही लिया करते थे। उन दिनों बिस्कुट का यह पैकेट छः आने में आता था।

जब पं० जी दक्षिण अफ्रीका की यात्रा पर गये तब वहाँ से भी अपने सब बच्चों के लिए एक बड़ी मात्रा मे बिस्कुट ही लाये थे।

—◇—

उपाध्याय जी कितने पूजनीय थे ?

१९५० ई० में प्रा० श्री प्रकाश जी कानपुर डी० ए० वी

कालेज में प्रवक्ता पद पर नियुक्त होकर आए। तब वह केवल २५ वर्ष के थे। कालेज के प्राचार्य कक्ष में प्रविष्ट होकर तत्कालीन प्राचार्य श्री. कालका प्रसाद भटनागर को अपना परिचय दिया। भटनागर जी ने अपने साथ के कमरे में बैठे हुए श्री पं० विद्याधर जी कार्यालयाध्यक्ष को आवाज लगाई कि श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय का पुत्र आ गया है। उपाध्याय जी का नाम सुनते ही पं० विद्याधर भागे-भागे आये और श्री प्रकाश से स्नेह के वशीभूत लिपट गये। श्री प्रकाश लिखते हैं कि मुझे "स्पष्ट याद है कि उपाध्याय जी के २५ वर्षीय पुत्र का न जाने कितने व्यक्तियों से परिचय कराया गया।"

श्री प्रकाश जी आगे चलकर लिखते है कि, "दूसरे सप्ताह जब मैं मैस्टन रोड आर्य समाज में लाला दीवान चन्द्र से मिला, उन्होंने तो यह अनुभव किया कि उनके परिवार का एक व्यक्ति कानपुर में आ गया है।"

आर्य जगत् में उपाध्याय जी की लोक प्रियता को मापना बड़ा कठिन है। वह विद्वानों में भी पूजे जाते थे, नेताओं में भी उनका सम्मान था और आर्य जन तो उनके चरणों में नयनों का फ़र्श बिछाते थे।

उनकी तपश्चर्या—जीवन स्तर

पूज्य उपाध्याय जी कोई धनी मानी पुरुष तो न थे फिर भी

आर्थिक स्थिति अच्छी थी। साहित्य सृजन से भी कुछ कमाया, परन्तु उन्होंने अपना रहन सहन सीधा सादा ही रखा। वह सुविधाओं के लिए चिन्तित नहीं होते थे। आर्य समाज के प्रतिष्ठित नेता व विख्यात साहित्यकार बनकर भी सामान्य इक्के पर ही चलते, रेल यात्रा तृतीय श्रेणी में ही करते। वेषभूषा के आडम्बर में तो पड़े ही नहीं। जब ३० रूपये में टेबल फेन और ५० रू० में छत्त का पंखा आ जाता था, तब भी उनके घर पर पंखा नहीं होता था। श्री प्रकाश लिखते हैं कि १९३५ ई० में, या १९३६ ई० में हमारे बड़े भ्राता (सत्य प्रकाश जी) कलकत्ता से पंखा लाए थे। यह उनके घर में पंखे का प्रथम प्रवेश था। उन्हें बिजली के पंखे का प्रयोग करते तब भी नहीं देखा गया। जब गर्मी लगती, अपने पास पड़े हुए हाथ का पंखा अपने हाथ से झल लिया करते थे।

—×—
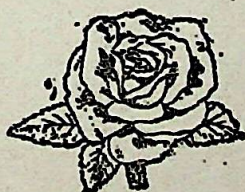
पंचम-खण्ड

"पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय एम० ए० आर्य समाज के उन थोड़े से विद्वानों में से हैं, जिन्होंने हिन्दी और अंग्रेज़ी में बहुत ऊँचे दर्जे का- और उपयोगी धार्मिक साहित्य उत्पन्न किया है। आप कई वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान रहने के पश्चात् सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री भी रहे। आपके व्याख्यानों में गम्भीरता के साथ सरलता का मिश्रण रहता है। 'आस्तिकवाद' नाम के ग्रन्थ पर आपको मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ।" ※

श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

※ द्रष्टव्य आर्य समाज का इतिहास द्वितीय भाग लेखक पं० इन्द्र जी पृष्ठ २१०।

सन्तति के प्रति

साहित्यकार के कृतज्ञ हृदय के उद्‌गार

"It sounds odd to thank my own children for the help they have given me through filial devotion. But there is another way. I am thankful to God for having blessed me with children who are ever ready to make my cause their own."

"There is hardly any book worth the name, which I have written in these thirty years and in which my eldest son Dr. Satya Prakesh, D. Sc, of the Allahabad University has not rendered a substantial aid."

(Philosophy of Dayanand)

मेरी सन्तान ने पितृ श्रद्धा से मुझे जो सहयोग दिया है, उसके लिये मैं अपने बच्चों को धन्यवाद दूँ तो यह कुछ अटपटा सा लगता है परन्तु एक और ढंग है। मैं ईश्वर का आभारी हूं जिसने मुझे ऐसी सन्तान दी है, जो सदा मेरे कार्य को अपना कार्य समझती है।

गत तीस वर्षों में मैंने कोई भी ऐसी महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय पुस्तक नहीं लिखी, जिसमें मेरे ज्येष्ठ पुत्र डा० सत्य प्रकाश डी० एस-सी० प्रयाग विश्व विद्यालय, की ठोस सहायता मुझे न मिली हो।

आरम्भिक काल की लेखन शैली

पादरी टी० विलसन की पुस्तक का उत्तर देते हुए एक लेख में आपने लिखा था :-

"सफ़ह १८ सतर ५ में तो पादरी साहेब ने अपनी ल्याकत का ही ख़ातमा कर दिया। जहाँ लिखा है कि 'निराकार बमाने बेकार'।

संस्कृत लफ़ज़ आकार को उर्दू लफ़ज़ कार से मिलाकर निराकार बमाने ग़ैर मुजस्म को बेकार बमाने फ़ज़ूल कहना-न जाने कौन सी अकल है। सफ़ह २७ सतर १७ में आपकी ल्याक़त

का इजहार इस तरह होता है :–

'मुक्ति या नजात ईश्वर को कहना मायूब है।'

आप वेदों पर इतराज़ करने चल दिए और मुक्ति ओर मुक्त का फ़र्क नहीं जानते। जनाब मुक्ति नजात को कहते हैं और मुक्त आज़ाद के माने में मुस्तमिल होता है। इसलिए ईश्वर को मुक्त कहते हैं, न कि मुक्ति। आपकी अक़्ले स्लीम को चाहिए कि हमेशा इस किस्म के इल्फ़ाज़ का ख्याल रखे।"×

यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के तीसरे मन्त्र पर 'आत्म घात' शीर्षक से लिखे एक लम्बे लेख के अन्त में लिखा है :–"यह शरीर इन्सान (दुष्ट मनुष्य) झूठ बोलने और उसको छुपाने की कितनी मशक करता है। एक बात को अनवाओ अकसाम (भाँति भांति) के हीलों से छुपाता है। फिर भी परमात्मा की कुदरत कि दिन में अकसर बार सच्च मुँह से निकल ही जाता है। दीगर बुराईयों के लिए हम अपने दिल में किस कोशिश के साथ घर बनाते हैं। लोगों को धोका देने के लिए क्या-क्या सामान नहीं किए जाते ? यह सब क्या हैं ? रूहानी ज़हर जिसको खाते हो रूहानी मौत शुरू हो जाती है। इन ज़हरों को कौन खिलाता है ? हम ख़ुद आप इनको खाने की कोशिश करते हैं। इसलिये यही आत्मघात है और यही ख़ुदकशी है। अगर हम इस ख़ुदकशी

×द्रष्टव्य 'आर्य मुसाफिर' मासिक दिसम्बर १६०६ पृ० २२६

की आदत से वचें तो ज़िन्दगी का मक़सद हल हो जाता है और हमारी सारी तकलीफ़ काफ़ूर हो जाती हैं। दरअसल हमसे बड़ा हमारा दुश्मन कोई नही है।"❋

यहाँ कोष्ठों में अर्थ हमने दिये हैं। लेखक नाम अन्त में गंगाप्रसाद वर्मा छपा है।

पादरी टी० विलसन जो की पुस्तक के उत्तर में लिखी लेखमाला से एक और उद्धरण यहाँ देते हैं :—"यही हाल इञ्जीली खुदा का है कि गुनाहगार के बदले बेगुनाह को ढूढता है। हमारी पादरी साहेब के लिए दोस्ताना सलाह है कि वह ऐसे बे असूले बादशाह की बादशाहत में रहना छोड़ दें वरना मुन्सफ़ और रहीम ख़ुदा का काम है कि सारी मख़लूक को एक ज़राए नजात मुहया करे। मगर इञ्जीली खुदा का अबज अंधेर है कि पादरी साहेब के लिए तो ज़रीया नजात ईसा मुकर्रर किया और ईसा से पहले गुज़रे हुए लोग बिला कसूर नजात से महरूम रहे। खुदा का काम आग़ाज़े पैदायशे जहाँ से इतने दिनों तक किस मुल्क की हवा खाता रहा कि उसने नजात के ज़रीया ईसा को पैदा न किया। ईसा का बेगुनाह होना एक ऐसा अमर है जिसको हम नहीं मानते इसकी इखलाके ईस्वी में की जावेगी।"◇

लेखमाला की इस मणि के अन्त में नाम छपा है गंगाप्रसाद अज़ बिजनौर।

❋ द्रष्टव्य वही अगस्त १९०८ पृ० ३२

◇ द्रष्टव्य 'आर्य मुसाफिर' मासिक मार्च १९०७ ई० पृ० ४५८

अब १६०५ ई० में छपे एक लेख का उद्धरण यहां पढ़िए। 'मज़हब और सायंस लेखमाला को मणि में लिखा है:—"इत्काक़ात की बुनयाद काहली और सुस्ती पर है। साँइसें लोगों ने खून जिगर पी-२ कर दरयाफ़त की हैं। मज़हब लोगों ने मनमानी बातों से घड़े हैं। साइन्सों में अक़्ल को दख़ल है और मज़हब में अक़्ल को दख़ल नहीं। बाईबल में इल्म तकलीफ़ का बायस बतलाया गया है। नहीं नहीं दीने ईस्वी की बुनयाद ही ला इल्मी पर रखी गई है लहज़ा अगर हम कहें कि दीने ईस्वी साइन्स के खिलाफ़ हैं तो इसमें कुछ झूट नहीं। इसी तरह दीगर मज़ाहब के लिये भी हम यही कह सकते हैं। कुरान शरीफ़ के नाज़रीन को यह बात महसूस हो चुकी होगी और जो शख़स ज़िद्द भी करते होंगे वह तअसुब है उसकी निस्बत तो बग़ैर मुबालग़ा के यह कहा जा सकता है कि कुरानी ख्यालात दलायल से कोसों दूर हैं। अगर हम मुसन्फ़ कुरान मुहमद साहेब की जिन्दगी पर नजर डालें तो साफ मालूम हो जाता है कि हज़रत को इन बातों में से एक का भी तजरबा हासिल नहीं हुआ जो आलमों और मुहक़्क़ों को होना चाहिये। मुसन्फ़ कुरान फरमाता है कि जिस वक्त सूरज लपेटा जावे और जिस वक्त कि तारे गदले हो जावें, जिस वक्त कि आसमान की खाल उतारी जावे .....।"❀

इस पर लेखक का नाम महाशय गंगा प्रसाद जी बिजनौर छपा है।

❀ द्रष्टव्य 'आर्य मुसाफिर' फरवरी १६०५ ई० पृ० ५०-५१

एक पुत्र की दृष्टि में साहित्यकार उपाध्याय जी

उपाध्याय जी साहित्य में रूचि रखने वाले प्रायः सभी पाठक जानते हैं कि उपाध्याय जी की सन्तान में भी साहित्यिक प्रतिभा है। पं० जी के तृतीय सुपुत्र प्रो० श्री प्रकाश जी भी एक सुदक्ष लेखक है। हमारी विनती पर पं० जी के सम्बन्धी संस्मरणों में वह लिखते हैं:—

"पुत्र के लिये पिता के विषय में लिखना अत्यन्त ही कठिन है। विशेष रूप से जब कि लेखक न केवल पुत्र ही हो वरन् अपने पिता का भक्त भी हो इसलिये लिखना और भी कठिन है, क्योंकि वह अपने पिता से आद्योपान्त परिचित ही है। पिता के विषय में पुत्र क्या लिखें, क्या न लिखे ? वह न केवल उनके गुणों से ही परिचित है वरन् उनकी कमज़ोरियों से भी पूर्णता विज्ञ है। वह अपने पिता के विषय में इतना अधिक जानता है-यदि सब कुछ लिखना चाहे तो भी लिख नहीं सकता। पिता के विषय में कुछ भी लिखना उसके लिए एक अत्यन्त ही कठिन कार्य है। कहाँ से प्रारम्भ किया जाये और क्या क्या छोड़ा जाये ? पिताजी के जीवन पर राजेन्द्र जी एक वृहद जीवन चरित लिखना चाहते हैं। उन्होंने उनके जीवन की मुख्य मुख्य घटनायें तो वर्णित की ही होंगी। उनको दोहराना व्यर्थ ही है और उनको दोहराने की उनकी अपेक्षा भी नहीं है। मुझसे यह अपेक्षा भी नहीं है कि मैं उन बातों को पुनः लिखूँ। सम्भवतः मुझसे यही अपेक्षा की जा रही है कि मैं उन घटनाओं की चर्चा करूँ जो कि मेरे अनुभव की, निजी अनुभव की विशेष बातें हैं। पिताजी महान थे, वास्तव में महान

थे। इसके आभास मुझे प्रतिक्षण होता रहा है। जब मैं छोटा था प्रातः से सायं तक कुछ न कुछ पढ़ते और कुछ न कुछ लिखते देखता था। तब भी और बड़े होने पर भी मैंने उन सभी प्रकाशनों पर दृष्टिपात किया जो कि उन्होंने लेखक के रूप में जिनकी रचना की थी। एक साधारण सा बालक जिसके लिए कुछ पृष्ठों का एक लेख भी लिख डालना सम्भव न हो, वह जब यह देखे कि उसके पिता ने पुस्तकों पर पुस्तकें लिखी हों और जिनकी पृष्ठ संख्या सैकड़ों में भी नहीं, हज़ारों में भी नहीं और लाखों की संख्या तक पहुँचे, वह संख्या क्या उसके छोटे से मानस पर एक अद्वितीय प्रभाव न डालेगी ? पिताजी ने काफ़ी बड़ी आयु में लिखना आरम्भ किया पर इतना अधिक लिख डाला, इतने अधिक पृष्ठ रच डाले, वे भी साधारण गप्प नहीं, केवल कल्पना मात्र से तो उच्च साहित्य नहीं लिखा जाता, ठोस साहित्य के लिए ठोस मसाला भी होना चाहिए। पिताजी का जन्म तो हुआ था एक अत्यन्त ही साधारण परिवार में उस काल में उन्होंने प्रारम्भ तो किया उर्दू की शिक्षा से, धीरे-धीरे हिन्दी सीखी और अंग्रेजी भी पर अभ्यास एवं कड़ी मेहनत के बाद हिन्दी अंग्रेजी व उर्दू पर इतना जबरदस्त अधिकार हो गया कि इन तीनों भाषाओं में उन्होंने मोटी-मोटी पुस्तकें लिख डालीं। वे न केवल हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी के जाने माने लेखक थे वरन् इन भाषाओं के द्वारा अपने विचार भी व्यक्त कर सकते थे। मुझे याद है आर्य समाज की बडी-बड़ी मीटिंगों में वे उस समय भी घण्टों बोल लेते थे जबकि लाउडस्पीकर साधारणतया वक्ताओं को उपलब्ध नहीं होता था। दस-दस हजार की भीड़ में बिना लाउडस्पीकर के ८०-८० मिनट तक Pin Drop silence (पूर्णतया शान्त

वातावरण) में भाषण देना उनके लिए साधारण बात थी और भाषण भी ऐसा जिसका विषय बौद्धिक हो। जीवन दर्शन की किसी कठिन गुत्थी को बोलचाल की भाषा में सुलझा देना उनके लिए अति साधारण सी बात थी। आर्यसमाज के उत्सवों पर बराबर जाना प्रातः प्रवचन करना और सायं भी जनता उनसे यही अपेक्षा करती थी कि वे जब भी बोले किसी नये विषय को लें। मेरी समझ में नहीं आता कि उन्होंने कितने विषयों पर अपने भाषण तैयार किये होंगे। आज अध्यापक का जामा पहनने के बाद भी मेरे लिये एक दो भाषण से अधिक प्रस्तुत करना कठिन है। मैंने पिताजी को कभी असफल होते नहीं देखा और यही हाल थी उनकी लेखनी प्रतिभा का भी। पिताजी ने जहाँ गूढ़ विषयों पर मोटी-मोटी पुस्तकें लिखी हैं वहाँ साधारण पत्रों के लिये भी विचारणीय लेख लिखे हैं। हिन्दी और उर्दू की प्रमुख पत्रिकाओं में वे बहुधा लिखते थे। सम्पादक का पत्र मिलते ही उन्होंने कागज हाथ में उठाया और कलम चलाना शुरु कर दिया और कुछ मिनटों मे उनका लेख तैयार हो गया। उनके पास डाक टिकट हर समय रहते थे। लेख को तुरन्त डिसपैच कर देना उनके लिए अति साधारण कार्य था। उनका विषय भी प्रासंगिक रहता था और मैटर भी सदा ठोस होता। मैंने बहुधा उन्हें खड़े-खड़े लेखों को लिखते हुए देखा है। उन्हें किसी बाह्य आडम्बर की आवश्यकता नहीं थी। मेज, कुर्सी पर बैठकर लिखते उन्हें बहुत कम देखा। अपनी खाट पर ही बैठे-बैठे उन्होंने न जाने कितना साहित्य रचा।"

साहित्य प्रकाशन व साहित्य सृजन में सन्तान का योगदान

एक प्रतिष्ठित नेता ने पं० जी के जीवन काल में उनके परिवार के लिए फ़ारसी की निम्न उक्ति प्रयुक्त की थी:—

'ईं ख़ाना हमां आफ़ताब अस्त'

अर्थात् इस कुटम्ब में सभी सूर्य हैं। पं० जी बड़े भाग्यशाली थे कि उनके साहित्यिक कार्य में उनके पुत्र, पुत्रवधुयें व पौत्र भी सहयोगी बने। Philosophy of Dayanand की भूमिका में पं० जी ने स्वयं भाव विभोर होकर इस तथ्य का प्रकाश किया है। साहित्य के इतिहास में रूचि रखने वाले प्रबुद्ध पाठकों के लिए पं० जी के जीवन के इस पहलू पर कुछ अधिक प्रकाश डालना आवश्यक है।

पाठक अन्यत्र पढ़ चुके हैं कि अपने ज्येष्ठ पुत्र सत्य प्रकाश के जन्म से पूर्व ही उपाध्याय जी ने लिखना आरम्भ कर दिया। बाराबंकी में तो लिखने का कार्य द्रुतगति से होने लगा। तब तक वह आर्य जगत में बहुत विख्यात हो चुके थे। उपाध्याय जी ने एक उर्दू लेख में एक घटना दी थी। ऐसा लगता है कि बाराबंकी में ही घटी होगी। सत्य प्रकाश जो बहुत छोटे थे। पतंग उड़ाने की धुन लगी रहती थी। अपनी दादी से बालक सत्य प्रकाश ने अपने पिता की शिकायत लगाई। "दादी जी देखो पिताजी सारी गोंद लिफाफों में लगाकर नष्ट कर देते हैं। मेरी पतंग के लिये तो गोंद बचती ही नहीं। आप उन्हें रोकती क्यों नहीं।"

बालक को तब क्या पता था कि भविष्य में मुझे भी पिताजी के पथ का पथिक बनना है। गोंद, लिफाफों और कागजों की मेरे हाथों से भी ऐसी खपत होगी। 'हिन्दी भाषा व्याकरण' और 'बाल निबन्ध माला' इण्डियन प्रेस से प्रकाशित हो चुकी थीं। इसी प्रेस के लिये पं० जी बड़ी तेजी से 'हिन्दी शेक्सपियर' लिखते जाते थे। सत्य प्रकाश उनको लिखते हुये देख कर आनन्दित होते थे। यह पुस्तक ५-६ भागों में छपी थी। उपाध्याय जी की रोचक शैली का दर्शन शेक्सपियर की कहानियों में होता है।

बाराबंकी से ही तीन अंग्रेजी ट्रैक्ट 'कला एण्ड सन्ज़' नाम से छपवाये। एक ट्रैक्ट Deities की एक दुर्लभ प्रति हमारे पुस्तकालय में है और एक प्रति आर्य समाज कटरा प्रयाग में भी है। Eternal Religion Part I और Part II को एक भी प्रति अब प्राप्त नहीं है।

हम बता चुके हैं कि अंग्रेजी ढंग पर हिंदी व्याकरण लिखने का प्रथम प्रयोग करने वाले उपाध्याय जी ही थे। उनकी व्याकरण की पुस्तक की एक दुर्लभ प्रति (उन्ही के द्वारा भेंट में प्राप्त) हमारे पास है। इन्हीं दिनों प० जी ने Inductive Grammar नाम से अंग्रेज़ी की व्याकरण पुस्तकें लिखीं। ये कई कक्षाओं के लिये थीं और अच्छी लोकप्रिय हुईं। शिक्षा विभाग से कुछ पाठ्य पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ आमान्त्रित थीं। पं० जी को कई पुरस्कार मिले। कुल मिलाकर ७५०-०० सात सौ पचास रूपये प्राप्त हुये। उस युग में यह बहुत बड़ी राशि थी।

उपाध्याय जी ने अंग्रेज़ी राज्य की प्रशंसा में भी तब एक पुस्तक लिखी थी। प्रयाग आकर पं० जी ने इसको विक्री व प्रकाशन वन्द करा दिया।

प्रयाग के Education Gazzette में भी पं० जी के यात्राओं के सम्बन्ध में कतिपय लेख प्रकाशित हुये। सम्भवतः इन पर कुछ पारितोषिक भी मिला था।

वारावंकी के विज्ञान के अध्यापक जयन्ती प्रसाद को हिंदी उर्दू नहीं आती थी। शिक्षा को हिंदी में विज्ञान की पुस्तकें चाहिए थीं। श्री जयन्ती प्रसाद ने अंग्रेज़ी में पुस्तकें लिखीं। पं० गंगा प्रसाद ने उनका हिंदी उर्दू में अनुवाद किया। इसके लिए उन्होंने घोर परिश्रम किया। आगे चलकर श्री डा० सत्य प्रकाश जी ने उपाध्याय जी के पुस्तकालय से इन हिंदी वैज्ञानिक पुस्तकों का भी प्रयोग किया।

जब सत्य प्रकाश और विश्व प्रकाश कुछ वड़े हुए तो दोनों भाईयों ने पं० जी की सब पुस्तकों के समस्त प्रूफ देखे। इससे दोनों भाईयों को बड़ा लाभ हुआ।

डा० सत्य प्रकाश जी ने १९३८ ई० में और पं० जी ने १९५५ ई० में दयानन्द दर्शन पर दो अलग-२ पुस्तकें छपवाईं। सत्य प्रकाश जी की पुस्तक पं० जी ने छपने पर हो देखी, परन्तु पिता की सम्भवतः कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं (उर्दू साहित्य को छोड़कर) जो पुत्र ने छपने से पूर्व न देखी हो। Philosophy of

Dayanand का इण्डेक्स भी सत्य प्रकाश जी ने ही तैयार किया। 'आस्तिकवाद' १६२६ ई० में छपा। तब सत्य प्रकाश एम० एस-सी० प्रथम वर्ष में पढ़ते थे। इसके प्रूफ भी आपने पढ़े। इस पुस्तक के प्रूफ पढ़ने में इन्हें बड़ा आनन्द आया।

'अंग्रेज़ जाति का इतिहास' ज्ञान मण्डल काशी ने छापा। इसके प्रूफ भी सत्य प्रकाश जी व विश्व प्रकाश जी ने ही पढ़े। 'ऐतरेय ब्राह्मण' का हिंदी अनुवाद साहित्य सम्मेलन ने प्रकाशित किया। इसके कई परिशिष्ट सत्य प्रकाश जी ने तैयार किए।

'क्षेप रहित मनुस्मृति' का प्रकाशन कला प्रेस से हुआ था। इसमें पाठ-भेद सम्बन्धी समस्त पाद टिप्पणियाँ एक अंग्रेज़ी संस्करण के आधार पर दी गईं। यह कठिन कार्य भी डा० सत्य प्रकाश जी ने ही किया।

पं० जी के शत पथ ब्राह्मण के तीन भागों की भूमिका ७२७ पृष्ठों की बनती है। यह भूमिका भी डा० सत्य प्रकाश जी ने ही लिखी है।

अपने ज्येष्ठ पुत्र की प्रेरणा से पं० जी ने 'सर्व-दर्शन सिद्धांत संग्रह' का हिंदी में अनुवाद किया। डा० सत्य प्रकाश जी ने इसे 'विज्ञान' पत्रिका में प्रकाशित करवाया। पुस्तक रूप में यह कला प्रेस से छपी है।

पं० जी ने 'महाभारत और उसके पश्चात्' शीर्षक से 'आर्य

मित्र' में दी। इस लेख माला की बड़ी प्रशंसा हुई। हमने शोलापुर से प्रबल अनुरोध किया कि इसे पुस्तक रूप में छापा जावे। श्री डा० सत्य प्रकाश जी ने ही इसको नया नाम दिया। भारतीय उत्थान और पतन की कहानी' नाम से यह कला प्रेस से छपी है।

विश्व प्रकाश जी ने 'Reason And Religion' का 'धर्म तर्क की कसौटी पर' और 'Worship' का "पूजा क्यों ? और कैसे ?" नाम से अनुवाद करके कला प्रेस से इनका प्रकाशन किया। 'गंगा ज्ञान धारा' के नाम से पं० जी के लेखों व भाषणों का एक उत्तम सग्रह छपा है। इसका संकलन विश्व प्रकाश जी ने ही किया।

पं० जी का अधिकतर साहित्य कला प्रेस से ही प्रकाशित हुआ। पं० जी के द्वितीय पुत्र श्री विश्व प्रकाश जी ही इस प्रेस के सचालक थे अतः विश्व प्रकाश जी ने पूज्य पिता के सद्ग्रन्थों का प्रकाशन करके बहुत यश और पुण्य कमाया। धार्मिक साहित्य के प्रकाशन से धन तो क्या कमाना था ?

पं० जी के सहयोगियों, भक्तों व पाठकों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत था। देश विदेश से पत्र आते थे। पं० जी सबको उत्तर देने का प्रयत्न करते थे। इस कार्य में भी उनके परिवार के लोग पूरा-पूरा सहयोग देते थे। डा० विमलेश जी व विजय जी (श्री विश्व प्रकाश के पुत्र) को वह पत्र लिखवा देते थे और नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिया करते थे। अन्तिम दिनों उनके शिष्य राधेश्याम जी भी पत्र व्यवहार में सहयोग करते रहे।

जब सन्तान के सहयोग की चर्चा छिड़ ही गई तो एक पक्ष और भी पाठकों के सामने रख देते हैं। डा० सत्य प्रकाश जी ने पूज्य पिताजी के जीवन काल में भी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं परन्तु प्रकाशन से पूर्व पुत्र ने पिता को कोई पाण्डुलिपि नहीं दिखाई। पिता ने भी कभी ऐसा आग्रह नहीं किया और न ही इस विषय में कभी कुछ उत्सुकता दिखाई। इसे आप पुत्र का स्वाभिमान कहिए किंवा संकोच परन्तु है यह एक आश्चर्य-जनक तथ्य कि बेटा तो प्रकाशन से पूर्व ही पिता की प्रत्येक कृति को पढ़ता रहा और पुत्र को इस बात का ज्ञान है और इस पर गौरव भी करता है कि मेरे पिताजी एक यशस्वी विद्वान, विचारक व लेखक हैं, तथापि पुत्र ने अपनी किसी भी पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व पिताजी को सामग्री नहीं दिखाई। इसमें तो सबका मतैक्य है कि पं० गंगाप्रसाद जी के पुत्रों को साहित्य का अनुराग तो पिता से ही प्रसाद रूप में प्राप्त हुआ है।

पं जी के साहित्य की लोक प्रियता

आज उपाध्याय जी के साहित्य का लेखा जोखा करना अति कठिन है। हम लोगों की असावधानी व प्रमाद से उनके बहुत पुराने ट्रैक्ट तो लुप्त हुए ही हैं, १९२३ ई० के पश्चात् के भी ट्रैक्ट उपलब्ध नहीं हो सकते। आगे के पृष्ठों में उनके साहित्य का विवरण दिया जा रहा है। उनके साहित्य की लोकप्रियता का अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है। १९२९ ई० में जब 'Ayra Samaj Introduced' ट्रैक्ट का प्रकाशन किया गया

तब तक पं०जी के हिन्दी, उर्दू ट्रैक्ट दस लाख की संख्या में छप चुके थे। केवल छः वर्षों में चौक आर्य समाज द्वारा प्रकाशित इन लघु पुस्तकों का इतना व्यापक प्रचार श्री पं० गंगाप्रसाद जी की लेखनी की असाधारण लोकप्रियता के कारण ही हो पाया। आर्य समाज में तो इसका दूसरा कोई उदाहरण है ही नहीं। लगातार इतनी लघु पुस्तकों का प्रकाशन करना अपने आपमें एक इतिहास है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने मास्टर आत्माराम जी व श्री वजीरचन्द जी आदि उत्साही विद्वानों के उद्योग से आज से ७५ वर्ष पूर्व अपने 'सोगा आर्य पुस्तक प्रचार' द्वारा कई अच्छी २ लघु पुस्तकें प्रकाशित करके प्रशंसनीय कार्य किया था। पं० चमूपति जी व श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ (बाद में सरस्वती लिखा करते थे) की लेखनी का इस सभा ने अच्छा लाभ उठाया परन्तु जितने ट्रैक्ट चौक समाज ने छापे हैं इतने ट्रैक्ट, इतने स्वल्प काल में किसी प्रान्तीय संगठन ने तो क्या सार्वदेशिक सभा ने भी कभी नहीं छापे।

उपाध्याय जी से पूर्व स्वामी दर्शनानन्द जी का भी एक कीर्तिमान है परन्तु उनके ट्रैक्ट इतनी संख्या में किसी एक संस्था ने नहीं छापे। भिन्न भिन्न स्थानों से, भिन्न भिन्न संस्थाओं और भक्त प्रवर श्री पं० वजीर चन्द जी शर्मा हुतात्मा ने उस मस्त फकीर के साहित्य का प्रकाशन किया।

१९५४ ई० तक उपाध्याय जी द्वारा लिखित व चौक समाज द्वारा प्रकाशित लघु पुस्तकें ५० लाख से भी अधिक की संख्या में छप चुके थे।

प्रयाग से ही प्रकाशित पं० जी की एक पुस्तक के आरम्भ में उनके जीवन परिचय में यह छपा है कि उन्होंने एक सौ ट्रैक्ट लिखे। यह जानकारी ठीक नहीं है। प्रयाग से तीन मालाएं निकली थीं। प्रथम हिंदी, द्वितीय उर्दू और तृतीय अंग्रेजी में। हिंदी में छपी लघु पुस्तकों के पृष्ठों व आकार की दृष्टि से दो भेद थे। १९५४ ई० में उनके १६ पृष्ठों के ट्रैक्टों की पृष्ठ संख्या का कुल जोड़ ६७×१६=१०७२ बताया गया। आठ पृष्ठ वाले ट्रैक्टों की कुल पृष्ठ संख्या २३×८=१८४ बताई गई। १६ पृष्ठों के अंग्रेज़ी ट्रैक्टों की पृष्ठ संख्या का योग १५×१६=२४० दिया गया था।

इसमें कला प्रेस द्वारा प्रकाशित विश्व प्रचार सीरीज के अंग्रेज़ी ट्रैक्टों की संख्या व इन ट्रैक्टों की पृष्ठ संख्या का योग नहीं जोड़ा गया। उर्दू लघु पुस्तकें भी चौक समाज व वैदिक प्रकाशन मन्दिर ने छापीं। वैदिक प्रकाशन मन्दिर तो १९५४ ई० के बाद स्थापित हुआ।

उपाध्याय जी के जीवन काल में उनके ट्रैक्टों की संख्या में प्रयाग से ही अशुद्ध विवरण दिया गया, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

१९२९ ई० में हिंदी व उर्दू की लघु पुस्तकों की संख्या ७० थी। ❋ पाँच अंग्रेज़ी ट्रैक्ट भी तब तक लिखे व छापे जा चुके

❋ द्रष्टव्य 'Arya Samaj Introduced' प्रथम संस्करण का अन्तिम पृष्ठ।

थे। अब पाठक स्वयं सोचें कि छः वर्षों में तो पं० जी ने हिन्दी उर्दू में ७० ट्रैक्ट दिये और १९५४ ई० में दिये विवरण के अनुसार ६०, और १९६८ ई० के थोड़ा समय पश्चात् छपे विवरण में १०० लघु पुस्तकें बताई गई हैं। १९२९ ई० से १९५४ ई० तक के २५ वर्षों में क्या बीस ही ट्रैक्ट निकले ? १९५४ से १९६८ ई० तक के १४ वर्षों में क्या दस ही ट्रैक्ट छपे ? निश्चय ही विवरण देने वाले से अनजाने से किंवा प्रमाद से कहीं तो भूल हुई है। उपाध्याय जी के शिष्यों, भक्तों व अनुसन्धान करने वालों के सामने हमने एक समस्या रख दी है। आशा है कि इस भूल का सुधार किया जावेगा। भूल पकड़ी जा सकती है पकड़ने वालों में उत्साह एवं चाह चाहिये।

पाठक ध्यान में रखें कि पं० जी की इन लघु पुस्तकों के मलयालम, कन्नड, मराठा, गुजराती आदि मे भी अनुवाद छपे हैं। मलयालम में हिन्दी पुस्तक पुस्तिकाओं का ही अनुवाद नहीं छपा, अंग्रेजी के ट्रैक्टों का भी आचार्य श्री नरेन्द्र भूषण जी ने अनुवाद किया व छपवाया। इन भाषाओं में कितनी संख्या में ये ट्रैक्ट छपे हैं, यह लेखा जोखा भी किसी के पुरुषार्थ की बाट जोह रहा है।

पं० जी की लघु पुस्तकों पर डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी जी ने यथार्थ ही लिखा है, "इन लघु ग्रंथों में उन्होंने आर्य समाज के मन्तव्यों में से जिसको भी उठाया चिन्तन के इस धरातल तक पहुँचा दिया कि उस पर पुनर्विचार की स्थिति ही उत्पन्न नहीं हो सकती।" ❋

❋ द्रष्टव्य 'परोपकारी' मासिक का उपाध्याय जन्म शताब्दी विशेषांक पृष्ठ ४२

एतदविषयक एक और तथ्य पाठकों के सामने रखना आवश्यक है । उपाध्याय साहित्य पर लिखने वाले प्राय: सभी लेखकों को यह भ्रान्ति है कि आर्य समाज चौक प्रयाग द्वारा प्रकाशित सभी लघु पुस्तकें उपाध्याय जी द्वारा लिखित थीं। ऐसा समझना एक भूल है। यह तो ठीक है कि इस प्रकाशन के प्रधान सम्पादक पं० जी ही थे परन्तु पं० जी की प्रेरणा से अन्य लेखकों ने भी इस प्रकाशन को कुछ लघु पुस्तकें लिख कर दीं। उर्दू व हिन्दी दोनों में ही कुछ अन्य विद्वानों द्वारा लिखित कुछ लघु पुस्तकें छपी हैं। इसलिये 'परोपकारी' आदि में पं० जी की जन्म शती पर छपे विशेषांकों में ऐसे सब लेखों में लेखकों की असावधानी से यह भूल हुई है। समय रहते ही इस भ्रान्ति का निवारण हो जावे अत: हम यहाँ दो उदाहरण देते हैं। प्रथम माला का ट्रैक्ट संख्या ५७ 'भेड़िया धसान' श्री पं० प्रभु दयाल लिखित है। द्वितीय माला की मणि संख्या ४७ 'अद्भुत चमत्कार' के लेखक श्री कृष्णानन्द जी हैं।

चौक प्रयाग के प्रकाशन को आरम्भ कराते हुये उपाध्याय जी ने घाटे का दायित्व अपने ऊपर लिया था। बाहर की माँग को पूरे करने के लिए वण्डल बनाने, पार्सल आदि करने में सेवक सहायक न थे। यह सब कार्य उपाध्याय परिवार के सदस्यों के सहयोग से होता था।

सत्यार्थ प्रकाश के अनुवाद और उपाध्याय जी

उपाध्याय जी ने वैदिक साहित्य के लिए जो कुछ किया उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन ही नहीं असम्भव है। उपाध्याय जी से पूर्व सत्यार्थ प्रकाश के दो अंग्रेजी अनुवाद छपे। एक तपस्वी मास्टर दुर्गा प्रसाद जी का और दूसरा डा० चिरञ्जीव जी भारद्वाज का।

उपाध्याय जी ने बड़ी योग्यता व परिश्रम से सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेजी में अनुवाद किया। स्वामी सत्य प्रकाश जी ने इसका इण्डैक्स (Index) तैयार किया। उपाध्याय जी के जीवन काल में यह तीन बार छपा अब चौथी बार उनकी जन्म शती के अवसर पर छप रहा है।

उपाध्याय जी की प्रबल प्रेरणा व पुरुषार्थ से सत्यार्थ प्रकाश का बर्मी भाषा में भी अनुवाद छप गया। यह अनुवाद सारनाथ के भिक्षु कित्तमा जी ने किया। पं० जी ने प्रयाग विश्व विद्यालय के चीनी भाषा के प्राध्यापक डा० चाऊ स्यांग (Dr. Chow Hsiang Huang) ने चीनी में अनुवाद किया। हांगकांग के एक प्रेस में इसे छपाया गया। कलकत्ता में इसकी थोड़ी सी प्रतियाँ प्राप्त हो सकीं। चीनी भाषा में सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशन की कहानी बड़ी विचित्र है। उपाध्याय जी ने इसे छपवा ही दिया। विश्व के करोड़ों लोग चीनी बोलते हैं। यह भाषा कई देशों में प्रचलित है, परन्तु पं० जी के पश्चात् आर्य समाज में फिर किसी

ने इस दिशा में कुछ नहीं किया। पं० जी का प्रयास अभी तक तो प्रथम व अन्तिम ही है। आगे की परमेश्वर जाने।

साहित्य प्रेम तथा गवेषक महानुभावों की जानकारी के लिये यह बता दें कि अब तक छपे सत्यार्थ प्रकाश के सभी उर्दू अनुवादों तथा अंग्रेजी में छपे सब अनुवादों में त्र्योदश समुल्लास में दी गई बाईवल की तीन आयतें तथा उनकी समीक्षा नहीं छप सकी थी। इस अंश के छूट जाने का एक कारण रहा जिसका यहाँ उल्लेख हम नहीं करते।

सत्यार्थ प्रकाश सम्बन्धी कुछ शोध करते हुये हमें कमी का पता लगा। हमने पत्रों में इस पर लिखा तथा स्वामी सत्य प्रकाश जी से बात की। उन्होंने उपाध्याय जी जन्म शताब्दि पर उपाध्याय जी के अंग्रेज़ी सत्यार्थ प्रकाश में यह कमी पूरी कर दी है। इस प्रकार इस संस्करण में छूटी हुई तीन आयतें तथा उनकी समीक्षा को स्वामी सत्य प्रकाश जी ने अनुदित कर दिया। इस दृष्टि से सत्य प्रकाश जी का यह अंग्रेज़ी अनुवाद अब पूरा है और उत्तम है।

—※—

उपाध्याय साहित्य के कुछ अनुवादक विद्वान

(१) श्री पं० गोपदेव जी :—आप उपाध्याय जी के सहकारी भी रहे। आंध्र प्रदेश के देश प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान और तेलगू

भाषा के कुशल लेखक हैं। आपने पं० जी की कई पुस्तकों व ट्रैक्टों का तेलगू में अनुवाद किया है। आपने वेद व दर्शनों पर कई ग्रन्थ लिखे हैं।

(२) पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक :—आप भी पं० जी के बड़े श्रद्धालु हैं। सार्वदेशिक सभा में पं० जी का बड़ा सहयोग किया। 'Marriage And Marriage Life' तथा 'Vedic Culture' का आपने हिन्दी में अनुवाद किया। हमें स्मरण है कि 'Reason And Religion', 'Philosophy of Dayanand' के कुछ अंशों का सार्वदेशिक मासिक में कुछ अनुवाद छपा था। हमारा अनुमान है कि यह भी आपके द्वारा ही था।

(३) आचार्य नरेन्द्र भूषण जी :—केरल में वेद प्रचार आन्दोलन के जन्मदाता आचार्य नरेन्द्र भूषण जी एक सिद्ध हस्त लेखक हैं। मलयालम के शिरोमणि लेखकों व वक्ताओं में से एक हैं। आपने उपाध्याय जी के कई ग्रंथों व ट्रैक्टों का मलयालम भाषा में अनुवाद किया व छपवाया है। आपसे पहिले भी कुछ सज्जनों ने मलयालम में उपाध्याय कृत कुछ अंग्रेजी, हिन्दी ट्रैक्टों का अनुवाद किया व छपवाया।

(४) श्री उत्तममणि वानप्रस्थी :—महाराष्ट्र के वयोवृद्ध आर्य नेता हैं। आपने मराठी में उपाध्याय कृत कई ट्रैक्टों का अनुवाद छपवाया था। बड़े मधुर भाषी आर्य विद्वान हैं।

(५) श्री विश्व प्रकाश जी :—कहीं अन्यत्र भी यह चर्चा की गई है कि उपाध्याय जी के 'Reason And Religion,' 'Worship' आदि कुछ अंग्रेजी ग्रंथों का अनुवाद उपाध्याय जी के द्वितीय सुपुत्र विश्व प्रकाश जी ने किया व छपवाया। आप भी एक सुलझे हुए हिन्दी अंग्रेज़ी लेखक हैं।

उपाध्याय जी का एक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक लेख

स्वामी दयानन्द और पुराण

यह लेख पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने शोलापुर में लिखा था। 'प्रकाश' उर्दू साप्ताहिक लाहौर के ऋषि बोध अंक १२ फरवरी १९३९ ई० में छपा। अभी 'लीडर' में एक दोस्त का एक आर्टिकल निकला है जिसमें स्वामी दयानन्द की तारीफ करते हुए आर्य समाज की कुछ कमजोरियों का ज़िक्र किया है। एक कमजोरी यह बतलाई गई है कि मौजूदा तालमियाफ़ता लोगों ने जो तहकीक़ात की है उसके मुताबिक पुराण बहुत सी बेश कीमत बातों का मखज़न साबित हुए हैं इसलिये आर्यसमाजियों को पुराणों की निस्वत अपना ज़ाबिया नज़र बदल देना चाहिए। महज़ इस वजह से कि स्वामी दयानन्द ने पुराणों का खण्डन किया और करते थे उनको काबिले नफ़रत समझ लेना ठीक नहीं है।

इस बारा में मुझे एक अर्ज़ करनी है कि हमारा पुराणों की निस्वत क्या ख़्याल है ? इसके मुतलिक लोगों में बहुत गल्त फ़हमी है। स्वामी दयानन्द पुराणों के मुतालया को ममनू करार नहीं देते। तालिबइल्मी की हालत में पुराणों को दरस में रखना उनको मन्जूर नहीं है। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में ख़ुद स्वाल उठाया है कि क्या पुराणों में कोई अच्छी बातें नहीं हैं ? वह कहते हैं कि पुराणों में बहुत सी अच्छो बातें हैं लेकिन जैसे ज़हर अलूदा ख़ोराक नाकाबिले इस्तामाल हो जाती है इसी तरह की पुराणों को समझना चाहिए। पुराणों में बाव-जूद बहुत सी आला बातों के इतनो ख़ुराफ़ात भरी हुई हैं कि आम पब्लिक उन आला बातों का लिहाज़ न करके बुरी बातों का शिकार हो जाती है। हिन्दुओं की तवारीख़ से हमें पता चलता है कि पुराणों में ओ३म् का अहमियत, गायत्री की फ़ज़ीलत वग़ैरा वग़ैरा बहुत सी बातें मिलती हैं लेकिन साथ ही बुत परस्ती की अदना से अदना और गन्दी से गन्दी सूरतें भी पाई जाती हैं जिन्हों ने हिन्दुओं को जाहलियत के गढ्ढ़े में डाल रखा है। कम उमर की शादी, सती का रिवाज, मुरदा परस्ती, और इसी तरह की वीसियों तवहमात पुराणों को ही तालीम का नतीजा हैं। आर्य समाज यह नहीं कहता कि हमारे आलम पुराणों को न पढ़ें या इसमें जो अच्छी बातें हैं उनको अख़ज़ न करें। अगर इल्म के मतलाशियों को हिन्दोस्तान की पुरानी तारीख का कुछ पता लगाना है तो विष्णु पुराण से उन्हें बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है लेकिन मतलाशी होना एक और बात है और साधारण रीति से पढ़ना दूसरी बात है। हर शख़स खोज नहीं कर सकता। रिसर्च करना हर एक का काम भी नहीं है।

एक बात और काबिले गोर है। वह यह कि स्वामी जी मानते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों के सूत्रों और स्मृतियों में भी मिलावट हुई है। रामायण और महाभारत मिलावटों से भरे पड़े हैं, लेकिन स्वामी जी ने उनको पुराणों की तरह मतरुक क्यों नहीं माना ? इसकी एक वजह है और स्वामी जी की मिसाल से ही वाज़ह हो जाती है। मिलावट कई तरह की होती है। अगर आटे में कँकरी पड़ जाए, आप कँकरी को निकाल कर आटे को खालेंगे। क्योंकि कँकरी की मिलावट एक बाहरी मिलावट है। कँकरी आटे के हर ज़र्रा में पैवस्त नहीं हो गई। लेकिन ज़रा सा ज़हर आटे के हर ज़र्रा को खराब कर देता है। इसी तरह से जहाँ रामायण, महाभारत और ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलावट हुई हैं, वह सब खारज़ी है। उसको निकाला जा सकता है। मनुस्मृति के ढांचे में कोई फरक नहीं आया। उसके श्लोक आसानी से बाहर किए जा सकते हैं। लेकिन जो ढांचा पुराणों का है उसकी जड़ में ही खराबी है। सारे पुराण देवमाला के एक खास ढांचे में ढाले गये हैं। ये देवमाला के तबहमात पुराण के हर क़िस्से में पैवस्त हैं। इसलिए पुराणों को धार्मिक ग्रन्थों की पदवी देना कठिन है। लेकिन जो काम परियों के किस्से (Fairy Tales) करते हैं। वह काम पुराणों से भी लिया जा सकता है। पुराणों के बाज किस्से नहायत दिलचस्प है। किसी के वोस बाज़ू और किसी के एक हज़ार। किसी की तीन आँखें और किसी की एक हज़ार आँखें। इन सब किस्सों को बच्चे शौक से पढ़ते हैं, क्योंकि इनमें अजीब अजीब लिखी होती हैं। इस तरह कारटूनों का हाल है। किसी का सिर बड़ा और पैर छोटे और किसी का हाथ बहुत लम्बा और सिर बहुत छोटा। किसी की नाक बहुत लम्बी। इस तरह

की तसवीर लोगों के हँसाने के काम की होती है। इस तरह पुराणों के किस्से हैं। जिनमें तखैलात को खास जगह दी गई है। इनमें से बहुत सी अच्छी बातें अखज़ की जा सकती हैं और करनी चाहिए। पुराणों में तवारीखो मुताला भी मिल सकता है, लेकिन इनको तारीख नहीं कह सकते। हाँ! उनके आधार पर तवारीख तालाश की जा सकती है।

कुछ लोग समझते हैं कि "पुराणों को साफ किया जा सकता है। अगर ऐसा हो तो मेरे ख्याल में आर्य समाज को उनके ग्रहण करने में कोई गुरेज नहीं होगा। लेकिन पहले देख तो लें कि साफ करने से पुराणों का कितना हिस्सा बाकी रह जाता है।"

साहित्य प्रेमियों व शोध कर्त्ताओं के लिये हमने इस लेख की भाषा में कुछ परिवर्तन नहीं किया। कठिन उर्दू शब्दों के अर्थ पुस्तक के अन्त में दिये हैं, जिससे राष्ट्र भाषा प्रेमी पाठक भी इस लेख का पूरा पूरा लाभ उठा सकें और सरलता से समझ सकें।

'राजेन्द्र जिज्ञासु'

उपाध्याय जी के कुछ पत्र

आर्य समाज के छोटे बड़े व्यक्तियों ने श्री उपाध्याय जी द्वारा लिखे पत्रों को सुरक्षित रखने की सूझ बूझ नहीं दिखाई। यह बड़ी

भयङ्कर भूल की गई है। उपाध्याय जी की सन्तान ने भी यही भूल की है। उपाध्याय जी अपने जीवन काल में ही एक विख्यात नेता के रूप में, एक यशस्वी विद्वान के रूप में, एक दार्शनिक के रूप में, एक सुधारक के रूप में; एक शिक्षा शास्त्री के रूप में, एक साहित्य-कार के रूप में और एक धर्मात्मा आचार्य के रूप में सम्मानित व्यक्ति समझे जाते थे फिर भी उनके पत्रों की सुरक्षा का ध्यान नहीं किया गया। यह साहित्यिक संसार की बड़ी भारी क्षति है। उपाध्याय जी पत्र लेखन कला में भी प्रवीण थे। यदि उनके जीवन के अन्तिम दश वर्षों के पत्र ही सुरक्षित कर लिये जाते तो भी यह संख्या सहस्त्रों तक पहुंचती। यह एक सुन्दर ग्रंथ वन जाता।

इन पंक्तियों के लेखक ने १९५३ ई० से लेकर उनके जीवन की अन्तिम घड़ी तक के उनके (अपने नाम) लिखे सब पत्रों को सुरक्षित रखा। दुर्भाग्य से एक जानकार व्यक्ति ने हमारे पत्रों का संग्रह देखने के लिए ले लिया और सारा नष्ट कर दिया। इसमें कई महापुरूषों के हमारे नाम लिखे पत्र नष्ट हो गये। दोषी हम भी हैं जो विश्वास कर बैठे।

तथापि पूज्य उपाध्याय जी के वहुत से पत्र अव भी हमारे पास सुरक्षित हैं। इनमें से कुछ एक यहाँ दिये जाते हैं। शेष भी कभी किसी उपयुक्त अवसर पर प्रकाशित करवा दिये जावेंगे। उपाध्याय जी के व्यक्तित्व को समझाने के लिए इन पत्रों का अध्ययन भी वड़ा लाभप्रद रहेगा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन पत्रों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

ओ३म्

कला प्रेस,
इलाहाबाद
२९-९-६०

प्रि० जिज्ञासु जी

नमस्ते

पत्र मिला। बहुत हर्ष हुआ। इससे पहले मुझे तुम्हारे पास होने की कोई सूचना नहीं मिली थी। कभी-कभी सोच लेता था कि शायद आन्दोलनों के अधिक्य के कारण पढ़ना स्थगित कर दिया हो। मैं तुम्हारे लेख तो पढ़ता ही रहता हूं। भविष्य तो युवकों के ही हाथ में है।×

तुम्हारा हितेच्छुः
गंगा प्रसाद उपाध्याय

ओ३म्

कला प्रेस,
इलाहाबाद
१२-१२-६०

प्रिय जिज्ञासु जी

नमस्ते

तुम्हारी परीक्षा के दिन निकट होंगे। मेरी इच्छा है कि तुम अच्छे डिवीजन में M. A. पास हो जाओ।

× यह पत्र आर्यसमाज सैक्टर २२ चण्डीगढ़ के पते पर प्राप्त हुआ।

और सब बातें मेरे लिए गौण हैं। यह मुख्य है। अतः मेरी पुस्तक की Review की भी कोई जल्दी नहीं, जिनको बड़ा ध्येय बनाना हो उनको चमकीले गौण कामों से उदासीन रहना चाहिये।

◇ 'कर्म मीमांसा' अंग्रेज़ी में होती तो अच्छा था। परन्तु छापे कौन ? काम तो बहुत हैं परन्तु जब छोटी बातों से अवकाश मिले तब न। बच्चों का पतंग खेलना स्वाभाविक है परन्तु जब घर के बुजर्ग भी पतंग में जुट जायें। तो उस घर का अल्ला बेली।

तुमने मेरा लेख पसन्द किया। न जाने कितने गालियाँ देते होंगे। और देते हैं। अस्तु। मैं अपना काम किये जाता हूँ। ※

भवदीय
गंगाप्रसाद उपाध्याय

ओ३म्

कला प्रेस,
इलाहाबाद
१७-२-६१

प्रिय जिज्ञासु जी,

नमस्ते। पत्र मिला ईश्वर करे आप शीघ्र एम० ए० हो जाएं। तत्पश्चात् नया प्रोग्राम बनावें। आप आएगे तो मैं

◇ 'कर्म-फल सिद्धान्त' पुस्तक का नाम भूल से 'कर्म-मीमांसा' लिखा है। 'जिज्ञासु'

※ यह पत्र हमें आर्यसमाज सैक्टर २२ चण्डीगढ़ के पते पर प्राप्त हुआ था। 'जिज्ञासु'

आपका स्वागत करूंगा। मेरा स्वास्थ्य तो कुछ ऐसा ही है। जो काम रह जायगा वह आप करेंगी ही। मैंने युजीन मार्कस 卐 की कुछ चर्चा तो पढ़ी थी। परन्तु अधिक नहीं। न अब शक्ति है। फिर भी जो हो सकेगा करता रहूंगा। आप पढ़ने में लगे रहें। अनन्य मन-सक्त होकर।

शेष फिर।

भवदीय
गंगाप्रसाद उपाध्याय

इसी पोस्ट कार्ड के पिछले पृष्ठ पर ये शब्द भी लिखे हैं :—

आपकी तरुण तरंग ◇ और युग की करवट ❀ भी मिली। पढ़ूंगा ✺

गं० प्र० उ०

ओ३म्

कला प्रेस
इलाहाबाद
६-५-६२

प्रियवर जिज्ञासु जी

नमस्ते

पत्र मिला। प्रसन्नता हुई। मैं गृहस्थाश्रम को सबसे प्रमुख समझता हूं। यह बुद्धिमानों के लिए एक उत्तम शिक्षणालय है। और परिक्षणालय भी। मुझे विश्वास है कि आप शिक्षा ग्रहण करेंगे और परीक्षा में उत्तीर्ण होने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे। मेरा

卐 यह सज्जन अमरीका निवासी थे। भारत में आए थे। 'जिज्ञासु'
◇ यह हमारे गीतों का एक संग्रह था।
❀ यह एक खोजपूर्ण पुस्तिका थी।
✺ यह पत्र आर्य समाज सैक्टर २२ चण्डीगढ़ द्वारा प्राप्त हुआ।

आर्शीवाद आपके साथ है। ❀

भवदीय

—⋙⋘—

गंगाप्रसाद उपाध्याय

ओ३म्

C/o Dr. Satya Prakash
10 D, Beli Avenue
Allahabad
7–3–63

प्रिय जिज्ञासु जी

नमस्ते

मुझे बीसियों बार आपकी याद आई। परन्तु पत्र आज आया। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम शोलापुर जा रहे हो। आशा है वहाँ तुम आर्य समाज के लिये अनुकूल वातावरण बना सकोगे। मैं अस्वस्थ्य तो हूं परन्तु इतना नहीं कि पत्र न लिख सकूं या आर्य समाज की प्रगतियों को भूल जाऊँ। यह ठीक है कि नये युग में मेरे ढीले ढाले व्यक्तित्व के लिये कोई स्थान नहीं है। यह स्वाभाविक इसलिये मैंने तुम को इधर कुछ लिखा नहीं। मेरी पुस्तक मुसावीह उल–इस्लाम उर्दू प्रेसों की टाल मटोल के कारण कातिवों ने लिखा तो दी है परन्तु छप नहीं पाई। इस बीच में मैंने उसका हिंदी अनुवाद "इस्लाम के दीपक" छपवा दिया। दोनों का साथ-२ प्रकाशन करने का इरादा था। शोलापुर

❀ यह पत्र आर्य समाज धूरी के पते पर प्राप्त हुआ।

पहुँचकर आप मुझे लिखें। ※

भवदीय
गंगा प्रसाद उपाध्याय

ओ३म्

C/o डा० सत्य प्रकाश
१० डी०, बेली एवीन्यू
इलाहाबाद
१६-१२-६३

प्रियवर जिज्ञासु जी,
नमस्ते !

पत्र मिला। मैं भी बराबर याद कर लेता हूं। अब स्वास्थ्य की क्या बात है। अब बेधड़क लिखा कीजिये। जब तक जीना है कुछ न कुछ करना है। 'मुसवीह' को कई बार पढ़िये। मेरे और आपके दृष्टिकोण का भेद है। शैली सर्वथा नई है। आप समाज के मिलटरी डिपार्टमेण्ट के लोगों में हैं। मैं सिविल के। यह पुस्तक मुसलमानों के लिये लिखी है। गैर मुस्लिमों के लिये नहीं। इसमे सामग्री भी नई ही मिलेगी। 'राष्ट्र निर्माता दयानन्द' भिजवा रहा हूं। मराठी या कन्नड़ में अनुवाद करके छपवा दीजिये। 'वेद प्रवचन' में अशुद्धियों की भरमार है। कई स्थानों

※ यह पत्र श्री परमानन्द विद्यार्थी जी रोहतक के पता पर प्राप्त हुआ।

पर तो पैराग्राफ पूरे के पूरे इधर उधर हो गए हैं। मैंने एक शुद्ध कापी श्री प्रिंसिपल ज्ञान चन्द हिसार के पास भेज दी है। यदि गोपदेव जो उसे विशेष रूप से मँगवा कर अनुवाद करें तो भ्रष्ट स्थलों से वच सकेंगे। क्या रिफार्मर मिलता है ?

उसको लेख क्यों नहीं लिखते ? आजकल एक माला चल रही है, सन्ध्या क्या, क्यों, कैसे ? क्या राय है ? जो जानते हों उनसे नमस्ते कहना ❀

आशीर्वाद सहित
गंगा प्रसाद उपाध्याय

ओ३म्
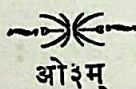
C/o प्रा० श्री प्रकाश
११३/८२ स्वरूप नगर
कानपुर
२७-९-६६

प्रिय जिज्ञासु जी

नमस्ते,

तुम्हारा भावना पूर्ण पत्र मिला। कोई चिन्ता की बात नहीं है। जितना है ईश्वर की दया है। बाँई आंख और बाँया कान दोनों कुछ-कुछ सहायता कर रहे हैं। इनसे काम चलाया जा रहा

❀ यह पत्र डी० ए० वी० कालेज शोलापुर के पता पर प्राप्त हुआ।

है। यदि दाँया कान और दाई आंख काम नहीं देते तो कोई बात नहीं इन्होंने इतने दिनों साथ दिया और थोड़ी बहुत बैदिक धर्म की सेवा भी हो गई। तुम जैसे साथी हों तो अब भी कुछ काम हो सकता है। मैं आजकल एक पुस्तक लिख रहा हूँ "आर्य समाज और इस्लाम" यह उर्दू और हिंदी में होगी। मुसाबीहुल इस्लाम से कुछ छोटी। शक्ति क्षीण हो रही है। भागते भूत की लँगोटी ही सही।

मैं यहां बीस सितम्बर को आया। तो तीन सप्ताह रहूंगा। तुम प्रचार में लगे रहो। इससे सन्तोष होता है। ◇

भवदीय
गंगा प्रसाद उपाध्याय

प्यारे जिज्ञासु जी !
नमस्ते।

स्वामी स्वतन्त्रतानन्द की जीवनी तो तुम्हारी अद्भुत कृति है। जिसने पढ़ा प्रशंसा की है। आशा की जाती है कि अन्य ऐसे ही ग्रन्थ देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

Vedic Philosophy ट्रैक्ट भेज रहा हूं। महाभारत वाला ट्रैक्ट भी छपेगा देर से। ✻ काम धीरे धीरे चल रहा है।

◇ यह पत्र भी शोलापुर के पता पर प्राप्त हुआ।
✻ 'भारत के पतन और उत्थान की कहानी' पुस्तक की ओर संकेत है।

मेरे स्वास्थ्य में कोई सुधार तो होना नहीं। जो दिन चला जावे अच्छा है। आँखे काम बिल्कुल नहीं करती। नई चीज़ कैसे लिखी जावे। अब आप लोग लिखेंगे। ट्रैक्ट विभाग का काम भी कुछ तेजी से नहीं चल रहा है, परन्तु जो चल रहा है वह भी ग़नीमत है। मुझे तो याद नहीं कि जालन्धर वालों को जनसंघ के बारे में क्या लिखा था ? एक लेख के उत्तर में प्रो० रामसिंह ने एक पत्र लिखा था जिसका उत्तार मैंने आर्य मित्र में दे दिया था।

....❋

....

आशा है आप अच्छी तरह होंगे। ●

भवदीय

गंगा प्रसाद उपाध्याय

उपाध्याय जी के कुछ दृष्टान्त व उदाहरण

श्री पं० जी को ईश्वर ने लिखने की अद्‌भुत शक्ति दी थी। गूढ़ से गूढ़ दार्शनिक विषय को जन साधारण के हृदयाङ्गम करा देने की अद्वितीय क्षमता रखते थे। अपनी बात को समझाने के लिये वहुत उपयुक्त दृष्टान्त दिया करते थे। उनके दृष्टान्त बड़े संक्षिप्त होते थे। ऐतिहासिक घटनाएँ भी उदाहरण स्वरूप सुनाया व लिखा करते थे। निजी अनुभव भी बड़ी रोचक शैली में प्रस्तुत

❋ एक पैरा यहां छोड़ दिया है।

● यह पत्र शोलापुर में २५ जुलाई १९६६ को मिला।

किया करते थे। हम यहाँ कुछ एक ही देंगे। पाठक उपाध्याय साहित्य का स्वाध्याय करते हुए उनके दृष्टांतों का रसास्वादन कर सकते हैं।

'ईंट गारा, ईंट गारा'

यह उपाध्याय जी के एक लेख का शीर्षक था। एक बार अकबर ने बीरबर को कहा कि आकाश में एक महल बनवा दो। कहते हैं कि बीरबल ने इस कार्य की तैयारी के लिए छः मास का समय माँगा। छः मास के पश्चात् अकबर ने कहा महल बनवा दो। विलम्ब न करो। उसने कहा मेरे कारीगर तैयार हैं। चलकर स्थान आदि का निरीक्षण करें। अकबर उसके साथ चल दिया। बीरबल एक खुले स्थान पर सम्राट को ले गया। अकबर के कानों में आवाज़ आने लगी, "ईंट गारा, ईंट गारा"।

बीरबल ने सम्राट से कहा, मेरे कारीगर "इट गारा, ईंट गारा" मांग रहे हैं, अब आप अपने व्यक्तियों से कहिए कि देरी मत करें। सामान उन तक पहुंचाएं ताकि महल के निर्माण का कार्य अति शीघ्र हो।

'छोटी बात पर बड़ी लड़ाई'

छोटी बात पर बड़ी लड़ाईयाँ कैसी होती है उसका एक

निज उदाहरण देता हूँ। एक मित्र थे कृषि विभाग के अध्यक्ष। उनके कृषि-परीक्षालय में गन्ने बहुत अच्छे होते थे। एक दिन उनके एक ग्रामीण सम्बन्धी आए। उन्होंने उनके लिए अच्छे गन्ने मँगाए और चूसने के लिए कहा। वहां उस समय एक अतिथि ग्रह (Drawing Room) में बैठे थे। वहां बहुमूल्य दरियां बिछी हुई थीं। गन्ने की छोई फर्श को खराब न करे, इस लिये उन्होंने अतिथि महोदय के समक्ष एक टोकरी रख दी कि खाते समय छोईयां इसमें डाल दीजिए। अतिथि थे गांव के रहने वाले। उन्होंने इस प्रकार गन्ने चूसते कभी किसी को नहीं देखा था। वह बिगड़ गए और कहने लगे, "तुमने मुझे बैल समझा है कि मेरे सामने टोकरी लगाकर रख दो।"

अध्यक्ष महोदय को लेने के देने पड़ गए। बहुत कुछ क्षमा याचना की, परन्तु भ्रान्त दूर न हुई। ऐसे उदाहारण बहुत से मिलेंगे। सभाओं के संगठन तो इसी प्रकार टूटते हैं। अतः समाज निर्माण के लिए दान शीलता, अहिंसा तथा एक दूसरे को समझने का यत्न करना यह आवश्यक है।

यह मन्दिर किसका ? यह भगवान कौनसा ?

"एक बार मैं काठमाण्डू में प्रातःकाल सैर को निकला। मैंने देखा कि सड़क के किनारे एक छोटा सा मन्दिर है। एक मनुष्य सड़क पर से गुजरा और मन्दिर की ओर हाथ जोड़कर उसने

नमस्कार किया। ऐसे दृश्य हर देश में मिलते हैं। मैंने उससे पूछा कि यह क्या है जिसके तुमने हाथ जोड़े। उत्तर मिला, "मन्दिर है।" मैंने "पूछा, किसका ?" उसने कहा "भगवान का।" मैंने पूछा, "क्या देवी का ? उसने कहा, "हाँ"। फिर मैंने पूछा, "क्या शिव का ?" उत्तर मिला, "हाँ"। मैंने यह नहीं पूछा कि तुमने क्यों उपासना की। यह उपासक तो था। कुछ तो भावना उसके हृदय में थी जिसने उसके भीतर प्रेरणा की कि वह खड़ा होकर एक क्षण के लिए मन्दिर की ओर हाथ जोड़ ले। परन्तु वह यह नहीं जानता था कि उपासना, उपासक और उपास्य की विशेषता क्या है ?"

कर्म की स्वतन्त्रता

"परीक्षार्थी परीक्षा में बैठा हुआ है। प्रश्न पत्र और उत्तर पत्र उसके हाथ में है। वह स्वतन्त्र है कि किसी प्रश्न का जो चाहे उत्तर दे। परन्तु दूसरे परीक्षार्थी से बात नहीं कर सकता, स्वतन्त्र भी है और परतन्त्र भी। स्वतन्त्र और परतन्त्र की सीमायें है। यह दोनों बातें परीक्षार्थी के हित का दृष्टि में रखकर नियत की गई हैं। परीक्षार्थी जो लिखेगा उसका फल अङ्क रूप में पाने में वह परतन्त्र है, परन्तु परीक्षा का समय भी नियत सीमा के भीतर है। आप क्या कहेंगे ? परीक्षार्थी पूर्णतया स्वतन्त्र है या पूर्णतया परतन्त्र। दोनों में से एक भी नहीं। जब जीव अनेक हैं तो वे पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं हो सकते। हाँ केवल एक दशा में हो सकते

हैं। अर्थात् जब उन जीवों का विकास इतना उच्चतम हो जाय कि वे तन्त्र या नियम को स्वयं समझने लगें और उनका उल्लंघन करें ही नहीं। यदि सब परीक्षार्थी अत्यन्त विश्वास पात्र हो जायें तो निरीक्षकों की आवश्यकता न पड़े। यदि सभी जीव पूर्ण ज्ञानी या मुक्त हो जायें तो किसी को किसी से डर न रहे। यदि सभी नागरिक पूर्ण शिक्षित और विचार शील हो जायें तो सड़कों के मोड़ों पर पुलिस के पहरे की आवश्यकता न हो फिर तो सृष्टि की ही आवश्यकता न पड़े। परन्तु जिस सृष्टि की हम विवेचना कर रहे हैं उसमें अल्पज्ञ जीव है जो विकास के भिन्न भिन्न स्तरों पर हैं, अतः उनकी स्वतन्त्रता और परतन्त्रता की भी सीमायें हैं और वह सीमायें कर्मवाद को पुष्ट करती है उनको काटती नहीं।"

चिरस्थायी व क्षणिक लाभ

"परन्तु जिस प्रकार ऋषि दयानन्द ने चिरस्थायी लाभ के लिये क्षणिक लाभों की परवाह नहीं की इसी प्रकार आर्य समाज को भी दृढ़ रहना चाहिए। जो लोग धूप और मेंह से बचने के लिए कपड़े के तम्बू बना रहे हैं उन्हें बनाने दो। उनका इस समय अवश्य कम व्यय पड़ेगा परन्तु यह तम्बू एक दो वर्ष में ही फट जायँगे। आर्यों को चाहिए कि स्वामी दयानन्द के आदेशानुसार पक्का भवन बनाने में लगे रहें। चाहे कितने ही दिन क्यों न लगें, चाहे कितना ही धन क्यों न व्यय हो, परन्तु यदि लाभ देगा तो यही भवन देगा। इसी की छत्त के नीचे आने वाली सन्तान सुख

से बैठ सकेगी। यदि कहीं आर्यों ने प्रलोभनों में फँसकर वेदों को छोड़ दिया तो न केवल भारतवर्ष और हिंदू जाति की ही हानि होगी, किंतु समस्त भूमण्डल की समस्त मनुष्य जाति एक अपूर्व लाभ से वंचित रहेगी।"

दया और न्याय के छोटे छोटे दृष्टान्त

"जब दया न्याय से थोड़ी ही विचलित होती है तो पता नहीं चलता जैसे एक मन दूध में एक पाव पानी। परन्तु जब ऐसे दयालु पुरुषों की भरमार होने लगती है तो इसको कोई दया नहीं कहता। अन्याय को नष्ट कर देता है। इसलिये वस्तुतः जहाँ न्याय है वहीं दया है। एक चीज है उसको हम दो दृष्टिकोणों से देखते हैं। ज्यों ज्यों दया और न्याय में विरोध होता जाता है, त्यों त्यों दया और न्याय दोनों का ह्रास होने लगता है। न दया रहती है न न्याय।"

"जब न्याय दया को दबाने चला तो उसका स्वयं ह्रास होने लगा। कुत्ता जब हड्डी के मुँह में छिद जाने से अपना ही रक्त चूसता है तो वह नहीं समझता कि मैं अपना रक्त चूस रहा हूँ। इसलिए दया से द्रवीभूत होकर जो न्याय से विचलित होता है, वह वस्तुतः निर्दयता आरम्भ कर देता है। इसलिये दया और न्याय मूल में एक हैं।"

उपाध्याय जी के स्मारक

श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय का उनके जीवन में कई वार अभिनन्दन हुआ। महर्षि दयानन्द की दीक्षा शताब्दी पर तो २५ दिसम्बर १९५९ को उन्हें डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के कर कमलों से अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेंट किया गया। वह नाम व पद की भूख पर विजय पा चुके थे। वह चाहते तो उनके जीवन काल में ही उनका स्मारक बन सकता था। वह ईंट पत्थर के स्मारकों के विरोधी थे। उन्होंने तो महर्षि के जन्म स्थान टन्कारा में भी भवन के रूप में स्मारक के निर्माण का विरोध किया था। 'टंकारा का टावर' शीर्षक से उनका उर्दू लेख हमें आज भी याद है।

उपाध्याय जी के निधन पर उनके भक्तों ने उनकी स्मृति को स्थायी बनाने के लिये विचार विमर्श किया। प्रयाग से हमें भी एक पत्र आया कि उपाध्याय जी का स्मारक किस रूप में हो। हमारा सुझाव यह था कि प्रयाग के चौक समाज में उपाध्याय जी द्वारा स्थापित ट्रैक्ट विभाग का नाम पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय प्रकाशन मन्दिर रख दिया जावे। हर्ष की बात है कि अब इसका नाम पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय ट्रैक्ट विभाग है। यह पं० जी का पहिला स्मारक है।

१९७१ ई० में आर्य युवक समाज अबोहर ने पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय प्रकाशन मंदिर की स्थापना करके उस महान साहित्यकार व समाज सेवी का दूसरा स्मारक खड़ा कर दिया। स्थानीय आर्य समाज मंदिर में किराये पर एक कमरा लेकर प्रकाशन का

कार्य चलाया गया। उपाध्याय जी के जन्म शताब्दी वर्ष में छल छद्म से ताला तोड़कर श्री फकीर चन्द चतरूराम आदि ने जो कुछ किया, इस पर हम क्या कहें व लिखें ? धर्म का चोला आढ़े श्री राजकुमार चौहान भी यह देखकर चुप है। ऐसे कई सत्कर्मों की प्रेरणा क्या उन्हीं से नहीं मिलती रही ? ईश्वर सबको सद् बुद्धि दें। पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय जी का यह स्मारक फिर भी जीवित है और रहेगा।

आर्य समाज चौक प्रयाग के कुछ उत्साही सज्जनों के उद्योग से गंगा प्रसाद उपाध्याय पुरस्कार निधि की स्थापना हुई। यह कार्य प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय है। पं० जी का एक स्वप्न साकार हो गया। इस पुरस्कार से कई साहित्यकार सम्मानित हो चुके हैं।

हमारा विचार है कि पं० जी का साहित्य उनका एक सच्चा व स्थायी स्मारक है। पं० जी वास्तव में ज्ञान की गंगा थे। उनका साहित्य ज्ञान पिपासुओं की प्यास बुझाता रहेगा। कृतज्ञ हृदयों में पं० जी की स्मृति बनी रहेगी। उनके काल जयी ग्रन्थों से उनको कई शिष्य मिलेंगे। उनके शिष्यों की परम्परा अखण्ड रहेगी। इसी प्रकार उस लक्ष्य की पूर्ति होगी। जिसके लिये उपाध्याय जी ने अपना जन्म और जीवन लगाया। कुछ वर्ष पूर्व कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में भी पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय वैदिक साहित्य प्रकाशन समिति की स्थापना की गई। इस नन्हीं संस्था ने भी कई अच्छी-२ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। स्व० पं० विद्याधर जी, डा० जवाहर लाल, श्री प्रकाश जी (उपाध्याय जी

के पुत्र), श्रीमती सुमन जी (उपाध्याय जी की पुत्र वधु) आदि ने इस स्मारक के निर्माण में विशेष योगदान दिया है।

उपाध्याय-जीवनी-साहित्य

श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय के जीवन पर कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं और लिखे जाने चाहिए भी। परन्तु सत्ता के इस युग में अपूजों का ही पूजन हो रहा है तथापि सन्तोष की बात है कि कुछ तो लिखा गया है।

(१) 'जीवन-चक्र': —यह उपाध्याय जी की आत्म कथा है। इस पर उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार से साहित्यक पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। हमने इस ग्रन्थ में इस पुस्तक से भरपूर लाभ उठाया है। पुस्तक प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी एवं संग्रह करने योग्य है।

(२) 'कलादेवी एक सच्ची कहानी':—यह भी उपाध्याय जी लिखित एक अच्छी पुस्तक है। पं० जी ने अपनी पत्नी की जीवनी लिखकर एक मर्यादा बाँधी है। पत्नी के जीवन चरित्र से पति के जीवन पर तो प्रकाश पड़ता ही है।

(३) 'पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय जीवनी एवं विचार दर्शन'—यह पुस्तिका पं० जी की जन्म शताब्दी पर श्री अशोक आर्य के

उद्योग से पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय प्रकाशन मंदिर अबोहर ने छापी थीं। यह भी इन पंक्तियों के लेखक की कृति है।

(४) 'परोपकारी' तथा 'आर्य मित्र' ने पं० जी की जन्म शताब्दी पर बड़े सुन्दर विशेषाँङ्क निकाले। दोनों अङ्क संग्रह करने योग्य हैं।

(५) डा० उषाजी द्वारा लिखित श्री पं० जी की एक संक्षिप्त जीवन डा० रत्न कुमारी स्वाध्याय संस्थान ने भी जन्म शताब्दी पर प्रकाशित की। यह भी एक सुन्दर प्रयास है।

(६) आर्य समाज लखीमपुर खेरी उ० प्र० ने भी पं० जी की जन्म पर एक बड़ी सुन्दर स्मारिका प्रकाशित करवाई। इसमें श्री डा० ज्ञान प्रकाश जी द्वारा दिया गया उपाध्याय जी का रेखा चित्र एवं पं० जी के दुर्लभ चित्र बड़े आकर्षक हैं।

(७) आर्य समाज चौक प्रयाग ने उपाध्याय जी के निधन पर एक स्मारिका प्रकाशित की थी उसमें श्री विश्व प्रकाश जी का अपने पूज्य पिता पर लिखा गया लेख सर्वोत्तम था।

(८) उपाध्याय जी की ७० वीं जयन्ती पर उक्त आर्य समाज ने उनके सम्बन्ध में एक पुस्तिका छपवाई थी जिसमें कई नेताओं, विद्वानों व उनके भक्तों के उनके प्रति भक्ति-भावों संग्रहीत किया गया।

(९) 'आर्य मित्र का वह अङ्क':—उपाध्याय जी के निधन पर श्री राधे मोहन ने 'आर्य मित्र' साप्ताहिक में एक लम्बा लेख दिया था। उसमें कई मार्मिक शिक्षा प्रद घटनाएँ थीं।

(१०) उपाध्याय अभिनन्दन ग्रन्थ:–१९६० ई० में महर्षि की दीक्षा, शताब्दी पर मथुरा में पं० जी को एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया गया। उसमें पं० जी के जीवन व साहित्य पर कुछ अच्छी सामाग्री है।

(११) 'हमारे द्वारा लिखे गये लेख' पं० जी के निधन पर हमने कई आर्य पत्रों में उनके जीवन पर महत्व पूर्ण लेख दिये थे। आर्य गजट उर्दू, वैदिक धर्म उर्दू में दिये गये लेख विशेष उल्लेखनीय हैं।

(१२) 'एक अप्रकाशित निबन्ध':– आर्य समाज नैरोबी ने स्वामी सत्य प्रकाश जी से एक अंग्रेजी पुस्तक Architects of the Arya Samaj लिखवाई। इसमें उपाध्याय जी पर भी एक निबन्ध था। यह पुस्तक अब तक नहीं छप सकी।

कुछ समकालीन विभूतियां व सहयोगी

उपाध्याय जी ने ७० वर्ष आर्य समाज व देश की सेवा की। इतने सुदीर्घ काल में वह बीसियों महापुरुषों व समाज सेवियों एवं

साहित्यकारों के सम्पर्क में आए। अनेक सज्जनों ने उनको सार्वजनिक कार्यों में सहयोग दिया। सबका परिचय देना और सबकी चर्चा करना तो असम्भव है, तथापि कुछ एक के विषय में कुछ पंक्तियाँ यहाँ देते हैं।

(१) **श्री स्वामी दर्शनानन्द जी:**—आपके व्याख्यानों का विद्यार्थी गंगा प्रसाद पर विशेष प्रभाव पडा। आपके तर्कों को सुनकर व पढ़कर गंगा प्रसाद पर वैदिक धर्म का गूढ़ा रंग चढ़ गया। स्वामी दर्शनानन्द जी जगराँव (पंजाव) में एक धनवान ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। बालकाल से ही बड़े उदार स्वाभाव के थे। एक बार बादामों को ऊटों पर लादकर, अफगानिस्तान के व्यापारी जगराँव में आ गये। आपने कई बोरे बादामों के क्रय कर लिए। पिताजी ने पूछा, "कृपाराम (स्वामी जी का पूर्व नाम) इन्हें क्या करोगे ?" आपने कहा, "खायेंगे।"

पिताजी ने कहा, "इतने बादाम हम खा सकेंगे ?" कृपाराम ने कहा, औरों में बाँट देंगे।"

ऐसे विचित्र व्यक्ति थे कृपाराम जी। कुशल साहित्यकार व अद्भुत शास्त्रार्थी, परमोत्साही, त्यागी, तपस्वी, ईश्वर विश्वासी, धुन के धनी व ऋषि भक्त थे। महर्षि दयानन्द के ३५ प्रवचन सुने और ३५ वर्ष ऋषि मिशन की अथक सेवा की।

(२) **पं० गणपति शर्मा जी:**—आप राजस्थान के चुरू नगर में पैदा हुए थे। बड़े गम्भीर विद्वान विनोद प्रिय, शास्त्रों

के मर्मज्ञ और शास्त्रार्थ समर के सेनानी थे। पादरी जानसन को कशमीर राज्य के दरबार में शास्त्रार्थ में निरुस्त करके बड़ी कीर्ति प्राप्त की। महाकवि पं० नाथूराम शङ्कर ने इस घटना की ओर संकेत करते हुये लिखा था:-

'रौंद रौंद मारी शेखी सारी जानसन की।'

अपनी पत्नी के निधन पर उसके आभूषण महा-विद्यालय ज्वालापुर को दान कर प्राचीन तपस्वी ब्राह्मणों को परम्परा को अखण्ड बनाये रखा।

पत्नी के देहान्त के तुरन्त पश्चात् कुरुक्षेत्र में मेला सूर्य ग्रहण पर वैदिक धर्म प्रचार के लिए चल दिए। ऐसे पूज्य विप्र के उपदेशामृत से युवक गंगा प्रसाद विशेष रूप से लाभान्वित हुए पं० गणपति जी का निधन जगरांव में हुआ।

(३) महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज:- तपोनिधि महात्मा जी ने ऋषि-दर्शन तो किये, परन्तु ऋषि की अमृत वर्षा से वञ्चित रहे। श्री हरसहाय के प्रयत्न से वैदिक धर्मी वने। आप बड़े स्वाध्याय शील, परम तपस्वी, संयमी, त्यागी व कर्मशील थे। वैदिक साहित्य व आर्य समाज की जो सेवा आपने की है, वह अविस्मरणीय रहेगी। आप उ०प्र० सभा व सार्वदेशिक सभा के निर्माताओं में से एक थे।

हैदराबाद सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी थे। आर्य

समाज के हृदय सम्राट थे। सिंध सत्याग्रह के सेनानी थे।

आपने विद्यार्थी गंगा प्रसाद को लग्न को देखकर उन्हें बड़ी प्रेरणा की वह सभा के उपदेशक बन जाय। आप उपाध्याय जी से विशेष स्नेह करते थे। उपाध्याय जी भी आपके प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे।

लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रा नन्द जी महाराजः—आपका जन्म मोही ग्राम जिला लुधियाना के एक सिख परिवार में हुआ। महात्मा विष्णुदास जी उदासी सन्त की प्रेरणा से आर्य समाजी बने। निर्मोही बनकर युवावस्था में विरक्त हो गये। देश विदेश में वैदिक धर्म प्रचार किया।

बड़े तपस्वी, सिद्धान्तों के मर्मज्ञ, इतिहास वेत्ता, अखण्ड ब्रह्मचारी महाबली, भीमकाय और बलिदानी महापुरुष थे। हैदराबाद के भीषण सत्याग्रह संग्राम के विजेता नेता व सञ्चालक थे। कई संग्राम किए वह जीते। आर्य समाज को बीसियों साधु विद्वान व कार्यकर्त्ता दिये। दयानन्द मठों की स्थापना की। उपाध्याय जी आपकी सूझबूझ, प्रशासनिक योग्यता व निर्भीकता से बहुत प्रभावित थे। आपने देश के स्वाधीनता संग्राम में ऐतिहासिक योगदान दिया। असह्य कष्ट सहे। लोहारु राज्य हरियाणा में कुल्हाड़ी से लहुलुहान हुए।

(५) पं० क्षेमकरन दास त्रिवेदी जी:—आपको महर्षि के पावन दर्शन करने, ऋषि के उपदेशामृत श्रवण करने व ऋषि

का आर्शीवाद प्राप्त करने का सुयश प्राप्त था। ऋषि ने आपको मुरादाबाद आर्य समाज का एक अधिकारी मनोनीत किया। आपने अथर्व वेद का भाष्य करके बड़ी ख्याति प्राप्त की।

आप आर्य समाज चौक प्रयाग के प्रधान रहे। उपाध्याय जी भी इसी समाज के सदस्य थे और वर्षों इस समाज के प्रधान रहे। त्रिवेदी जी उपाध्याय जी से बड़ा प्यार करते थे और उनके पाण्डित्य से प्रभावित थे।

(६) श्री मदन मोहन जी सेठ :—आप बुलन्दशहर में जन्मे थे। कुशाग्र बुद्धि थे। अंग्रेजी हिन्दी के अधिकारी विद्वान व सिद्ध-हस्त लेखक थे। राजकीय पदों पर रहते हुए भी आर्य समाज की सेवा में लगे रहे। आप अंग्रेजी शासन के प्रथम जज थे जिन्होंने अपने सब निर्णय हिन्दी में ही दिये। आपने वैदिक विजयन्ती. नियम संग्रह आदि कई पुस्तकें भी लिखीं। कई वर्ष तक आप उ० प्र० सभा के भी प्रधान रहे। सार्वदेशिक सभा के भी प्रधान रहे। उपाध्याय जी के विशेष स्नेही मित्रों व सहयोगियों में से एक थे। १९५३ ई० में हृदय गति बन्द होने से आपका देहान्त हो गया।

मुन्शी प्रेमचन्द जी :—उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचन्द उपाध्याय जी के सहपाठी थे। विश्व ख्याति के कहानीकार मुन्शी प्रेमचन्द व पं० गंगाप्रसाद दोनों ही उर्दू से हिन्दी में आए। मुन्शी जी पर आर्य समाज का रंग था। आर्य समाजी श्वसुर की बातचीत व विधवा विवाह सम्बन्धी ट्रैक्ट से प्रभावित होकर

आपने बाल विधवा देवी जी से विवाह किया। आप चाहते थे कि उपाध्याय जी भी कहानी कार बनें परन्तु उपाध्याय जी ने अपने आपको ऋषि दयानन्द के मिशन की भेंट कर दिया।

जब माधुरी में उपाध्याय जी के लेखों से स्वप्नवादियों का स्वप्न टूटा था तब आप ही माधुरी के सम्पादक थे।

दो सहपाठी ख्याति प्राप्त लेखक बने, यह बड़े संयोग की बात है।

स्वामी अभेदानन्द जी :—आपका जन्म वस्ती जिला उ० प्र० का हैं। आप देश के स्वाधीनता संग्राम में कई बार जेल गये। वहुत प्रभावशाली वक्ता थे। बड़े स्नेही, बड़े विद्वान व कुशल संगठन कर्त्ता थे। बिहार सभा व सार्वदेशिक सभा के प्रधान रहे। १९५७ ई० के पंजाब हिन्दी रक्षा सत्याग्रह के सूत्रधार थे। श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय के वड़े स्नेही व सहयोगी थे। विदेश में प्रचार करते हुए इनका देहान्त हो गया।

श्री पं० रामदत्त जी शुक्ल :—आप आर्य विद्वान पं० नन्द किशोर देव शर्मा के सुपुत्र थे। वैदिक सिद्धान्तों का गहन अध्ययन था सफल वकील थे। उ० प्र० सभा, सार्वदेशिक सभा व धर्मार्य सभा के एक प्रमुख कर्णधार व अधिकारी रहे। उपाध्याय जी के एक विशेष सहयोगी व प्रशंसक थे।

स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराजः—आपका पूर्व नाम राज गुरु धुरेन्द्र शास्त्री था। स्वामी सर्वदानन्द जी के शिष्य थे। वड़े कर्मठ थे। कई वर्ष उ० प्र० सभा के प्रधान रहे। सार्वदेशिक के भी प्रधान रहे। आर्य समाज और केवल आर्य समाज के सदस्य रहे। कॉंग्रेस व हिंदू सभा के आन्दोलनों में भी जेल गये।

हैदराबाद व सिंध सत्याग्रह के एक प्रमुख सेनापति थे। उपाध्याय जी के विशेष सहयोगी थे।

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पतिः—आप हिन्दी पत्रकारिता के एक जनक थे। यशस्वी लेखक थे। मधुर भाषी थे। स्वाधीनता सेनानी थे, वीसियों ग्रंथों के लेखक थे, सार्वदेशिक सभा क प्रधान व मन्त्री रहे, गुरूकुल काँगड़ी के प्रथम स्नातकों में से एक थे, लौह लेखक श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के अग्र लेखों से अंग्रेज सरकार थर्राती व घवराती थे, उपाध्याय जी से आपका घनिष्ट सम्वन्ध था, आप उपाध्याय जी के तल स्पर्शी ज्ञान व प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित थे।

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्त्तण्डः—आपका जन्म ग्राम दुनियापुर जिला मुलतान (पश्चमी पंजाव) में हुआ, गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातकों में से एक थे, बीसियों ग्रंथ लिख गये, वेद के यशस्वी विद्वान और वहुत वड़े अनुसन्धान कर्त्ता थे, दक्षिण भारत

में अस्पृश्यता निवारण व धर्म प्रचार का अच्छा कार्य किया, उपाध्याय जी के बड़े अच्छे सहयोगी व मित्र थे, बड़े भक्ति भाव से उपाध्याय जी का स्मरण किया करते थे, आप कई वर्ष तक सार्वदेशिक सभा के उप मन्त्री व सार्वदेशिक पत्र के सम्पादक रहे।

महात्मा भगवानदीन जी, हरदोई :—आप आर्य समाज के आदि काल के एक प्रमुख विद्वान व तपस्वी नेता थे। वर्षों उ० प्र० सभा के मंत्री रहे। आप श्री उपाध्याय जी को विद्यार्थी जीवन से ही जानते थे। आपने भी महात्मा नारायण स्वामी जी के साथ गंगाप्रसाद जी को सभा की सेवा में आने के लिए प्रेरित किया। आपने आपना आर्य भास्कर प्रेस उ० प्र० सभा को देकर अपने उच्च धर्म भाव का परिचय दिया।

पं० गंगाप्रसाद जी, चीफ जज :—आप मेरठ में जन्मे। मेरठ में ही प्राध्यापक रहे। बहुत लग्नशील युवक थे। गम्भीर, विद्वान विचारक व कुशल लेखक थे। इन्हीं के नाम से अपने आपको भिन्न करने व पाठकों को भ्राँति से बचाने के लिए पं० गंगाप्रसाद जी ने 'उपाध्याय' अपने नाम के साथ जोड़ा।
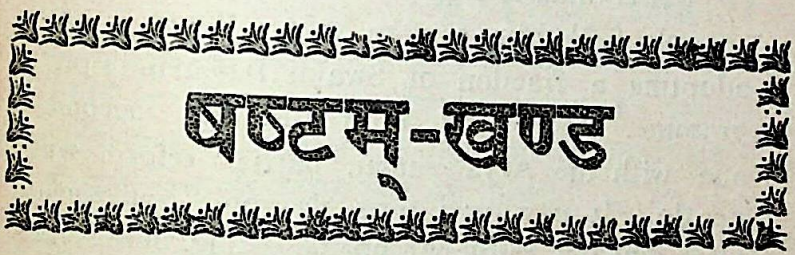
डा० सूर्यदेव जी, अजमेर :—आपका जन्म भी एटा ज़िले में हुआ। आप विद्यार्थी काल से ही उपाध्याय जी से परिचित हो गये। आप उनके बड़े प्रशंसक हैं। उपाध्याय जी भी आपकी सेवा के कारण आपका विशेष आदर करते थे।

श्री ला० सन्तलाल जी विद्यार्थी :—आप साप्ताहिक उर्दू रिफ़ार्मर के संचालक व सम्पादक थे। अब तो यह पत्रिका धार्मिक न रहकर कुछ और प्रकार ही की बन गई है। वर्षों उपाध्याय जी इनकी पत्रिका का सम्पादकीय लिखते रहे। कोई पारिश्रमिक नहीं लिया। उपाध्याय जी के कारण 'रिफ़ार्मर' बहुत लोकप्रिय हुआ और उपाध्याय जी की लेखनी की भी बहुत धाक जमी।

श्री पं० नरेन्द्र जी, हैदराबाद:—आप स्वामी सोमानन्द बन गये। स्वामी सत्य प्रकाश जी से दीक्षा ली। देश धर्म के लिये तिल तिल कर जले व मरे। बड़े ओजस्वी वक्ता, अच्छे लेखक और बड़े स्वाध्याय प्रेमी, साहित्य के रसिक थे। प्रबन्ध करने की कला में प्रवीण थे। उपाध्याय जी के बड़े भक्त थे। आपकी पुस्तक 'शहीदाते हैदराबाद' उर्दू की भूमिका उपाध्याय जी ने ही लिखी थी। परन्तु यह पुस्तक आज तक नहीं छपी। अब छपने की आशा भी नहीं। उपाध्याय साहित्य के प्रसार में विशेष सहयोगी रहे।
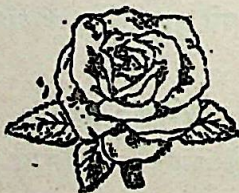
सुरभित उद्यान

"It is futile to expect that the great work of revival of Vedism can be accomplished by only adopting a fraction of Swami Dayanand's programme. Unless and until Hinduism becomes one with the Arya Samaj, partial reform will not do. It may, for a time, do some superficial work, but the result can not be lasting. Supressing the diseace is one thing and to uproot it altogether is another. The Arya Samaj means to do the latter."

[The Arya Samaj And Hinduism Page 16]

सुरभित उद्यान

स्वार्थ :—"स्वार्थ जीव को सबसे बड़ी निर्बलता है। मनुष्य में जितना स्वार्थ कम होता जाता है उतना ही वह न्याय और दया से समानार्थकता का अनुभव करने लग जाता है।"×

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः :—"यह ईश्वर की दयालुता है कि कर्म को प्रधान करके हमको उसका फल चखाया। यदि यह नियम न होता तो जगत् की क्या गति होती, वह कैसी अन्धेर नगरी होती, इसकी कल्पना करने से भी हृदय कांप जाता है। व्यवस्थापक की व्यवस्था और उसका बिना लेशमात्र स्वार्थ के संचालन यह दयालु प्रभु के लिए ही सम्भव है। अतः—तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।"❀

× 'कर्म फल सिद्धान्त' प्रथम संस्करण पृ० १०१

❀ वही पृ० ११२

न्याय क्या है ? दया क्या है ? :—"दया का दूसरा नाम ही न्याय है। क्योंकि जैसे हम चाहते हैं कि दूसरे हम पर दया करें उसी प्रकार यदि हम यह भी चाहने लगें कि हम उन पर दया करें तो यही न्याय हो जाता है। न्याय क्या है ? दया का संतुलन।"

'घबराओ मत—इतराओ मत' :—"अतः भारी से भारी अशुभ से घबराना नहीं चाहिये और न उत्कृष्ट से उत्कृष्ट शुभ पर इतराना चाहिये। अनिष्ट से घबराओ मत। इसके प्रभाव को कम करने का 'शुभ कर्मों' द्वारा यत्न करते रहो। और इष्टों पर इतराओ मत। इससे अगले शुभ कर्मों में प्रेरणा ग्रहण करो। दुःखों के निवारण के लिए अधर्म कभी न करो और सुखों में धर्म को कभी न भूलो।"

एक मर्म की बात :—"क्योंकि कर्मों का फल अगले कर्मों के स्वातन्त्रय को नहीं छीनता, अपितु आगे के शुभ कर्म पिछले अनिष्ट भोग के काठिन्य को कोमल बना देते हैं। यह परिवर्तन थोड़ा नहीं है।"

पुरुषार्थ क्या है ? :—"वस्तुतः कर्त्तव्यपरायणता पुरुषार्थ है। अन्य सब अपुरुषार्थ।"

वही पृ० ९९
वही पृ० ९६–९७
वही पृ० ९५
वही पृ० ३१

सुख दुःख किसके गुण है ? :—"आत्मा के दो लिङ्ग बताये गये हैं सुख और दुःख। परन्तु सुख और दुःख दोनों एक साथ विद्यमान नहीं रहते। आत्मा जिस क्षण सुखी है उस क्षण दुःखी नहीं और जिस क्षण दुःखी है उस क्षण सुखी नहीं इससे कुछ लोग समझते है कि सुख और दुःख दोनों आत्मा के गुण नहीं। परन्तु यदि यह आत्मा के गुण नहीं तो किसके गुण होंगे ?"❁

ऐसा कभी नहीं होताः—"परन्तु ऐसा कभी नहीं होता कि आत्मा न सुखी हो न दुःखी। दुःख जब न होगा तो सुख होगा और सुख जब न होगा तो दुःख होगा।"❁

एक मर्म की बातः—"सुख के अभाव का नाम दुःख और दुःख के अभाव का नाम सुख नहीं है। जिस वस्तु में दुःख का सर्वत्र अभाव है जैसे पत्थर उसको सुखी नहीं कह सकते। इसी प्रकार जिसमें सुख का अभाव है अर्थात पत्थर उसे दुःखी नहीं कह सकते।" 卐

जीव का भोक्तृत्वः—"यदि जीव भोक्ता न होता तो उसमें न इच्छा होती न द्वेष।"❁

❁ द्रष्टव्य 'मुक्ति से पुनरावृत्ति' पृष्ठ १०
❁ वही पृष्ठ ११
卐 वही पृष्ठ ११
❁ वही पृष्ठ १५

सच्चा ज्ञानः—"सच्चा ज्ञान तो वही है जिसमें सच्चा आनन्द और कार्य-शीलता हो। प्रायः लोग अन्ध विश्वास को भक्ति समझते हैं। इसलिए भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग तीन भिन्न-२ मार्ग मान लिये गये हैं। भक्त वही समझा जाता है जो तर्क और ज्ञान शून्य हो और किसी कार्य को न करता हो। यह भूल है।"◇

भय किससेः—"हमारी स्त्रियों को अपने सतीत्व की रक्षा के लिये हम से भय है, बन्दरों से नहीं। इसलिए प्रभु से दिव्य गुणों की माँग की गई है।" [लेखराम नगर (कादियां) में ३ मार्च १९५४ को प्रातः प्रवचन में कहा]

आर्य समाज की शोभाः—"आर्य समाज चमके। आर्य समाज फूले और फले। इससे जग चमके फूले और फले। यदि आर्य समाज चमके और संसार न चमके तो यह आर्य समाज की शोभा नहीं। आर्य समाज तो है ही संसार के कल्याण के लिए।" [४ मार्च १९५४ ई० को रात्रि जालन्धर छावनी आर्य समाज में व्याख्यान से]

विपरीत मार्गः—गलत रास्ता केवल वही नहीं जो ध्येय धाम तक न जाता हो। वह मार्ग भी ठीक नहीं जिसमें परिश्रम अधिक, समय अधिक तथा उलझने अधिक हों क्योंकि इन मार्गों पर चलने वाले बीच में ही थक कर बैठे रहते है।"]रिफार्मर १९ मार्च १९५४ ई० में 'मैं क्या चाहता हूं' ? लेख से]

◇ वही पृष्ठ २१

उत्तेजक भाषण:—"जनता को उभारने वाले वक्ताओं का दायित्व किसी मात्रा में बढ़ जाता है विशेष रूप से तब जब कि उनके भाषणों में ईश्वर प्रदत्त प्रभाव हो। इसलिए उभारना यद्यपि श्रेष्ठ कर्म है परन्तु श्रेष्ठ उद्देश्य नहीं। प्रत्येक साधन के औचित्य को केवल उद्देश्य से नहीं जान सकते विशेष रूप से जब साधन स्वल्प हों तो बहुत बचत से कार्य करना चाहिये।"

उपरोक्त लेख से

कादयानी मिर्जा और भ्रमजाल:—"कादयानी सर ज़मीन में मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहेब ने मसीह मऊद (Promised Christ) और महदी ऊलज़मान को स्वयं अविष्कृत उपाधि धारण करके पुराने अन्ध विश्वासों (Old Superstitions) को नवीन रूप दे दिया है।" [कोष्ठों में अंग्रेजी शब्द हमने दिये हैं। मार्च १४, १६५४ के रिफार्मर में 'लेखराम नगर में' लेख माला से]

विद्या का क्या लाभ:—"विद्या का अर्थ साक्षरता ही नहीं है। अन्ध विश्वास यदि बने रहे तो विद्या कैसी ?"[जीवन चक्र से]

दया और न्याय:—"दया का दूसरा नाम न्याय है। क्योंकि जैसे हम चाहते हैं कि दूसरे हम पर दया करें, उसी प्रकार यदि हम भी चाहने लगें कि हम उन पर दया करें तो यही न्याय हो जाता है। न्याय क्या है ? दया का सन्तुलन !"[कर्म फल सिद्धान्त से]

युक्ति व प्रमाण:—किसी युक्ति का प्रयोग न कीजिये जब तक उसको पूरा-२ समझ न लीजिये, और किसी प्रमाण पर विश्वास न कीजिये जब तक मूल से मिला न लीजिये।" [वेद-प्रवचन की भूमिका से]

कल्याण की भावना:—"ज्यों ज्यों पाप की भावना कम होती है कल्याण की भावना उत्पन्न हो जाती है।" [वेद-प्रवचन से]

कर्म और ज्ञान के बीच:—"देश निरुद्यम हो गया। कर्म और ज्ञान के बीच अकम्प पर्वत खड़ा हो गया। परन्तु यह पर्वत भाष्कारों की कल्पना का फल है। कर्मकाण्ड और ज्ञान काण्ड के बीच इससे व्यवधान को हटाने की आवश्यकता है।" [वेद-प्रवचन से]

उपाध्याय जी की चाहना—"कल्पना कीजिये कि मैं मरकर अरब में पुनर्जन्म लूँ तो वहाँ आवैदिक इस्लाम का प्रचार पाऊँगा और अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के प्रावल्य के आधार पर यदि वैदिक जीवन व्यतीत करना चाहूँ तो कितनी कठिनाई होगी परन्तु यदि इस पीढ़ी में वहाँ वैदिक धर्म का प्रचार हो जाए तो मुझे कितनी सुविधा हो।" [वेद-प्रवचन से]

हिन्दी अंग्रेजी :—"वस्तुत: अंग्रेजी भाषा में वह आन्तरिक क्षमता न थी कि वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहलाई जा सकती।

इतना मान उसको अंग्रेजी के उत्साह और परिश्रम से मिल सका। हिन्दी में अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक क्षमता है, इसकी लिपि सबसे अधिक वैज्ञानिक है।"

[जीवन-चक्र से]

प्राचीन गुरुकुल :—"प्राचीन काल में गुरुकुल और पाठशालाओं के लिए कोई कोष स्थापित नहीं किए जाते थे। क्योंकि वास्तव में इसकी आवश्यकता ही न होती थी। गुरुकुलों में पढ़ने वाले लड़के अपने माता पिता से दूर होते हुए भी यह न समझते थे कि हम घर से दूर हैं क्योंकि खाने के लिए जिस गृह पर पहुँच गये उसी से खाने को मिल गया।" [आर्य मुसाफिर उर्दू मासिक अक्तूबर १९०८ ई० में प्रकाशित सिवलाईज़ेशन लेख से]

धर्म सनातन है :—"धर्म और धार्मिक प्रथाओं में भेद है। धर्म सनातन है। प्रथायें क्षणिक है।

[वेद प्रवचन से]

प्रभु की महती कृपा :—"यह प्रभु की महती कृपा है कि चोले के जीर्ण होने पर दूसरा चोला मिल जाता है।" [वेद प्रबचन से]

अंधेरी रात और चोर :—"चोर अंधेरी रात को प्यार करता है परन्तु यदि रात अंधेरी ही रहे तो चोर का रहना भी कठिन हो जाए कठोर से कठोर शासन को लोग दीर्घकाल तक सहते रहते हैं परन्तु एक घन्टे की अराजकता में त्राहिमान् २ होने लगता है।"

[वेद प्रवचन से]

भारतीय दर्शन व देव माला :—"यदि उपनिषदों के ही आत्म-विज्ञान या ब्रह्म विज्ञान पर गूढ़ विचार किया जाए तो एक बात स्पष्ट हो जाती है। अर्थात् भारतीय दर्शन देवमाला (Mythology) से आरम्भ नहीं होता किन्तु भारतीय देवमाला उस समय उत्पन्न होती है जब दार्शनिक विचार विस्मृत हो जाते हैं। दूसरों शब्दों में यह कहना उपयुक्त होगा कि यूनान के दर्शन-शास्त्र की जननी वहां की देवमाला है। परन्तु भारतीय देव-माला भारतीय दर्शन की चिता पर उपजी है और जब जब भारतीय दर्शन ने पुनर्जन्म ग्रहण किया तब तक देवमाला का ह्रास होता गया।" [झाँसी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आयोजित दर्शन परिषद में ३०–१२–१९३१ ई० को अध्यक्ष पद से दिये भाषण से]

ऋषि दयानन्द और वेद-मर्यादा :—'प्रार्थना समाज और ब्रह्म समाज के लोगों से स्वामी दयानन्द का मतभेद वेदों की प्रामाणिकता पर था। वह लोग इस मर्यादा को स्वतन्त्रता के पथ में बाधक समझते थे स्वामी दयानन्द देख चुके थे कि मर्यादा रहित स्वतंत्रता उच्छृंखलता का रूप धारण कर परतंत्रता से भी अधिक हानिकारक सिद्ध होता है।"

वेदों वाला ऋषि :—[राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन, दयानन्द से] "वेद हिन्दी और स्वदेश प्रेम की शिक्षा देकर स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज को सार्वदेशिक बना दिया।"

[राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन दयानन्द से]

बाधायें एवं प्रलोभन :—"कुछ बाधायें, बाधाओं के रूप में आती है और कुछ प्रलोभनों के रूप में। जो शत्रु शत्रु बनकर सामने आता है उससे रक्षा करना सुगम है। परन्तु जो मित्र बन कर आता है उससे बचना अत्यन्त कठिन है। मनुष्य की सबसे बड़ी कमी यह है कि वह शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु समझ बैठे।"

[वेद प्रवचन से]

प्रेम:—प्रेम भी एक सूक्ष्म भोजन है जो मनुष्य के स्वभाव को बनाता है।

[वेद-प्रवचन से]

दर्शन ज्ञान:—परन्तु जिस प्रकार मेरी टोपी को देखकर आप मेरे दार्शनिक विचारों का पता नहीं लगा सकते, उसी प्रकार पुरानी जातियों के मिट्टी के घड़े, सोने, चाँदी के आभूषण, भवनों की ईंटों से उनके दर्शन ज्ञान का पता चलाना कठिन है।"

[गंगा-ज्ञान-धारा से]

विनाश का पथ:—"मत समझो कि चार रुपये में दस का माल मिल गया तो तुम लाभ में हो। यह मुफ्त के छः रुपये जिसको तुम लाभ समझते हो अन्त में तुम्हारे नाश का कारण सिद्ध होंगे।"

[वेद प्रवचन से]

यदि चोर अधिक हो जावें:—"यदि चोरों की संख्या बढ़ जाये तो चोर भी तंग आ जाएँ।" [वेद प्रवचन से]

वैदिक शिक्षा की विशेषता:—"वैदिक शिक्षा की एक

विशेषता यह है कि वह 'आकस्मिक रचना' का खण्डन करती है।" [सन्ध्या-क्या ? क्यों ? कैसे ? से]

मन की एकाग्रता:—"मन को एकाग्र करने का सबसे बड़ा साधन है विचार। स्वामी दयानन्द ने एक स्थान पर लिखा है कि ईश्वर के गुण तो इतने अनगिनत हैं कि उसके विषय में सोचते सोचते मन थक जाएगा। मन के लिए विचार की आवश्यकता है। विचार करने की आदत डालिए।" [संध्या-क्या? क्यों ? कैसे ?से]

यह ज्योतिषी लोग:—"लोग जितना श्रम और धन ज्योतियों पर लगाते हैं उतने से वह अपना और जगत का बहुत उपकार कर सकते है।" [उपदेश सप्तक से]

मुक्ति से पुनरावृत्ति:—"जो मनुष्य कौड़ी-२ जोड़ने की दशा में तो दान करता था परन्तु परमकोष का स्वामी होकर दान को भूल जाय उसको प्रशंसा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। यदि मुक्ति में पहुँच कर कोई जीव ऐसा सोचता है कि अब तो परम आनन्द के भण्डार के ऊपर बैठे हैं हमको किसी की क्यों पड़ी, तो ऐसे स्वार्थी को स्वार्थ के अपराध में ही मुक्ति से निकाल कर नीचे फेंक देना चाहिये। वह उस संसार में रहने के योग्य है जहाँ प्रत्येक जीव आपाधापी में लगा हुआ है मोक्ष जैसी सर्वोत्कृष्ट अवस्था तो और ही प्रकार की होनी चाहिए।" [मुक्ति से पुनरावृत्ति]

व्यक्ति और समाज:—"व्यक्ति का नाश पहिले आरम्भ

होता है या समाज का। इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। कभी रोग व्यक्ति से आरम्भ होता है और कभी समाज और कभी दोनों से युगपत।"

[कम्यूनिज्म से]

सबसे निकृष्ट कर्म:—"संसार में सबसे बुरी चीज अविद्या में फँसकर लोग जड़ पदार्थों को ईश्वर समझ बैठते है।"

[धर्म-सुधा सार से]

ऋषि की कृपा:—"ऋषि दयानन्द ने जिसके हृदय को खोल दिया उसके हृदय में अन्य दोष भले ही रह जाये पर अन्ध श्रद्धा नहीं रह सकती।" [उपाध्याय जी का लेख 'आर्य' साप्ताहिक वैशाख १९८८ वि०पृ० ४१ से]

परमात्म-दर्शन की सीढ़ी:—"परमात्म-दर्शन की यह पहली सीढ़ी है कि उसकी बनाई हुई वस्तुओं का निरीक्षण किया जाये।"

[वेद प्रवचन से]

गृहस्थ एक शिक्षणालय :—"गृह एक उत्तम शिक्षणालय है। और परीक्षणालय भी।" [प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु के विवाह पर सन्देश में]

संस्कृति-सदन :—"हमारा अभौतिक जीवात्मा छोटे से छोटे कीड़े और बड़े से बड़े हाथी के शरीर में समा सकता है। हमारे शरीर उपवन की क्यारियों के समान होते हैं जिनमें हमारी बीज शक्तियाँ

विकसित होती हैं। निस्सन्देह हमारे शरीर हमारे संस्कृति-सदन होते हैं।" [वैदिक संस्कृति से]

बुरे भले का भाव :—"कोई काम बुरा या भला, इसका भाव सबसे पहिले आत्मा में ही उत्पन्न होता है।" [वैदिक संस्कृति से]

मैं और मेरा भगवान :—"वैदिक आस्तिकवाद की एक और विशेषता यह है कि प्रत्येक आत्मा का परमात्मा के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। मेरे और मेरे परमात्मा के बीच में कोई मध्यस्थ नहीं हैं। जब परमात्मा मेरे हृदय में हैं तो अन्य किसी की उपेक्षा मेरे अधिक निकट है।" [वैदिक संस्कृति से]

वर्तमान युग :—"वर्तमान वैज्ञानिक युग का सबसे बड़ा दोष है पशुओं की अवहेलना। यंत्रों के आधिक्य ने पशुओं के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा।" [वेद प्रवचन से]

बुद्धिमान मूर्ख :—"संसार में बहुत से ऐसे मूर्ख विद्वान हैं (Learned Fools) हैं, जिनके नाश का कारण उनकी विद्या है। बुद्धिमान थोड़ी विद्या पढ़कर कितना लाभ उठा सकता है उतना मूर्ख वेदज्ञ नहीं ?" [वेद प्रवचन से]

भारत क्यों आरत हुआ:—"एक ओर बाल की खाल निकालने वाले दार्शनिक धुरंधर उत्पन्न हुये, दूसरी ओर अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित लोग धावा बोलते रहे। क्योंकि जो अपने को ज्ञानी और दर्शनकार समझते थे उनको जगत् की वास्तविकता पर

विश्वास न था ।" ❁

(वेद प्रवचन से)

सत्यनिष्ठ लोग:-"सत्यनिष्ठ लोग दरिद्र देश को भी श्री सम्पन्न बना देते है और असत्यनिष्ठ लोग सम्पन्न देश की सम्पदा को भी नष्ट कर देते हैं।"

(वेद प्रवचन से)

ईश्वर का दन्ड और ईश्वर की दया:- "यह दुःख है जो मनुष्य को पाप से बचाता है। यदि पाप का परिणाम दुख न होता तो पुण्य की उन्नति कैसे होती ? अच्छे राजा के राज में यदि जेल खाने या दन्डालय उपस्थित हैं तो उनका कारण राजा की निर्दयता नहीं किन्तु सदयता है।"

जिस प्रकार सब दण्डों के अभाव में अराजकता आ जाती है उसी प्रकार सब प्रकार के दुःखों के अभाव में उन्नति कम हो जाती है।"

(आस्तिकवाद से)

प्रार्थना का प्रायोजन :--"प्रार्थना है आत्मा को ईश्वर तक उठाने के लिए न कि ईश्वर का आत्मा तक उठाने के लिए।"

(आस्तिकवाद से)

सुरा से दुःख निवृत्ति :-- "यदि शराब में दुःख दूर करने की शक्ति होती तो शराब की दुकान से तो दुःख कोसों दूर रहा करता। परन्तु शराबियों से पूछो कि दुःख किस प्रकार अपनी

समस्त सेना के साथ उन पर आक्रमण करता है और उनका पीछा नहीं छोड़ता।"

मनुष्यकृत वस्तुएँ और ईश्वरीय सृष्टि :— "गम्भीर दृष्टि से देखा जाए तो बुद्धिमान से बुद्धिमान मनुष्य की कारीगरी सृष्टि की कारीगरी का सहस्रांश भी नहीं है, जो सम्बन्ध गागर का सागर से है वही मनुष्यकृत वस्तुओं को अमानुषी वस्तुओं से है।"

(आस्तिकवाद से)

व्याकरण से दो परिभाषाएं :— "सर्वनाम की वास्तविक परिभाषा यही है कि जो शब्द सब वस्तुओं का नाम हो सके उसे सर्वनाम कहते हैं।" "सर्वनाम शब्द का अर्थ भी यही है कि सबका नाम हो।"

(उपाध्याय जी की प्रथम पुस्तक हिन्दी व्याकरण से)

अलंकार :— "जो भाषा को शोभा बढ़ावे उसे अलंकार कहते हैं। जिस प्रकार आभूषणों से शरीर की शोभा कई गुणी बढ़ जाती है उसी प्रकार अलंकारों से भाषा में अधिक लालित्य आ जाता है।"

(उपाध्याय जी लिखित उनकी प्रथम पुस्तक हिन्दी व्याकरण से)

स्त्रियों के अधिकार तथा वेद मन्त्र :— "जो पंडित हैं और विवाह संस्कार कराया करते हैं यदि वे देखें कि संस्कार विधि के

सिद्धान्त के विरुद्ध हो रहा है किंवा स्त्रियों के अधिकारों का हनन होने की आशङ्का है तो वे इन पवित्र मन्त्रों को कदापि ऐसे विवाहों में बोलकर अपवित्र न करें।" ('आर्यसमाज और हक्के नसवां' लेख से, 'आर्य मुसाफिर' अगस्त १९१२ ई० में प्रकाशित)

मैं की खोज :-- (जो "मैं" का अर्थ समझने का यत्न नहीं करते उनका उदाहरण उस मनुष्य के समान है जो किसी जंगल में बड़े वेग से दौड़ रहा है। लोग पूछते हैं, तुम कौन हो ?" वह कहता है, मैं नहीं जानता।" लोग पूछते हैं, "तुम कहाँ को जाओगे ?" वह कहता है, । मैं नहीं जानता ।' ऐसे पुरुष के विषय में आप क्या कहेंगे ? यही न कि वह पागल है ? इसलिए जो इस लोग "मैं" तत्व के खोजने वालों को बुद्धि-शून्य समझते हैं उनकी बुद्धिमत्ता में यदि सन्देह किया जाय तो किसी प्रकार अनुचित न होगा।]

(जीवात्मा से)

शरीर और आत्मा :--"यदि शरीर न होता तो पीडा न होती और यदि केवल शरीर होता तो भी पीड़ा न होती और यदि शरीर भी होता और आत्मा भी होती और इन दोनों में कोई सम्बन्ध न होता तो पीड़ा न होती।"

(जीवात्मा से)

नशा और चेतना :-- 'यदि शराब विना चेतना के नशा पैदा कर सकती तो मुर्दे के मुँह में शराव डालने से भी नशा हो जाता।

(जीवात्मा से)

स्मृति-मस्तिष्क व मैं :— यदि मैं कलम के विना नहीं लिख सकता तो इनका यह अर्थ नहीं है कि मैं कलम से अलग एक स्वतन्त्र लिखने वाला नहीं हूँ केवल कलम ही लिखने वाला है। इसी प्रकार यदि मैं मस्तिष्क रूपी उपकरण के बिना याद नहीं रख सकता या अच्छी तरह याद रखने के लिए अच्छा मस्तिष्क ही चाहिए तो इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि मस्तिष्क ही याद रखने की घटना की मीमांसा करने के लिए पर्याप्त है।" (जीवात्मा से)

पुनर्जन्म एक व्यवस्था :— "वहुत से लोगों को पुनर्जन्म का सिद्धान्त भूल भुल्लयां प्रतीत होता है। परन्तु ऐसे लोगों की दृष्टि स्थूल है। वह यह नहीं जानते कि इस प्रकार सृष्टि के समस्त व्यापार ही भूल भुल्लयां हैं। छोटे बच्चों के लिए तो नगर की चौड़ी चौड़ी सड़क भी भूल भुल्लयां हो सकती है। वह प्रायः उनके चक्र में आ जाते हैं। परन्तु जिसने नगर का प्लान वनाया या जिसने प्लान का अध्ययन किया उसके लिए भूल भुल्लयाँ नहीं है। (जीवात्मा से)

सृष्टि की जटिलता व मानव बुद्धिः—जहाँ ईश्वर की सृष्टि जटिल है वहाँ ईश्वर ने मनुष्य को जटिलता के समझने की प्रवृति और योग्यता भी दी है।" (जीवात्मा से)

पुनर्जन्म और पशुओं की सन्तान :— आधुनिक विकासवाद ने, जिसका कई अर्थों में डार्विन को पिता कहना चाहिए, मनुष्य

जाति की एक बड़ी सेवा की है अर्थात् उसने पशु पक्षियों और कीट पतंगों का मनुष्य से सम्बन्ध जोड़ दिया है। इससे पहिले कोई और अब भी पुनर्जन्मवादियों से ठट्टा किया करते थे। वे कहते थे कि क्या हम पशु थे? क्या पशु हो सकते हैं? यह शाब्दिक घृणा अब कम हो जानी चाहिये क्योंकि डार्विन के कथनानुसार हम यदि पशु नहीं तो पशुओं की सन्तान तो अवश्य हैं। आज के वैज्ञानिक पशुओं को अपना पूर्वज कहते हुये सुकचाते नहीं। हमारे बागों में रहने वाले पूर्वज (Our areborcal ancestors) एक प्रचलित वाक्य हो गया है।"

[जीवात्मा से]

पशु भोग योनि क्यों? :-- "परन्तु जब हम पशुओं को भोग योनि कहते हैं तो इसका तात्पर्य यह होता है कि उनकी बुद्धि का विकास उस सीमा तक हो पाया है कि उन पर आचार शस्त्र का बोझ डाला जा सके।" (जीवात्मा से]

जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध :-- "देश और काल की अपेक्षा ब्रह्म सर्वज्ञ है। जीव भोक्ता है और ब्रह्म भोक्ता नहीं। जीव और ब्रह्म में एक विचित्र आकर्षण शक्ति है। ब्रह्म जीव पर दया करता है और जीव बिना ब्रह्म के आनन्दित नहीं हो सकता। इसलिए जीव में आन्तरिक प्रवृत्ति होती है। उसकी प्रेरणा से शान्त जीव अनन्त ब्रह्म की ओर दौड़ता है इसी दौड़ में उसे आनन्द मिलता है।" (जीवात्मा से)

प्रभु हमारा और हम प्रभु के :-- "तत्वमास्माकं तव स्मसि" ※ तू हमारा और हम तेरे हैं। इस सम्बन्ध की पराकाष्ठा है। यहाँ सब उपमायें समाप्त हो जाती हैं। इससे अधिक क्या कहना चाहिये समझ में नहीं आता।" [जीवात्मा की अंतिम पक्तियाँ)

यदि पुनर्जन्म नहीं :-- "यदि पुनर्जन्म नहीं होता तो ऐसे प्राणियों की उत्पत्ति क्यों हुई ? जो एक या दो दिन के होकर या गर्भ में ही मर गये ? इनके जीवन का क्या प्रयोजन है ? इनको नरक मिलेगा तो क्यों ? और स्वर्ग मिलेगा तो क्यों ?" (पुनर्जन्म से)

कलियुग को दोष :-- "कलियुग या किसी युग को दोष न दो अब भी कोशिश करने से तुम और तुम्हारा देश उच्च हो सकता है।" (कलियुग से)

आज की गुरु शिष्य प्रणाली :-- "एक समय था जब गुरु परम्परा इसलिये थी कि मनुष्य ज्ञानी होकर अपना और संसार का लाभ करें। परन्तु आज गुरु परम्परा एक प्रकार की गडरियों की परम्परा है जिसका एक प्रयोजन यह है कि संसार के मुनष्य भेड़ों के सदृश होकर अपने गडरियों के पीछे चला करें। (गुरु महात्मय से)

※ दृष्टव्य ऋग्वेद ८-९२-३२

—:o;—

Concepts And Precepts of Pt. Ganga Prasad Upadhyaya

This collection will enrich your mind and enlighten your soul. Forceful pen of master mind and distinquished philosopher will help our dear readers to understand the fundamantals of Vedic philosophy.

Untouchability and downfall of India:–"The supremacy of birth which led to untouchability and many other evils was an outcome of priestly arrogance, and was to a great extent responsible for the downfall of India."1

Mediatars:– "In order to attain God, a soul did not require the mediation of any Guru, prophet or incarnation. The preceptors only helped as guides in adopting the measures necessary."2

1. Arya Samaj Introduced–Page 7.
2. Arya Samaj Introduced–Page 7.

Pandits of Kashi and Rishi Dayananda:–"It was seven times that he went to Kashi & at each time he threw guantlet openly yet nobody had the courage to meet him at the face. The more they thought, the more conscious they became of their weakness. The more he pounded, the stronger he felt."1

Feality of God:– "The well known passage of Chhandogya Upnishat while emphasising, the reality of God very appropriately argues कथ असत: सदजायेत् 'How can the real come out of unreal ?' Which means, that the universe is real and therefore it should have a real cause. Had it been असद् or unreal, there was no need of postulating the existence of a real cause. "2

God is all happiness:–"Though all powerful, God is not an object of terror. Anand Swrup which is one of the epithets of God means all happiness. Even the punishment He deals out for

---

1. Arya Samaj Introduced–Page 8.
2. Arya Samaj Introduced–Page 10.

our sins or short comings is meant to so purify our innerself as to enable us to realise that great love."1

Prayer:- "Prayers are not the praises of God in order to please or flatter Him. They are the contemplation of His attributes that our minds be changed and our spirits be ennodled. They are a sure means to the steady evolution of the soul."2

The prophets and their Miracles:- "The history of different relegions says that founders of these religions come to world with miracles in their hands. The call them signs, signs to show that they are God-sent. They claim for themselves peculiar methods of birth and death. The appearance of certain stars is made to heraid their advent. Earthquakes, storms or famines are alleged to come in their company.................................
Unfortunately we find that most religions have threvin on the soil of superstition. They are

1. Arya Samaj Introduced–Page 11.
2. The Five Great Sacrifices of the Aryas– Page 8.

thriven even now upon that very soil. Religious founders found superstition the shortest cut to their eminence. "1

Divine Tyrants:— "Of the tyrants the most formidable are those who claim divinity for themselves."2

Teachings of Christ and Christianty:- "No matter how grand the teachings of Jesus Christ were, the custodians of Christianty attach much less significance to them than to those pieces of superstition which fail to appeal to a rationalistic mind."3

Miracles And God:- "If there are miracles, there is no such thing as God."4

Come Forward:- "There are methods of avoiding cheats in our daily life, Similar methods

1. Between Man And God–Page 15.
2. Between Man And God.–Page 15
3. Between Man And God–Page 6
4. The Claims of the Arya Samaj–Page 6

should be applied in case of religious cheats also. If people donot come forward for this bold step, the only alternative is that false prophets and false gurus will ravage the words with impunity."1

The Day will come:–"The Arya Samaj hates none. It invites even the meanest man the Vedas. There will come a day when the whole mankind will feel beholden to the great Rishi Dayananda who saved the Vedas from being forgotten and man from being deperived of this greatest boon."2

Fair Bright Happy Days: –"This philosophy though inherent in the Vedas and Upanishads was long forgotten & underwent many deteriorations in the hands of various interpreters. It has, happily found a great exponent in Swami Dayananda, who has cleared the fog and brought the view to its full effulgence. If every man is brought to this attitude of mind, the result will as follows.—

(I) No body would regard this world as an abode of

---

1. The Great Bugbtear of The Age-Page 16
2. Shudhi-Page 16

misery.

(2). No body would lay the fault of his miseries at the door of God.

(3) No body would be a devotee to a mere name.

(4) No body would afford to be idle.

(5) Every man would look upon selfishness at the cause of his ruin.

(6) He will not regard Science and Philosophy as atheistic and sinful.

(7) He would regard other souls also as his own kith and kin.

(8) He would injure none.

(9) He will not regard the world as a gambling house and will not depend upon fate.

(10) He would try to prolong his life and the life of others.

(11) He would follow the laws of nature implicitly.

(12) He will have a firm faith in the existence of God.

(13) He would not regard himself as a toy of God.

(14) He would depend upon his own self.

(15) If he gets pain, he would understand the value of pain and will not be lost in grief."1

Selected & Collected by:–

'Rajendra Jigyasu'

Philosophy of Dayananda–:"He has given us a bold philosophy of the reality of God, reality of man and reality of the Universe in which man has to work."2 "His is a philosophy of bold actions and not of idle musings."

Our Quarrels:–"We have always tried to be

1. The World As We View It–Page 19-20.
2. Swami Dayananda's Contribution To Hindu Solidarity Page-162

peaceful and fair. But there are others who grudge us our existence and our fault is that we cannot allow oureselves to die so easily."1

Sin And Sinner:–"The Arya Samajic View is that God does not create sin nor creates the sinner. The sinning soul is eternal and uncreated."2

Worship:–Worship according to the Arya Samaj in not expiatory, but purificatory."3

Definite Creed :–"It says that unless, we have a definite creed, we can neither convert new members nor retain older ones. To pull down our walls means to demolish our house."4

Idolatory:–"A great majority of religious evils can be laid at the door of idolatory."5

Rise And Fall of a Nation:–"The ancient Aryas did not rise without cause and the present Hindus did not fall without cause. The difference

---

1, 2, 3, 4, 5. The Origin, Scope And Mission of the Arya Samaj Page 141, 51, 54, 134, 38

lay in their character."1

Monism And Senses:–"But what about senses? Do they exist ? Do our cheats exist ? If they do not, what is this talk of cheating about ? No cheats, no cheating."2

Common Parentage And Aryan View:–"By denying a common parentage all men, it has been shown that men are related to each other not on account of their having been born from one parent but because souls are social by nature.3"

It God is the only Eternal:–"Instead of saving all-knower, all-present and all-powerful, you should say nothing-knower, nothing pervades and possessor of no power. What did he know when there was nothing ? Where was He present when there was none to compare with."4

A Perfect World:–A world perfect in all respects, without leaving anything for the souls to do, would surely have been a very inperfect world

---

1, 2 Philosophy of Dayananda Page 791, 46
3, 4 Philosophy of Dayananda Page. 785, 118

from the point of view of the souls and their freedom. The most beautifully and correctly printed book is surely a very bad note-book for a school pupil, because it leaves nothing for him to do."1

Devotion Minus Sense:-I am nothing and God is everything is the humble devotee's cry. But this is devotion minus sense. We forget that if we are nothing and God is everything then God is creator of nothing and ruler over nothing."2

Theism And Orderliness:-"A belief in God means a belief in the precise orderliness of the universe and in the strict subordination of souls to the laws of nature."3

Superstition & Fraud:-"Superstition's mother is wonder and nurse fraud. Wonder means helplessness to understand."4

Ignorance :- Ignorance does not only mean absence of knowledge. It also means incorrect knowledge, something

---

1, 2 Reason And Religion Page. 96, 44

3, 4, Superstition Page. 27, 5

which is directly opposite to knowledge.' ×

Purest Gem In The Light Of Truth :– "If you compare the pleasure and pain of the world, happiness many times exceeds pain, and many pure souls earn bliss of salvation by constant practice of virtuous action."- - - - - - - This sentence has always appeared to me as the purest gem in the whole literature created by Swami Dayananda. it makes his philosophy distinctly optimistic. It assuages the rigour of the present life and makes the future hopeful. It illumines our present as well as our future.. It makes journey comfortable and the end inviting.'

Form One Of The First English Booklet By Upadhyaya Ji The Vedas The Earlist Book– "The Vedas being the earliest literature that man possesses every word of them ought to be taken in its etymological sense."

Love And Lust:-- Physical satisfaction can be bought, but not love. Love is above price."1

"True love is not lust at all."2

Social Reconstruction By Budha And Dayananda Page. 119

Deities Page 12./1, 2 Marriage And Married Life P. 136. 17

× Superstition Page. 2

परिशिष्ट

'युग ने उन्हें पहिचाना नहीं' :– श्री पं० मुरालीलाल जी शास्त्री हिसार ने श्री प्रा० रामविचार जी से कहा कि श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय इस युग के पं० गुरुदत्त विद्यार्थी थे परन्तु युग ने उन्हें पहिचाना नहीं।

इन पंक्तियों के लेखक का यह मत है कि जहाँ तक पहिचान का प्रश्न है श्री पं० मुरारीलाल जी का मत जँचता नहीं। आर्य सामाजिक पत्र, पत्रिकाओं की फाइलें इस बात की साक्षी हैं कि समाज के बड़े से बड़े विद्वान ने भी इस महान मनीषी के पाँडित्य व साहित्य साधना के लिए उनका सम्मान किया।

उनकी इच्छा थी :– अन्तिम दिनों में वह षडदर्शनों का भाष्य करना चाहते थे। वह वैदिक सिद्धान्तों व पौराणिक मत, आर्य समाज व इस्लाम पर तुलनात्मक साहित्य सृजन का विचार रखते थे। बीज रूप में इस दिशा में वह कुछ कार्य कर भी गये।

उनकी 'सनातन धर्म' पुस्तिका, आर्य समाज और इस्लाम इस दिशा में आरम्भिक प्रयास कहे जा सकते हैं।

प्रा० रामविचार जी से स्नेह के कारण रोष :–
श्री रामविचार जी १९६४ ई० में जब तीन सप्ताह के लिए उनके पूज्य चरणों में कुछ सीखने गये तो आर्य समाज चौक ने उनके तीन प्रवचन करवाए। पं० जी तक इन प्रवचनों के प्रभाव की चर्चा पहुँची तो वह बड़े प्रसन्न हुए। श्री रामविचार

जी को अपने समाज के लिए एक सप्ताह देने का आग्रह किया। रामविचार जी को ब्राह्म महाविद्यालय हिसार में अपने कार्य को सम्भालने के लिए लौटना आवश्यक था। वह रुक न सके। पूज्य उपाध्याय जी ने इस पर रोष भी प्रकट किया।

विद्वानों व नेताओं के प्रति :— श्री रामविचार जो बताते हैं कि उपाध्याय जी वेद भाष्यकार पं क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। वह कहते थे कि मुझे त्रिवेदी जी की व्युत्पत्तियाँ बहुत भाती हैं।

कहते थे पं रामचन्द्र जी देहलवी का तर्क बहुत प्रभावशाली होता है।

स्वामी दर्शनानन्द जी की विद्या व सूझ से तो वह प्रभावित थे परन्तु उनकी कार्यशैली के बारे में कहते थे कि उनका कोई कार्य क्रमबद्ध नहीं होता था।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की कार्य पद्धति की प्रशंसा करते हुये कहते थे कि उनका प्रत्येक कार्य क्रमबद्ध हुआ करता था।

श्री महात्मा हंसराज जी के कार्य व साधना की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। महात्मा हंसराज उपाध्याय जी को लाहौर लाना चाहते थे परन्तु वह प्रयाग नहीं छोड़ सके। महात्मा जी की चाह थी कि वह लाहौर आकर साहित्य सृजन करें।

महात्मा नारायण स्वामी जी के लिए उनके मन में बड़ी श्रद्धा थी। श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी के सम्बन्ध में आपने लिखा है कि उनमें दूर तक देखने व गहरा सोचने की शक्ति थी।

श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी की हिन्दी सत्याग्रह में जब धूम मची तो उपाध्याय जी की पैनी दृष्टि ने यह देख लिया कि इस साधु में निर्भीकता व आन्दोलनकारिता ये दो विशेष गुण हैं। उन्होंने श्री रामविचार द्वारा उन्हें सन्देश भेजा कि मुसलमानों की शुद्धि का कार्य हाथ में लें परन्तु, स्वामी जी इस कार्य क्षेत्र में न उतरे। उनके गुरुकुल के श्री धर्मवीर शास्त्री का उत्तर था कि यह कार्य सभाओं का है। स्वामी जी तो परोपकार के कार्यों में लगे ही रहते हैं।

संस्कृत भाषा का सरलीकरण :— वह देव वाणी का सरलीकरण चाहते थे। वह चाहते थे कि सूत्र रटवाने की बजाए हिन्दी भाषा में ही नियम स्मरण करवाये जावें। यदि वह महान शिक्षा शास्त्री व अद्वितीय लेखक संस्कृत शिक्षण पर भी एक ग्रंथ लिख देते तो बड़ा उपकार होता।

यदि मुल्लां जी का बस चलता:—इस्लाम के दीपक की आलोचना करते हुये एक मुल्लाँ जी ने लिखा था कि "यदि हमारा वस चले तो इसके लेखक को कोड़े लगवाएँ जाएँ। यह बात श्री उपाध्याय जी ने रामविचार जी को बताई। इसी पुस्तक में आपने लिखा है कि यदि मेरा जन्म अरब देश में होता तो मैं भी मुहम्मद साहब का शिष्य बनता।

जब हापुड़ में इस पुस्तक की चर्चा चली तो श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी व ठाकुर अमर स्वामी जी (पूज्य अमर स्वामी जी) ने कहा कि "इतना लिख देने पर भी मुसलमान उनसे प्रसन्न नहीं होंगे।" और हुआ भी वैसा ही।

'बेटा सत्य प्रकाश तुम्हारे पास वह कला नहीं'—पहले भी लिखा जा चुका है कि प० जी अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री डा० सत्य प्रकाश जी पर बड़ा गर्व किया करते परन्तु सत्य प्रकाश जी की खरीदी हुई वस्तु की आलोचना करते तो डा० साहब कहते कि मैं तो भली भाँति देखकर लाया हूं तो उपाध्याय जी कहा करते थे "बेटा विश्व प्रकाश जी को वस्तुएँ क्रय करने की जो कला आती है, वह तुम्हारे पास नहीं है।"

'जैसा गुरु वैसा शिष्य'—जब राम विचार जी उनके श्री चरणों में अध्ययन करने गये तो एक दिन राम विचार जी ने उन्हें बताया कि मैंने मैट्रिक करने के पश्चात् एक प्राथमिक शाला में अध्यापन कार्य आरम्भ किया तो उपाध्याय जी बोले जैसा गुरु वैसा शिष्य। आपने कहा मैं भी कभी प्राथमिक स्कूल का अध्यापक था।

'साहित्य का सृजन करो'—श्री राम विचार जी ने जब दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के भवन निर्माण की चर्चा छेड़ी तो श्री उपाध्याय जी ने कहा कि "भवन-निर्माण की अपेक्षा हमें जनता में साहित्य का प्रचार करना चाहिये।"

अपने ज्येष्ठ पुत्र के सम्बन्ध में—रामविचार जी बताते हैं कि वार्तालाप के मध्य जब उपाध्याय जी अपने ज्येष्ठ पुत्र डा० सत्यप्रकाश की चर्चा करते थे तो उनके शब्दों से एक प्रकार के गर्व की अनुभूति होती थी। वह कहा करते थे कि वह मुझसे कहीं अधिक अनुसन्धान कर्त्ता हैं। सत्यप्रकाश जी की पितृ भक्ति का उदाहरण देते हुये उन्होंने रामविचार जी को बताया कि "सत्य प्रकाश जी ने मेरे नाम बैंक में खाता खुलवा रखा है। प्रति मास कुछ रुपया उसमें डाल देते हैं ताकि आवश्यकतानुसार मैं उससे निकलवा सकूँ। मुझसे पूछते भी रहते हैं कि और आवश्यकता तो नहीं है।"

उपाध्याय जी को इस बात की विशेष प्रसन्नता थी कि उनका सुयोग्य सुपुत्र इस बात को अनुभव करता है कि जब पिता कमाने के योग्य न रहे तो उसके जेब खर्च व अन्य आवश्यकताओं के लिये कुछ चाहिये। पितृ भक्तों का इतिहास कोई लिखे तो उसमें उपाध्याय जी और सत्य प्रकाश जी दोनों की चर्चा स्वर्ण अक्षरों में करने योग्य है।

अब मैं क्या बोलूं ? :—प्रयाग में श्री रामविचार जी का प्रथम व्याख्यान "क्राँतिकारी दयानन्द' विषय पर हुआ। रामविचार जी के पश्चात श्री उपाध्याय जी को कुछ बोलने के लिये कहा गया। वह बोले इतने ओजस्वी व्याख्यान के पश्चात् मैं क्या बोलूँ ?

इस वाक्य से उनकी गुण ग्राहकता व विनम्रता दोनों प्रकट होती हैं।

'ऐसा करना ठीक नहीं'—राम विचार जी आर्य समाज मन्दिर चौक प्रयाग से उनके घर जाते तो आते-जाते उनके चरण स्पर्श करके नमस्ते किया करते थे। उपाध्याय जी का उनसे बारम्बार यही आग्रह था कि आप दयानन्द ब्राह्म महा-विद्यालय के उप आचार्य हो आपको ऐसा करना ठीक नहीं। रामविचार जी कहते है कि 'नहीं मेरा इसी में सौभाग्य है।"

मेरी साहित्य सेवा का रहस्यः-अन्यत्र भी हमने ऐसे संकेत दिये हैं। श्री प्रा० रामविचार जी को स्वयं श्री पं० जी ने अपनी साहित्यक उपलब्धियों का रहस्य बताते हुये कहा कि मैं इतना लेखन कार्य इसलिये कर पाया क्योंकि मैं मस्तिष्क को एक कार्य से हटाकर शीघ्र ही दूसरे में लगा लेता था। उसी में तन्मय हो जाता था, दूसरे कार्य की मुझे कुछ भी सुध बुध नहीं रहती थी। हम इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि वह अपने कार्य में तल्लीन होते थे।

वेद प्रवचन का प्रकाशनः—उनकी इच्छा थी कि 'वेद प्रवचन कला प्रेस में ही छपे, परन्तु उन्होंने प्रि० ज्ञानचन्द्र जी से यह आग्रह इसलिये न किया कि कहीं वह यह न समझें कि "मैं कुछ आर्थिक लाभ प्राप्त करना चाहता हूँ।" उपाध्याय जी के पत्रों में भी पाठक पढ़ेंगे और रामविचार जी भी बताते हैं कि 'वेद

प्रवचन' की छपाई से वह पूर्णतया असन्तुष्ट थे। वही हुआ जिसकी उन्हें आशंका थी। छपने में बहुत अशुद्धियाँ हो गईं। पैरे के पैरे आगे पीछे हो गये। कहीं-कहीं पंक्तियों में अदला बदली हो गई। हर्ष की बात है कि लेखक ने तत्काल शुद्ध करके नई प्रेस कापी तैयार कर दी। अभी-२ इसका दूसरा संस्करण भी छपकर आ या है।

"उन्हें लिखने की आदत है"—श्री रामचन्द्र जी देहलवी कहा करते थे कि उपाध्याय जी को लिखने की वैसी ही आदत है, जैसी हमें बोलने की आदत है।" हमें यह आदत है कि चलो उठ कर कहीं बोल आएँ। उन्हें भी आदत है कि चलो कुछ लिख लें।"

वह स्वयं बताते थे कि उन्होंने जब से लिखना आरम्भ किया, "तब से एक भी दिन ऐसा नहीं बीता होगा जब मैंने कुछ लिखा न हो।"

अपवाद नियम को सिद्ध करता है। बहुत रुग्ण होने पर और यात्रा में भी कभी-कभी ऐसा करना कठिन हो जाता।

"मेरी दृष्टि आर्य समाज पर ही रही":—आपने श्री राम विचार जी को बताया कि मैंने गृहस्थी होने के नाते सब साँसारिक कार्य व्यापार किये, "परन्तु मेरी दृष्टि सदा आर्य समाज पर ही रही।"

यह वाक्य उनकी आर्य समाज के प्रति अखण्ड निष्ठा एवं सतत साधना का परिचालक है। ऐसे महान समाज सेवी नेताओं को पाकर आर्य समाज धन्य धन्य हुआ।

'पुत्रो तेरे कारण मेरा सम्मान हुआ':—उपाध्याय जी वर्मा में वेद-प्रचार यात्रा के लिए आमन्त्रित किये गये। वहाँ उन्हें एक आर्य समाज मन्दिर में ठहराया गया। जिस कमरे में उनको ठहराया गया, वहां एक चारपाई थी और एक टूटा हुई कुर्सी।

एक दिन आर्य समाज के प्रधान जी उनके पास आए। कुछ पारिवारिक चर्चा दोनों में चल पड़ी। उपाध्याय जी ने अपने परिवार का परिचय दिया। यह परिचय प्राप्त करके प्रधान जी को आश्चर्य भी हुआ और प्रभावित भी हुए। प्रधान जी घर गये और घर जाकर अपने सुपुत्र को समाज मन्दिर भेजा। उसने आकर उपाध्याय जी को घर पर चलने के लिए आग्रह करते हुए कहा कि जब पिताजी ने घर जाकर माता जी को बताया कि पण्डित जी समाज मन्दिर में ठहरे हुए हैं तो वह बहुत बिगड़ीं और [illegible] आने को कहा है।

श्री उपाध्याय जी भी वास्तविकता को समझते थे। घर जाकर तो ऐसी बात क्या होनी थी। बात तो केवल इतनी थी कि प्रधान जी को अब यह पता चला कि उपाध्याय जी का सांसारिक स्तर भी कोई साधारण नहीं। उनकी पुत्र वधू भी एक कालेज की प्राचार्या हैं और पी० एच० डी० हैं। सारी सन्तान उच्च

शिक्षित है। एक सुपुत्र विश्वविद्यालय के एक विभाग का अध्यक्ष है। अब प्रधान जी ने यही उचित जाना कि टूटी कुर्सी वाला कमरा इनके लिये ठीक नहीं।

घर लौटकर आपने डा० रत्नकुमारी जी (पत्नी डा० सत्य-प्रकाश जी) को बताया कि पुत्री तेरे कारण मेरा इस प्रकार सम्मान हुआ। इस प्रकार के भाव व्यक्त करके उपाध्याय जी ने अपनी सरलता का परिचय दिया। सन्तान के लिये भी तो यह कोई कम गर्व की बात नहीं कि वह ऐसे महान मनीषी के घर जन्मे।

'दुःख भरे शब्दों में कहा' :— एक दिन पण्डित जी ने श्री प्रा० रामविचार जी से बड़े दुःख भरे शब्दों में कहा कि जो भी वस्तु हम अपनी बहिन को देते थे, उसके ससुराल वाले उस तक पहुंचने नहीं देते थे। कहने लगे, "उसका भाग्य !" लडकियों से अमानवीय व्यवहार करने वालों की निकृष्ट प्रवृत्ति से वह दुःखी थे। वह सदा सत्य, न्याय, सद्व्यवहार का सन्देश देते रहे।

"अच्छा है संस्कृत की रक्षा होगी"

पं० गंगाधर जी पटना वालों ने बताया कि आप अभी विद्यार्थी ही थे कि आपने संस्कृत श्लोकों में ईशोपनिषद् की व्याख्या की। १७ श्लोक आपने बनाकर उपाध्याय जी को सम्मति देने के लिए दिखाए।

उपाध्याय जी इसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। गंगाधर जी को आशीर्वाद व प्रोत्साहन देते हुए गुरुवर बोले, "अच्छा है। बहुत सुन्दर श्लोक हैं। इससे संस्कृत की रक्षा होगी। आप नवयुवक लोग, नये नये विद्वान ऐसा नहीं करोगे तो संस्कृत की रक्षा कौन करेगा ?"

उपाध्याय जी ऐसी उदार भावना वाले थे। नये नये कार्य कर्त्ताओं को प्रोत्साहन देने वाले ऐसे नेता, विद्वान व महापुरुष आज कितने हैं और कहाँ हैं ?

उपाध्याय जी का सेवा भाव उनकी आत्मीयता

श्री सुरेश चन्द्र जी वेदालङ्कार फतेहपुर (उ० प्र०) के आर्य समाज के उत्सव पर गये। रात्रि को अन्तिम व्याख्यान उन्हीं का था। शीत ऋतु थी। व्याख्यान देने से कुछ पूर्व ठण्डी लगने लगी। वह बोलते गये और ज्वर होने लगा। व्याख्यान की समाप्ति पर मन्त्री जी ने औषधि आदि का प्रबन्ध कर दिया। पूज्य उपाध्याय जी वहाँ आमान्त्रित थे। यह उनके जीवन के अन्तिम दिनों की बात है। रात्रि तीन या चार बार उठ उठ कर उपाध्याय जी ने आकर सुरेशचन्द्र जी का पता किया कि उनका स्वास्थ्य कैसा है ?

वेदालङ्कार जी ने बताया कि जब तक मुझे रिक्षा पर बिठा कर विदा न कर दिया गया, तब तक उपाध्याय जी को चैन नहीं आया। यह था उनका सेवाभाव। यह थी उनकी आत्मीयता। उनको ऐसी व्याकुलता हो रही थी, मानो सुरेश चन्द्र रुग्ण नहीं हुआ सत्य प्रकाश विश्व प्रकाश में से किसी को ज्वर हुआ है।

विषय सूची

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चतुर्थ खण्ड

पंचम खण्ड

षष्ठम् खण्ड

परिशिष्ट

निर्देशिका

पृष्ठ २३८-२४१ पर प्रकाशित लेख 'स्वामी दयानन्द और पुराण' के कठिन उर्दू शब्दों के हिन्दी अर्थ ।

पृष्ठ	पंक्ति	कठिन उर्दू शब्द	हिन्दी अर्थ
२३८	२०	मौजूदा तालीमयाफ़्ता	आधुनिक शिक्षित वर्ग
२३८	२१	तहकीकात	शोध
२३८	२२	मखज़न	कोश
२३९	३	ग़ल्तफ़हमी	भ्रान्ति
२३९	३	मुतालया	स्वाध्याय
२३९	३	ममनू	निषिद्ध
२३९	४	तालिब इल्मोकी हालत	विद्यार्थी अवस्था
२३९	८	ज़हर आलूदा	विषाक्त
२३९	१०	खुराफ़ात	निरर्थक मिथ्या बातें
२३९	११	लिहाज़	ध्यान
२३९	१६	जाहलियत	अविद्या
२३९	१३	अहनियत फ़ज़ोलत	महता
२३९	१८	तवहमात	भ्रम
२३९	२०,२१	इल्म के मतलाशी	ज्ञान पिपासु
२४०	९	ज़र्रा	प्रमाण
२४०	९	पैवस्त	समाविष्ट
२४१	पैरा १ पं २	तखैलात	कल्पनाएँ
२४१	,, ,, ५	तावारिख	इतहास
२४१	,, ,, २ ३	गुरेज़	संकोच

वीरेन्द्र गुप्तः

का

नवीनतम ग्रन्थ

दस नियम

वेदोक्त सिद्धान्त के प्रतिपादक, प्रसारक एवं वेद के पुनरुद्धारक परिव्राजकाचार्य योगेश्वर दयानन्द सरस्वती जी ने मानव कल्याण के लिये, 'दस नियमों' के द्वारा मानव समाज का समाजीकरण किया, उन नियमों की सरल भाषा में विस्तार से व्याख्या की गई है। जिसका जन जन के हाथ में पहुंचना अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक है।

प्राप्ति स्थानः—

वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार

प्रकाशन मन्दिर,
बाजार चौक, मुरादाबाद

वीरेन्द्र गुप्त: के उत्तम प्रकाशन

इच्छानुसार सन्तान

मनचाही पुत्र, पुत्री धर्मात्मा शासक, जितेन्द्रिय और गौर वर्ण की सन्तान प्राप्त करना। — मूल्य ४/५०

पुत्र प्राप्ति का साधन

पुत्र की प्राप्ति के लिए मार्ग दर्शन। — मूल्य १/५०

पाणिग्रहण संस्कार विधि

वैदिक विवाह पद्धति — मूल्य १/५०

सीमित परिवार

परिवार नियोजन निर्देशिका। — मूल्य १/५०

गर्भावस्था की उपासना

गर्भित बालक के संस्कार बनाना। — मूल्य /२५

नींव के पत्थर

माँ भारती के उज्जल रत्नों की जीवन झांकियां। — मूल्य १२/

HOW TO BE GET A SON

Science of be getting child of choice — Prise 5/-

सूर्यमुखी (पुत्रदाता औषधि)

इस प्रभाव युक्त दिव्योषधि को गर्भावस्था के ८१ से ८५ दिन के मध्य में सेवन करने से पुत्र ही प्राप्त होता है।

वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार

प्रकाशन मन्दिर, बाजार चौक, मुरादाबाद
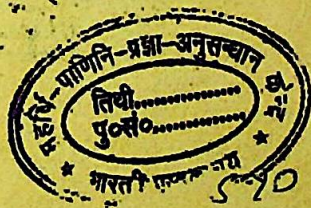
महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के महा बलिदान
शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित।